प्रकाशक :
श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय,
महावीर बाजार, ब्यावर (राज०)

लक्ष्मीचन्द तालेड़ा
अध्यक्ष

अभयराज नाहर
मन्त्री :

मुद्रकः—श्री मदनलाल शर्मा के प्रबन्ध से
★ गणेश प्रिंटिङ्ग प्रेस, लोहिया बाजार, ब्यावर में मुद्रित ★

युगत्रये पूर्वमतीतपूर्वं,
जातास्तु जाता खलु धर्ममल्ला ।
अयं चतुर्थो भवताच्चतुर्थे,
धात्रेति सृष्टोऽस्ति चतुर्थमल्लः ॥

निदर्शन

卐

सचमुच वही व्यक्ति मानवों की गणना मे परिगणित है जिसके नाम के ऊपर तर्जनी अगुली का निर्देश होता है वाकी तो हुए न हुए बराबर है ! श्री जैन दिवाकर-प्रसिद्ध-वक्ता-पडित मुनि श्री १००८ श्री श्री चौथमलजी म० सा० भी उन ही महापुरुषो मे से अद्वितीय थे, जिनके पुनीत नाम पर राजे-महाराजे-रजवाड़े-नामदारो से लगाकर अछूत और अस्पृश्यो तक, भारत के पठित-अपठित व्यक्तियो से लगा कर यूरोप के वहुत से पढ़े लिखे अंग्रेज-महानुभावो तक सबको नाज है, आपसे अगणित नर समूह परिचित हैं; आपकी गुणगाथा सबकी जबान पर है, आपकी गुणगरिमा सबके दिलो पर शुक्र के तारे के समान रोशन है, जैन और जैनेतर आप पर सब श्रद्धा के फूल बरसा रहे है ।

अभी ही कुछ दिनो की वात है कि एक वार कुछ साधु कोट (वम्बई) से कादावाड़ी जा रहे थे, साथ मे वहुत से श्रावक-गण जयनाद कर रहे थे कि इतने मे एक दुकान मे से वहुत से मुसलमान बाहर आकर जुलूस देखने लगे, उनमे से एक बूढा मुसलमान बोला कि भाई ! कैसा प्रोसेशन है, किसी ने कहा कि जैन साधु कादावाड़ी जा रहे हैं तब उसने हर्षोन्मत्त होकर कहा कि बावा चौथमलजी म० तो नही है ? उनको हम जानते हैं, वे वडे ऊँचे दर्जे के वाइज थे, कई वार उनका वअज (उपदेश)

सुना है। वह चोटी के आबिद और तौहीद (सिद्धान्त) के जानने वाले साईं महात्मा थे। सच्ची फकीरी उनमे ही पाई गई है। आपको मालूम हो! वे अब कहाँ है? तब समुदाय मे से किसी ने कहा कि उनका तो स्वर्गवास हो चुका है। तब वह आँखो मे आंसू भर लाया और बोला कि अजगैब (प्रकृति) की बातो को जहूर मे रोशन करने वाला आफताव (सूर्य) गरूब (अस्त) हो गया। या अल्लाह ! तोवा २, मौत भी एक वुरी बला है जिसके झटके से तजल्ली पाया (आत्मसाक्षात् पाए हुए) वशर भी हमसे अलग होकर जन्नत पा जाते हैं। अफसोस २ ! ऐसी हस्ती अब कहाँ देखने को नसीब होगी।

इस घटना से स्पष्ट है कि वे सब के दिलों के सिंहासन पर विराजमान रहने वाले हर दिल अजीज महामानव थे। उनके शिक्षाप्रद उपदेश सबके दिलो पर किस तरह अर्या थे। उन्होने अपने जीवन मे 'निर्ग्रन्थ प्रवचन' का कितना भारी प्रचार किया होगा, यह अनुमान के वाहर की वात है। उन्होने भारत-मडल के अधिकाश भाग मे घूमकर जिनशासन की कितनी अधिक प्रभावना की है जिसकी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए न कलम मे ताकत है और न जवान मे लियाकत है। अधिक क्या कहा जाय उन्होने जैन धर्म के सिद्धान्तो को खूब प्रकाशित किया है और धर्म का झंडा लहराया है।

इसलिए जैन समाज के धनाढ्यवर्ग का कर्त्तव्य है कि वे उनका नाम अमर बनाए रखने के लिए उनके नाम पर जैन युनिवर्सिटी कायम करे जिसमे अखिल ब्रह्मांड के मनुष्यो को जैनदर्शन का अभ्यास करने का समागम प्राप्त हो और प्रत्येक प्रात मे उनके

नाम पर अनेकान्त महाविद्यालय (कॉलेज) खोले जायँ जिसमे ज्ञातपुत्र-महावीर भगवान् के सार्व-सिद्धान्तो की जानकारी मनुष्य मात्र को मिले। साथ ही उनके वाणी विलास रहित सादे उपदेश का प्रसार वाइविल के समान समस्त भाषाओ मे प्रकाशित हो तो दिवगत आत्मा का आशीर्वाद हम पर पुष्कलावर्त के सदृश लाभ का साधन निमित्त बनकर बरसे और उनके अनन्त उपकारो से कुछ अनृण हो सके।

दिवाकर-दिव्य-ज्योति के सव भाग सर्वसाधारण के लाभ की वस्तु तो स्वयसिद्ध ही हैं मगर मुनिराज और महासतियो के काम की तो अद्वितीय निधि है। इसके अनुसार अपनी प्रवचन पद्धति बनाने मे लोगो पर अनन्त प्रभाव पड़ सकता है। इनके १० भागो का अनुवाद सव भषाओ के अनुवाद के अतिरिक्त अग्रेजी भाषा मे किया जाय और प्रसारित किया जाय तो आशा से अधिक अहिंसा का प्रचार हो सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक मे उनका प्रकट किया हुआ एक-एक शब्द मानवता की भावना से लबरेज है। इसके ९ विषय गणित के नव अको के समान विश्वव्याप्य और नव पद के सदृश सारभूत हैं। 'मन सुन रे!' और 'दयामाता' के विषय मे तो वस्तु तथ्य का दिग्दर्शन कराने मे कमाल हो गया है। सच कहा जाय तो यहाँ आपकी आत्मा वात मे कोयल की तरह कूक सुना रही है। यह आत्मा की आवाज जिज्ञासु के कलेजे मे घुस कर उसे आत्म राह का राही और चेतनशक्ति का मजनू बन देती है।

आम को तोरण बाधने और सूर्य को लालटेन दिखाने की

तरह 'दिवाकर-दिव्य-ज्योति' की खूबियो की बयान करने के लिए कलम भोठी पड रही है और जवान लर्जा पैदा कर रही है । इस लिए पढने वालो से अनुरोध है कि इसके पृष्ठपटो को खोलकर जरा नियमित स्टडी करे तो कल्पवृक्ष के समान सब मनोरथो की पूर्ति का विषय आपको मे इसी मिलेगा ! मिलेगा !! और फिर मिलेगा !!!

पनवेल- (केसर उद्यान)
ता २०-१०-१९५४

पुष्क भिक्खू

विषयानुक्रमणिका

श्रावक की कसौटी

स्तुति :

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं,
पापं क्षणात्क्षयमुपैत्ति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु,
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएं ?

भगवान् ! आपका स्तवन, भजन, कीर्तन गुणगान करने से जगत् के जीवो के जन्म-जन्मान्तर के उपार्जन किये हुए पाप क्षण

भर में नष्ट हो जाते हैं। रात्रि के समय अन्धकार सर्वत्र व्याप्त हो जाता है, परन्तु भ्रमर के समान काला-काला वह सम्पूर्ण अन्धकार सूर्य की रश्मियो का प्रसार होते ही छिन्न भिन्न हो जाता है। सूर्य का उदय हुआ नहीं कि अन्धकार का विलय हो गया ! इसी प्रकार जिन परमप्रभु ऋषभदेवजी की स्तुति करते ही पापो का समूल नाश हो जाता है, उन्ही भगवान् ऋषभदेवजी को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयों ! भगवत्स्तुति की महिमा इतनी गूढ और विशाल है कि उसका पूरी तरह से विवेचन नही हो सकता। भगवान् के प्रति जिनकी एकनिष्ठा भक्ति और प्रीति है, जिन्होंने भगवान् को ही अपने श्वास और प्राण के समान समझ लिया है, वही भगवान् की स्तुति की महिमा को समझ पाते है। वास्तव मे भगवान् की स्तुति जन्म-मरण का नाश करने वाली है। अन्त.करण की सद्-भावना से जो भगवान् की स्तुति करता है, वह चौथे गुणस्थान में पहुंच जाता है। इस गुणस्थान का जिक्र सामान्य रूप से पहले किया गया था। चौथे गुणस्थान में आकर जीव विवेकशील बन जाता है। अपने हित-अहित को, समीचीन रूप से पहचानने लगता है। इसके पश्चात् वह एक कदम आगे बढता है तो पाँचवे गुणस्थान मे पहुंच जाता है। यह देश–विरति गुणस्थान है। इस गुणस्थान मे रहे हुए भव्य जीव देश--विरत श्रावक कहलाते है। वहां क्या–क्या होता है ?

अप्रत्याख्यान कषाय तजे जब देशविरति में आता है।
द्वादश व्रत एकादश प्रतिमा, संयम का अंश जहँ पाता है॥

अप्रत्याख्यानावरण कषाय तनिक भी प्रत्याख्यान नहीं करने देती। जब जीव उसका विनाश करके पाचवे गुणस्थान मे आता है तो एक देश सयम का पालन करने के योग्य बन जाता है। इस गुणस्थान के जीव सब समान नही होते। कोई नवकारसी पोरसी आदि जघन्य प्रत्याख्यान करते हैं तो कोई श्रावक के बारह व्रतो को भी ग्रहण करके उनका पालन करते हैं। कोई-कोई भाग्यवान् श्रावक तो इससे भी ऊँचे उठ कर ग्यारह प्रतिमाओ को अंगीकार करते है और अपने जीवन को सफल बनाते हैं।

प्रतिमाओ का पालन करना साधारण बात नही है। उसके लिए दृढ मनोबल और अचल श्रद्धा और सहिष्णुता की आवश्यकता होती है। आज आप इन प्रतिमाओ का पालन नही कर सकते परन्तु जानना तो चाहिए कि आपके पूर्वज श्रावक कितने तपस्याशील और धर्मपरायण होते थे! अतएव सक्षेप मे यहाँ ग्यारह प्रतिमाओ का जिक्र करता हूँ। वह इस प्रकार है:—

(१) दर्शन प्रतिमा—इसमें श्रावक सम्यक्त्व का निरतिचार रूप से पालन करता है। वह मिथ्यामतो को जानता है और उनसे बचता है। इस प्रतिमा का आराधन एक मास तक होता है।

(२) व्रत प्रतिमा—इस प्रतिमा मे व्रत रूप धर्म का पालन करने की रुचि तीव्र रूप से जागृत होती है। शीलव्रत, गुणव्रत, प्रत्याख्यान, नियम आदि का पालन किया जाता है। इस प्रकार पहली प्रतिमा से आगे बढ कर श्रावक जब दूसरी प्रतिमा मे आता है तो चारित्र की ओर उसकी रुचि खूब बढ जाती है।

पाच अणुव्रतो को, तीन गुणव्रतो को और चार शिक्षाव्रतो को अगीकार कर लेता है और उनका यथायोग्य पालन करता है। दूसरी प्रतिमा दो मास तक चालू रहती है।

(३) सामायिक प्रतिमा–तीसरी है। इस प्रतिमा मे श्रावक निरतिचार रूप से सामायिक व्रत का पालन करता है। परन्तु पोषधोपवास का यथोचित रूप से पालन करने की इच्छा रखता हुआ भी उसका पालन नही कर पाता। तीसरी प्रतिमा तीन मास तक पाली जाती है। इसके बाद है—

(४) पोषधोपवास प्रतिमा–इस प्रतिमा में समस्त श्रावक के व्रतों का भली–भांति पालन किया जाता है। अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व–दिनो मे प्रतिपूर्ण पोषध व्रत का भी पूर्ण रूप से पालन होता है। यह चौथी प्रतिमा चार मास की होती है।

(५) ब्रह्मचर्य प्रतिमा–इस प्रतिमा में पिछली समस्त प्रतिमाओं के आचार का पालन तो किया ही जाता है, साथ में पाँच बातें और धारण की जाती हैं.-पाँचवी प्रतिमा वाला (१) स्नान करने का त्याग कर देता है, (२) रात्रि मे अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य--इन चारो तरह के आहारों का त्याग कर देता है, (३) धोती की लाग नही लगाता, (४) दिन मे पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करता है और (५) रात्रि में मैथुन सेवन की मर्यादा करता है। इस स्थिति मे वह पाँच मास तक रहता है।

(६) पूर्ण ब्रह्मचर्य प्रतिमा–पांचवी प्रतिमा मे श्रावक ने ब्रह्मचर्य सम्बन्धी जो छूट रक्खी थी, उसको भी छोड़ कर छठी

प्रतिमा मे वह रात्रि में भी ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करता है। इसकी अवधि अधिक से अधिक छह मास है।

(७) सचित्त त्याग प्रतिमा–पूर्वोक्त सभी व्रतो का पालन करता हुआ इस प्रतिमा का धारक श्रावक सचित्त भोजन का भी त्याग कर देता है। इसकी उत्कृष्ट अवधि सात मास की है।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमा–इस आठवी प्रतिमा का धारी श्रावक सचित्त भोजन के त्याग के साथ ही साथ आरम्भ का भी त्याग कर देता है। पर दूसरो से आरम्भ कराने का त्याग नहीं करता। यह प्रतिमा आठ मास तक रहती है।

(९) प्रेष्य प्रयोग प्रतिमा--इस प्रतिमा मे श्रावक की वृत्ति इतनी ऊँची और रुचि इतनी पवित्र हो जाती है कि वह आरम्भ करता नही है और दूसरो से भी करवाता नही है। अलवत्ता, कोई आरम्भ कर रहा हो तो उसमे मौन अनुमति का त्यागी वह नही होता। इसकी काल मर्यादा नौ मास तक की वतलाई गई है।

(१०) उद्दिष्ट भोजन त्याग प्रतिमा–दसवी है। इस प्रतिमा का धारक श्रेष्ठ श्रावक पिछली समस्त प्रतिमाओ के आचार का पालन करता हुआ अपने निमित्त वने भोजन का भी परित्याग कर देता है। उस्तरे से मुंडन कर लेता है या सिर्फ चोटी रखता है। उसका कोई स्वजन सम्बन्धी गडे हुए धन आदि के विषय मे उससे पूछे तो वह यही कहता है कि मैं जानता हूँ अथवा नहीं जानता हूँ। जानता हो तो कह देता है कि मै जानता हूँ और न जानता हो तो न जानने की बात कह देता है। इसके अतिरिक्त और कोई वात नही कहता। इसकी अवधि दस मास तक की है।

(११) श्रमण भूत प्रतिमा-दसवी प्रतिमा के आचार-पालन मे परिपक्व हो जाने पर श्रावक ग्यारहवी प्रतिमा को अंगीकार करता है। सिर के केशो का लोच करता है और लोच करने की शक्ति न हो तो मुंडन कराता है। साधु का वेष धारण कर लेता है और साधुओं सरीखे उपकरण रख कर साधुओ के लिए विधान किये हुए समस्त आचार का पालन करता है। ईर्या समिति से चलता है और भिक्षा से शरीर का निर्वाह करता है। वह प्रायः अपने सम्बन्धियों के घर ही भिक्षा लेने जाता है, यद्यपि ऐसा कोई नियम नही है। भिक्षा सम्बन्धी जो नियम साधु के लिए पालनीय होते हैं, इन सबका वह उत्कृष्ट श्रावक भी पालन करता है।

ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक और साधु की क्रिया में कोई खास अन्तर नहीं रह जाता। इसीलिए इसे श्रमणभूत प्रतिमा कहते है। उससे प्रश्न करता है तो वह स्पष्ट कह देता है कि मैं साधु नही, श्रावक हूं। इस प्रतिमा की उत्कृष्ट अवधि ग्यारह मास की है।

प्रतिमाओ के पालन की एक विशेषता यह है कि इनका पालन करते समय तपस्या भी करनी पड़ती है। पहली प्रतिमा वाला श्रावक एकान्तर उपवास करता है, दूसरी प्रतिमा का धारक बेले-बेले की तपस्या करता है। तीसरी प्रतिमा वाला तेले-तेले का पारणा करता है। इस प्रकार प्रतिमाओ के क्रम से ही उपवासो का क्रम बढता जाता है। और ग्यारहवी प्रतिमा में, ग्यारह-ग्यारह दिन बीतने पर एक दिन भोजन किया जाता है और फिर ग्यारह दिन का उपवास करना पड़ता है।

भाइयो ! यह श्रावक की महान् साधना है, घोर तपश्चर्या है। आनन्द जैसे श्रावको ने इस तपस्या का आचरण किया था। यहा तक का समस्त आचरण पांचवे गुणस्थान का आचरण कहलाता है। इस प्रकार नवकारसी और पोरसी से लेकर ग्यारह प्रतिमाओ तक का यह चरित्र तभी आता है जब कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का अन्त आ जाय। अप्रत्याख्यानावरण कषाय क्रोध, मान, माया और लोभ, इस तरह चार प्रकार का है। जैसे तालाब-का पानी सूख जाने पर उस जगह ग्रीष्मकाल में मिट्टी फट जाती है और दरारे पड जाती है। जब वर्षा होती है तब वह दरारे मिटती हैं। इसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण क्रोध विशेष परिश्रम से शान्त होता है। इसकी अवधि सामान्यतया चार मास की है। जैसे हड्डी कठिनाई से नमती है, उसी प्रकार जो मान विशेष कठिनाई से मिटे वह अप्रत्याख्यानावरण मान कहलाता है। जैसे मीढे का सिंग अनेक उपाय करने पर कठिनता से सीधा होता है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण कठिनता से दूर होती है। और जैसे गाड़ी के पहिये का कीट मुश्किल से दूर होता है, उसी प्रकार अप्रत्याख्यानावरण लोभ भी मुश्किल से छूटता है। इन सब की स्थिति चार मास की है। इन चारो कषायो के हटने पर पाचवा गुणस्थान आता है।

यहाँ एक बात ध्यान मे रखने योग्य है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय के हटने पर ही श्रावक का गुणस्थान आता है, और इस कषाय की स्थिति चार मास की है। इसका अभिप्राय यह निकला कि श्रावक का कषाय चार मास से अधिक नही ठहरता। इसीलिए शास्त्रो मे चौमासी प्रतिक्रमण की

व्यवस्था की गई है। श्रावक किसी के प्रति कषाय रूप दुर्भावना आने पर उसी समय खमा लेता है। उसी समय न खमा सके तो पन्द्रह दिन में खमा ले, नहीं तो चौमासी प्रतिक्रमण करके तो उसे खमा ही लेना चाहिए और वह भी सच्चे अन्तःकरण से। खमा लेने के पश्चात् हृदय मे उस कषाय का संस्कार भी नही रह जाना चाहिए। यही श्रावक की कसौटी है।

बहुत-से लोग श्रावक के कुल में जन्म ग्रहण कर लेने मात्र से श्रावक हो जाना मानते है, परन्तु इस कथन से आप समझ सकते हैं कि श्रावक का पद वंशपरम्परा से मिल जाने वाला पद नही है। वह गुणो से प्राप्त होता है। अगर आप चार महिने से अधिक समय तक अपने अन्तःकरण मे किसी के प्रति कषाय रखते हैं तो देश विरत श्रावक के पद से वंचित हो जाते हैं। फिर सम्यग्दृष्टि श्रावक भले ही कहलाएँ, मगर देश-विरत श्रावक नहीं कहला सकते। और सम्यग्दृष्टि श्रावक भी एक वर्ष से अधिक समय तक कषाय नही रहने देता। इसी उद्देश्य से सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की योजना की गई। जो एक वर्ष तक भी नहीं खमाता और अपनी कषाय को बनाये रखता है, वह सम्यग्दृष्टि के पद से भी गिर जाता है।

आदर्श मार्ग यह है कि भूल-चूक से असावधानी से अथवा जान बूझकर किसी के प्रति कषाय धारण किया हो तो तत्काल क्षमा याचना करे। रात्रि मे किये कषाय आदि प्रमाद के लिए रात्रिक प्रतिक्रमण बतलाया गया है और दिन मे किये हुए कषाय रूप प्रमाद आदि के लिए दैवसिक प्रतिक्रमण की व्यवस्था की गई है। कदाचित् तत्काल क्षमायाचना न की हो तो पन्द्रह

दिन में क्षमायाचना कर लेनी चाहिए। इतना भी न हो सके तो चार मास मे और आखिर एक वर्ष मे क्षमायाचना अवश्य कर लेनी चाहिए। अगर इससे भी चूक गये तो नरक की योनि तैयार समझो, क्योंकि एक साल से अधिक ठहरने वाला कषाय अनन्तानुबंधी कषाय होता है और अनन्तानुबन्धी कषाय से नरक गति का बन्ध होता है।

भाइयों! यहाँ से लडाई लेकर जाओगे तो आगे भी लडाई तैयार मिलेगी। नारकी जीव आपस मे किस प्रकार लड़ते हैं, यह आपने सुना होगा। अतएव व्याख्यान सुनने का सार यही है कि क्रोध आ जाय तो तत्काल क्षमा याचना कर लो। कदाचित् तुम अन्तरग से क्षमा मागो और सामने वाला क्षमा न दे तो भगवान् के आदेशानुसार तुम आराधक ही हो। मगर कहाँ इस उपदेश की ओर लोगो का ध्यान भी जाता है! कहा है:—

ऊँचा-ऊँचा लावतां, नीचे जाय नपाट।
मै तो बनावां देवता, थे बनना चाहो जाट॥

फलाचन्दजी बडे गुणवान् हैं और समाज के अगुवा हैं, किन्तु सामायिक कभी नही करते! फिर काहे के अगुवा हैं वे? यही तो नीचे गिरने की बातें हैं! कोई-कोई जीव ऐसे ही होते हैं। उनके मोहनीय कर्म की प्रकृति का ऐसा उदय है कि कडुवी कहो तो भी न माने और मीठी कहो तो भी न माने! कडुवी कहे तो कहते है-साधुजी को ऐसे शब्दो का उच्चारण नही करना चाहिए। मीठी कहे तो सोचते हैं कि महाराज चापलूसी करते है, कुछ न कुछ स्वार्थ होगा! पर भाइयो! हमारा कोई स्वार्थ नही है, है तो

सिर्फ यही कि हम आपको भगवान् की आज्ञा का आराधक बनाना चाहते हैं, आपको ऊंचा उठाना चाहते हैं, देवता बनाना चाहते हैं। मगर कोई देवता बनने के बदले जाट ही बना रहना चाहे तो तुम्हारी मर्जी !

भाइयों ! श्रावक की पदवी प्राप्त कर लेना आसान नही है। उस पदवी को प्राप्त करने के लिए हिलते-चलते प्राणियो को जानबूझ कर मारने की बुद्धि से, नही मारना होगा। अनर्थकारी झूठ का परित्याग करना होगा। राजा द्वारा दण्डनीय और लोकनिन्दनीय चोरी से बचना होगा। परस्त्री को माता बहिन के समान समझना होगा और स्वस्त्री सेवन की भी मर्यादा करनी पडेगी। लालच पर अकुश लगाना पडेगा। नही लगाओगे तो गरीबो के गलो पर छुरियां फेरोगे। इसलिए धन की मर्यादा करो। मर्यादा न की तो लोभ मे पड़कर सभी पाप करना शुरू कर दोगे, क्योकि लोभ पाप का बाप है। बहुत-से लोग इतना व्याज लेते है कि मूल रकम का दूना-चौगुना वसूल कर लेने पर भी खाता पूरा नहीं होता। ऐसा करने पर कई जान से चले गये और कइयों के नाक-कान कट गये !

कोई कहे कि साधु को ऐसा नही करना चाहिए। उससे पूछो कि वह स्वय अपनी मर्यादा मे है या मर्यादाहीन है ? अगर मर्यादाहीन है तो पहले अपनी फिक्र कर भाई ! साधु तो अपनी मर्यादा को भली-भाँति जानते हैं और मर्यादा मे रह कर ही बात कहते हैं। मगर तू जो साधु को मर्यादा सिखाने चला है सो पहले स्वय तो अपनी मर्यादा सभाल ले ! तू भी तो कुछ न कुछ कर ! तू झूठी गवाही क्यो देता है ? दूसरों का हक क्यों छीनता है ?

साधु के कल्याण की चिन्ता करने से पहले अपने कल्याण की वात तो सोच ले ! अगर पाचवी श्रेणी मे आना है तो धन की मर्यादा करनी होगी। दिशाओ में गमन करने की भी मर्यादा करनी होगी, क्योकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के प्रभाव से कही बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने का निमित्त मिल जाता है। कई ऐसे मनुष्य है जो मर्यादा छोड कर दूसरे मुल्को मे गये और वे पतित हो गये। धर्म से भी भ्रष्ट हो गये, नीति से भी पतित हो गये और खाना-पीना आदि अन्य वातों से विगड गये ! इस कारण दिशाओं की मर्यादा करके, मर्यादा के भीतर भी मर्यादाहीन नही होना होगा। मर्यादित प्रदेश मे भी खाने, पीने, पहरने, ओढने, रहने, सोने, जाने, आने आदि कार्यों मे आने वाली समस्त वस्तुओ की मर्यादा करनी पडेगी। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड़ना पडेगा। प्रतिदिन सामायिक करनी पड़ेगी, पौषध करना पडेगा, और सुपात्र को दान देना पडेगा।

श्रावक के यह सारे नियम धारण करोगे तो पाँचवी श्रेणी में आओगे। जव श्रावक की श्रेणी मे आओगे तो तुम्हारे भोजनालय के ऊपर, परिंडे के ऊपर और पाकशाला (भोजन वनाने की जगह) पर भी चदोवा लगेगा। इससे हिंसा से भी वचाव हो जायगा और तन्दुरुस्ती भी नही विगडेगी।

इन वारह वातो को धारण करने के पश्चात् शक्तिमान् श्रावक ग्यारह प्रतिमाओ का, जिसका कथन अभी किया जा चुका है, पालन करते हैं और अन्त मे संलेखनाव्रत की भी आराधना करते है। सलेखनाव्रत का पालन मृत्यु के नजदीक आने पर किया जाता है। यह व्रत मृत्यु सम्वन्धी उत्तम कला है। जीवन और मरण

मे समभाव रखकर, बन्धु-बान्धव, कुटुम्ब-परिवार, धन-सम्पत्ति आदि के प्रति लेशमात्र ममता न रखते हुए, अपने शरीर की भी ममता का त्याग करना सलेखनाव्रत है। कहा है

ऐसा समय हो भगवान् ! जब प्राण तन से निकले,
निकले तो एक निकले, जिनवर का नाम निकले ॥

भाइयो ! यह पाँचवाँ दर्जा भी मामूली नही है। जो एक बार इस दर्जे को हासिल कर लेता है, वह पन्द्रह भवो से ज्यादा नहीं करता। इतने काल मे ही उसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है। इसलिए आओ इस श्रेणी मे, पीछे मत रहो। इस समय यह भावना रक्खो कि बिना संलेखना मेरी मृत्यु न हो और जब मृत्यु का समय उपस्थित हो तो अन्त करण को समभाव मे स्थापित करके भगवान् का भजन करो। अपने समस्त जीवन के इतिहास की स्खलनाओं का विचार कर उनके लिए पश्चात्ताप करो, किसी पर क्रोध किया हो किसी को हानि पहुँचाई हो, किसी के चित्त को क्लेश पहुँचाया हो, जो भी पापकर्म किया हो, उसके लिए पश्चात्ताप करो और क्षमा माँग लो। यह ठीक है कि उस समय की तुम्हारी क्षमा प्रार्थना शायद उस प्राणी के पास न पहुँच सके, फिर भी तुम अपनी ओर से क्षमा माग ही लो। अन्त करण से याचना की हुई क्षमा से तुम्हारी आत्मा निर्मल हो जायगी। तुम शल्यहीन हो जाओगे। उस समय मे यह मत सोचना कि अमुक ने मेरे साथ ऐसा किया, फलाचन्द ने वैसा किया ! नही, तुम अपने ही अपराधो और दोषो का स्मरण करना और मन को एकदम शान्त रखना। कुटुम्बीजन तुम्हारे मोह को जागृत करने

का प्रयत्न करेगे । कोई मोह को प्रकट करेंगे, कोई रोएंगे और कोई कुछ और करेंगे, मगर तुम मोह मे न पडना । परमात्मा का स्वरूप तुम्हारी आंखो के सामने रहना चाहिए ।

कोई शूरवीर पुरुष जब युद्ध भूमि के लिए रवाना होता है तो उसके चित्त मे बड़ा उत्साह होता है । राजा से मिलने जाता है तो कितने साफ-सुथरे वस्त्र पहन कर जाता है ? इसी प्रकार परलोक के लिए प्रयाण करते समय उत्साह रक्खो, कायरता लेश मात्र भी न आने दो और अपने अन्तरतर को एकदम स्वच्छ-निर्मल बना लो ।

मृत्यु अतीव भयकर वस्तु समझी जाती है, परन्तु परमात्मा के भक्तो के लिए वह भयकर नही होनी चाहिए । बल्कि उसके विषय मे यही सोचना चाहिए कि सडे-गले जीर्ण शरीर मे से निकाल कर दूसरे नवीन शरीर मे पहुँचाने वाला यह परम मित्र है ! इस मित्र की सहायता मुझे न मिले तो मैं इसी बेकाम शरीर मे पडा रहूँ ! अतएव मृत्यु मेरे लिए उद्धारक बन कर आई है । दूसरे, मैंने अपने जीवन मे जो पुण्य-धर्म का आचरण किया है, उसका फल आगामी जीवन मे मिलने वाला है और आगामी जीवन मृत्यु-मित्र की सहायता के बिना प्राप्त नही हो सकता । इस प्रकार मुझे धर्म-पुण्य के फल की ओर ले जाने वाली यह मृत्यु मेरी बडी उपकारक है ! इस प्रकार के विचार करके अपने चित्त को शान्त और स्वस्थ बनाए रक्खो ।

कृमिजालशताकीर्णे, जर्जरे देहपञ्जरे ।
भिद्यमाने न भेतव्यं, यतस्त्वं ज्ञानविग्रहः ॥

सैकड़ो कीड़ो से भरपूर, सड़ा-गला यह देह का पींजरा मिटता है तो भले मिटे। इसके मिटने का पश्चात्ताप क्या ? विषाद क्या है ? तू तो ज्ञानमयी देह वाला है। यह पुद्गलमय देह तेरी नही है। यह तो कारागार है। इसे त्यागने मे दुःख कैसा ! कारागार से छूटने पर तो विषाद नही किया जाता। इसी प्रकार इस शरीर से मुक्त होने पर क्यो विषाद किया जाय ?

भाइयो ! इस प्रकार के पवित्र और स्वस्थ विचारो के साथ, अन्तिम समय मे, शरीर का परित्याग करना चाहिए। चित्त मे किसी भी प्रकार की मलीनता नहीं आने देना चाहिए। ईश्वर के समीप जाते समय मलीनता नही चाहिए। बल्कि स्नान करके जाना चाहिए। स्नान पानी से नहीं, बल्कि पवित्र भावनाओं से करना चाहिए। पानी से किये स्नान से तो शरीर की ही सफाई होगी और उसे तो तुम यही छोड जाने वाले हो ! अतएव अपनी अन्तरात्मा मे पैठी हुई गन्दगी को, मलीनता को, दिव्य भावनाओ के जल से स्वच्छ बना कर जाओ तो वहा (परलोक मे) तुम्हे आदर मिलेगा, अच्छा और ऊचा स्थान मिलेगा।

भाइयो ! जीवन को सुन्दर और कलापूर्ण बनाना जैसे आवश्यक और उचित है, उसी प्रकार मृत्यु को भी सुन्दर और कलामय बनाना आवश्यक है। यह सलेखना व्रत जीवन की अन्तिम साधना है। इस साधना मे जो सफल होता है, उसका भविष्य उज्ज्वल होता है। अतएव इस अवसर पर चित्त को खूब मजबूत बनाये रखना चाहिए। मगर एक बात का स्मरण दिला देना आवश्यक है। यह सोचकर कि जो कुछ करना है, अन्तिम समय मे ही कर लेंगे, जीवन मे उपेक्षा करना उचित नहीं। आपके

समग्र जीवन मे जैसे संस्कार संचित हुए होगे, वैसा ही प्रायः आपका अन्तिम समय होगा। अतः अन्तिम साधना को पूर्ण रूप से सफल बनाने के लिए जीवन को भी सुन्दर स्वच्छ बनाने की आवश्यकता है।

इस प्रकार पूर्वकालीन तैयारी के साथ जाओगे तो झट ईश्वर मिल जायगा। इसके वदले मैले-कुचैले होकर रवाना हुए तो ईश्वर के वदले यमदूत मिलेंगे और वे धक्के देंगे ! तुम ईश्वर से मिलना भी चाहो और झूठ, कपट, लोभ--लालच, मोह-ममता आदि को छोडना भी न चाहो, यह नही हो सकेगा। दो घोड़ों पर एक साथ सवारी नहीं हो सकती !

देखो, मखलि गोशालक, भगवान् महावीर का विरोधी था। उसने भगवान् की भरपूर निन्दा की। यहां तक कह दिया कि ये झूठे हैं, तीर्थंकर ही नही हैं। मगर मरने के समय उसे सद्बुद्धि प्राप्त हुई। उसने अपने अनुयायियो से कह दिया— महावीर सच्चे हैं और मैं झूठा हूँ। मैंने तीर्थङ्कर की आसातना की है, अतः हे भक्तो ! जब मैं मर जाऊं तो मेरे शरीर को रस्से से बांध कर सड़क पर घसीटना और उस जमीन को धोना ! इस प्रकार अपने दुष्कृत के प्रति पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न होने के कारण गोशालक शरीर त्याग कर बारहवे देवलोक को प्राप्त कर सके। गौतम स्वामी ने भगवान् से प्रश्न किया कि गौशालक मर कर किस योनि मे उत्पन्न हुए है ! भगवान् के मन में गौशालक के प्रति द्वेष होता और वे वीतरागता न पा चुके होते तो कह देते- सातवें नरक मे गया ! उसके जीवन भर के व्यवहार को देखते हुए साधारण मनुष्य यही अनुमान लगा सकता था। मगर

केवलज्ञानी प्रभु ने गौतम को उत्तर दिया-गोशालक मर कर बारहवे देवलोक मे गया है। देखो भाइयों! भगवान् महावीर का समभाव और ज्ञान! वाहरे महावीर! समताभाव के प्रतीक! तुम्हारी वीतरागता धन्य है! तुम्हें याद न करे तो फिर किसे याद करें?

फौज में भर्ती होने वाले सिपाहियो को देखते हो न? वे प्रतिमास वेतन पाते हैं। खाते पीते और मस्त रहते हैं। मगर सुवह उन्हे कवायद करनी पड़ती है और लड़ाई की ट्रेनिग लेनी पड़ती है। यह सब किस रोज के लिए है? जब लड़ाई का समय आयेगा तो उन्हें मोर्चे पर जाना होगा और डट कर लड़ना होगा। उस दिन कहो पीछे हट गये, पीठ दिखला दी तो गोली का निशाना वना दिये जाएंगे। इसी प्रकार यह जो सामायिक-पौषध आदि धर्म क्रिया हो रही है सो 'प्रेक्टिस' हो रही है 'ट्रेनिग' ली जा रही है। जब अन्तिम समय आएगा, शरीर छूटने लगेगा तो मौत के साथ युद्ध करके अमरत्व प्राप्त करना होगा। इस सब की परीक्षा मोर्चे पर होगी। सच्ची बहादुरी दिखलाने का वही मौका है!

> मरने से जग डरत है, मुझ मन बड़ा आनन्द।
> कब मरसां कब भेटसां पूरण परमानन्द॥

यह ईश्वर के भक्त की वाणी है। ईश्वर का भक्त कहता है कि दुनिया के लोग मरने से डरते हैं, किन्तु मुझे तो बड़ा आनन्द मालूम होता है। मैं तो यही सोचता हूँ कि कब मरेंगे और कब परमानन्दमय परमात्मा से भेंट करेंगे?

अगर तुमने पवित्र जीवन व्यतीत किया है तो तुम्हें मरते-समय रोने की क्या आवश्यकता है ? हा, जिसने जिन्दगी भर लडाई झगडा किया, हिंसा की, झूठ बोला, दुराचार किया, अत्याचार किया, धर्म की निन्दा की, उसे अन्त समय मे रोना पडेगा। और काला मुँह करके मरेगा उसे अच्छी गति नही मिलेगी। जितनी भी राग द्वेष रूप परिणति है, आत्मा को पतन की ओर ले जाने वाली है। वह पडने का मार्ग है।

जिसका लक्ष्य आत्मा की ओर होगा, जो अपने शरीर को ही आत्मा न समझ कर आत्मा के शुद्ध स्वरूप को यह मानेगा, वह कभी घमण्ड नही करेगा। जाति या कुल के मद उसे स्पर्श भी नही करेगा। वह अपने कर्त्तव्य का पालन करते समय जाति-पाति का कतई विचार नही करेगा। कोई भगी या चाण्डाल मुसीबत मे पडा होगा तो वह यह नही सोचेगा कि मैं ओसवाल अथवा ब्राह्मण होकर इसकी सेवा कैसे करूँ ? उसकी सेवाएँ समान रूप से सब को प्राप्त होगी। जो चाण्डाल से घृणा करेगा, उसे अछूत समझ कर दुश्मन समझेगा, उसे मर कर अछूत ही बनना पड़ेगा।

शास्त्र मे आठ प्रकार के मद बतलाये है—(१) जातिमद (२) कुलमद (३) तपमद (४) वलमद (५) रूपमद (६) ऐश्वर्यमद (७) ज्ञानमद और (८) लाभमद। इनमे से जिस किसी चीज का मद करोगे, उसी से हीन बनना पडेगा। जाति का अभिमान करने वाला जाति-हीन बनता है, कुल का घमण्ड करने वाला नीच कुल मे जन्म लेता है, इसी प्रकार ऐश्वर्य का मद करने वाला दरिद्र और वल का मद करने वाला वलहीन होता है।

भाइयो ! मैं न किसी पर क्रोध करके यह बात कहता हूं। और न किसी को शाप दे रहा हूं। मैं तो वस्तु का स्वरूप, जैसा ज्ञानियो ने बतलाया है, आपको बतला रहा हू और इस भावना से बतला रहा हूँ कि आप बुराई से बच सके। पहले से ही साव-धान हो सकें और फिर पश्चात्ताप करने का अवसर न आवे। इसके सिवाय मेरा और क्या प्रयोजन हो सकता है ? तुम्हारा जीवन पवित्र, निर्मल और धर्ममय बने, बस यही मेरा प्रयोजन है और इसी उद्देश्य से मैं ज्ञानियो की वाणी तुम्हे सुनाता हूँ।

एक लडका पढने नही जाता था। उसकी माता ने उसे बहुत समझाया, पुचकारा और पाठशाला जाने की प्रेरणा की। मगर लडका इतना बिगडैल हो गया था कि उसने माता की बात नही मानी विवश होकर माता को रोटी देना बन्द कर देना पडा। लडके को भूख लगी तो रोने लगा और चिल्लाने लगा। पडौसी ने उसका रोना चिल्लाना सुना तो आकर कहा इसे भोजन क्यों नही देती हो ? माता बोली यह पढने जाए तो भोजन दू।

कहो भाई, क्या इस माता की लड़के के साथ दुश्मनी है ? माता क्या अपने बेटे का बुरा चाहती है ? इसी प्रकार हम भी तुम्हारे अहितचितक नही हैं। हम तुम्हारा कल्याण ही चाहते है ! तुम्हारे साथ दुश्मनी करके हमे क्या लेना है ? तुम्हारे हित की बात कहते हैं, तुम्हारी भावना अच्छी होगी, तुम्हारी दृष्टि सम्यक् होगी तो मेरी बात सीधी लोगे। दृष्टि मिथ्या होगी तो उलटी लोगे। उलटी लोगे तो हमारा क्या बिगाड लोगे ? अपने ही भविष्य को बिगाडोगे और अपने ही जीवन को बर्बाद करोगे ! हमारा तो कल्याण ही होगा। कहा है—

न भवति धर्मः श्रोतुः सर्वस्यैकान्ततो हितश्रवणात् ।
ब्रुवतोऽनुग्रहबुद्धया, वक्तुस्त्वेकान्ततो भवति ॥

अर्थात् - हित की बात सुनने वाले सब श्रोताओ को धर्म हो ही, ऐसा नियम नही है। जो श्रद्धाभाव से सुनेगा, सद्भाव के साथ सुनेगा, वह धर्म का उपार्जन करेगा और जो द्वेषभाव से छिद्र खोजने की भावना से, या किसी और हीन भाव से सुनेगा वह धर्म के बदले अधर्म कमा लेगा। किन्तु श्रोताओ के प्रति अनुग्रह का भाव रख कर जो उपदेश दे रहा है उस वक्ता का तो एकान्त रूप से कल्याण ही होने वाला है। वह तो अपने कर्म खपा रहा है!

अतएव उपदेश सुनते समय आप भी अपनी भावना पवित्र रक्खे। कदाचित साधु के मुंह से कोई कठोर शब्द निकल जाय तो भी उसे आप अच्छे अर्थ मे ही लो। ऑपरेशन को सहन कर लेते हो या नही ? अगर कोई दुर्भावना से, द्वेष से कोई बात कहेगा तो उसे कर्म का बन्ध होगा। कर्म किसी को नही छोड़ते, चाहे कोई साधु हो या श्रावक हो या कोई और हो। साराश यह है कि जहा तक बन सके, अपनी भावना को राग-द्वेष रहित बनाने का ही प्रयत्न करते रहो। याद रखो कि एक दिन इस जीवन का अन्त आना है और उस समय तुम स्वर्ग प्राप्त करना चाहोगे तो उसी के अनुकूल तैयारी करो।

यह सब पाँचवें दर्जे की बाते आपको बतलाई जा रही हैं। पाचवे दर्जे वाला सर्वत. त्याग नही कर पाता किन्तु उसकी भावना ऊंची होती है। वह दूसरो के दु.ख मिटाने को उद्यत

रहता है और गरीबों को दान देता है। सभी प्रकार के, श्रावक के योग्य उपकार के कार्य करता है। इस दर्जे का श्रावक गृहस्थी सम्बन्धी काम काज भी करता है, अपने सन्तान की विवाह-शादी आदि भी करता है, मकान आदि बनवाता है, मगर उनमे हृदय से अनुरक्त नहीं होता। कोई भी साँसारिक कार्य करते समय वह परमार्थ को विस्मृत नही करता, धर्म का परित्याग नहीं करता। व्यापार करेगा तो अनीति उसमे नही आने देगा। किसी को कम तोल कर या नाप कर नही देगा, अच्छी चीज दिखला कर बुरी चीज नही देगा, झूठ नही बोलेगा। अपनी दुकान पर एक ही भाव रक्खेगा। कोई समझदार आ जाय तो क्या और ना समझ बालक आ जाय तो क्या। वह सब को एक ही भाव से ईमान-दारी के साथ सौदा देगा और एक निश्चित मुनाफा ही लेगा। किसी को भी ठगने या धोखा देने का विचार नही करेगा मतलब यह है कि प्रत्येक दशा मे उसके मन मे धर्म की जागृति रहेगी और वह परमात्मा को अपने सामने रक्खेगा।

भाइयों! आखिर तो धर्म आत्मा का स्वभाव ही है। वह आत्मा से कभी पूरी तरह अलग नही हो सकता। नाना प्रकार के विकारमय परिणाम उसे ढँक देते हैं, मलीन बना देते है, फिर भी वह रहता है अवश्य जब वह प्रकाश मे आ जाता है, जिस पर धर्म का गहरा रग चढ जाता है तब उसे अधर्म प्रिय नही लगता। उसके धर्म का रंग उतरता नही है। ऐसा पक्का रग आपकी आत्मा पर चढना चाहिए। जहाँ जाओ वही आपका धर्म आपके साथ रहना चाहिए। अरणक के समान प्रत्येक दशा मे धर्म की रक्षा करनी चाहिए।

भाइयों! धर्म तुम्हारे साथ रहेगा तो वह तुम्हें प्रकाश देता रहेगा वह स्वयं तुम्हें सही और गलत मार्ग का भान कराता रहेगा सत्य-असत्य का विवेक उत्पन्न कराता रहेगा। वह तुम्हारी भावना मे निवास करेगा और तुम्हारे जीवन को उज्ज्वल और उज्ज्वलतर बनाता चला जायगा। कहा है—

धर्म न वाडी नीपजे धर्म न हाट विकाय।
धर्म काय से नीपजे, जो करिये सो थाय॥

धर्म किसी खेत या बगीचे मे नही उपजता, न बाजार में मोल विकता है। धर्म शरीर से, जिसमे मन और वचन भी गर्भित है, उत्पन्न होता है। धर्म के लिए जाति बिरादरी की कोई मर्यादा नही है। ब्राह्मण हो या चाण्डाल हो, क्षत्रिय हो या महतर हो, कोई किसी भी जाति का हो, कोई भी उसका उपार्जन कर सकता है। धर्म का दायरा अत्यन्त विशाल है। वह किसी ब्राह्मण का भोजन नहीं है कि दूसरे की नजर पडने से ही अपवित्र हो जाय। धर्म गंगा के जल के समान है जो स्वय मलीन नही होता, बल्कि सबकी मलीनता को, विना भेदभाव के दूर कर देता है। कहा है—

श्वापि देवोऽपि देवःश्वाजायते धर्म किल्विषात्।

धर्म के प्रताप से कुत्ता भी देव बन जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी कुत्ता हो जाता है। यह है धर्म की महिमा! यह सोचकर, भाइयो! धर्म को अगीकार करो। आप श्रावक कहलाते हो तो अब श्रावक के कर्त्तव्यो का पालन करके सच्चे श्रावक बन जाओ। आज आपको श्रावक का स्वरूप इसी प्रयोजन

से बतलाया है। अगर आपने इस पर गभीरभाव से मनन किया और आचरण किया तो आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

भविष्यदत्त–चरित.—

भविष्यदत्त के चरित्र से भी आप श्रावक के कर्त्तव्य और धर्म को समझ सकते हैं। सावधानी के साथ आप भविष्यदत्त के अब तक के कार्यों का, विचारो का, वचनों का अवलोकन करेंगे तो आपको सहज ही पता लग जायगा कि श्रावक मे कैसी दया, उदारता, वीरता और धर्म धीरता होनी चाहिए। तिलकसुन्दरी के कार्यो को भी एक उत्तम श्राविका की कसौटी पर कसे। तो वह खरी उतरेगी।

आज की वाइयो मे साहस और धैर्य की मात्रा बहुत कम देखी जाती है। वे जरा–सा सकट आते ही हाय तोवा मचाने लगती हैं, घवरा जाती हैं, धैर्य छोड देती हैं। यह महिला समाज की एक बडी दुर्वलता है। इस दुर्वलता को दूर करने से महिला-समाज की शक्ति वढेगी। देखो तिलकसुन्दरी कैसी-कैसी आपत्तियो के अवसर पर भी अविचल रही है। जव वह जहाज मे अकेली रह गई तव भी उसमें इतना साहस रहा कि उसने बन्धुदत्त को जोरदार फटकार बतलाई। कोई मामूली औरत होती तो अपने धर्म से, डिग जाती, मगर तिलकसुन्दरी पतिव्रता स्त्री थी। वह अपने व्रत पर पक्की रही। अब भी उसके विरुद्ध बन्धुदत्त एक बडा षडयन्त्र रच रहा है, फिर भी वह अपने आप पर भरोसा करके धीरज रख कर सारा तमाशा देख रही है।

उधर भविष्यदत्त की माता कमलश्री अपने पुत्र के लिए अत्यन्त चिन्तित है। बन्धुदत्त से वार्तालाप करके वह समझ गई है कि उसने भविष्यदत्त के साथ धोखा किया है। परन्तु इस समय भविष्य कहां और किस हाल मे है और उस पर कैसी बीत रही है, यह वह नही जानती। यही जानने के लिए वह छटपटा रही है।

एक दिन कमलश्री घर से निकल कर किसी बगीचे में पहुँची। वहाँ अवधिज्ञान के धारक एक साधु महाराज विराजमान थे। कमलश्री ने उन्हे वन्दना की और फिर हाथ जोड कर कहा महाराज! आजकल मैं आर्त्तध्यान मे फसी रहती हूँ। धर्मध्यान मे मेरा मन नही लगता। मेरा इकलौता पुत्र परदेश गया है। उसके साथी लौट आये है, मगर वह नही लौटा है। कृपा कर आप बतला दें तो मेरा चित्त निराकुल हो जाय और धर्मध्यान मे लग सके। मुनिवर! आपसे सासारिक विषयो में बातचीत करना मुझे प्रिय नही है। तथापि मन को सान्त्वना मिल जायगी तो बिना विघ्न के धर्मध्यान होने लगेगा। आप आगमविहारी है, अतः मेरे प्रश्न का उत्तर दे सकते हैं।

मुनिराज ने उत्तर दिया—बहिन! तुम्हारा आर्त्तध्यान करना व्यर्थ है। यह मोह का प्रताप है। मोह कभी सुखदायक नही हो सकता। तुम धर्म की भावना को समझती हो तो जरा यह भी समझो कि आर्त्तध्यान करने से तुम्हारा लडका अगर दुखी हो तो क्या सुखी हो जायगा? मेरे कहने का आशय यह नही है कि वह दुखी है। वह दु.ख मे नही है और एक मास

में तुम्हारे पास आ जायगा। वैशाख शुक्ला पञ्चमी मगलवार को उसे तुम प्रत्यक्ष देख सकोगी। मगर मैं तो सिर्फ यही कहना चाहता हूं कि ऐसे प्रसग पर ही तो मन की परीक्षा होती है। चित्त को व्याकुल कर देने वाले कारण मौजूद होने पर भी चित्त को व्याकुल न होने देने और धीरज रखने मे ही तो मन की कसौटी होती है।

मुनिराज का उत्तर सुनकर कमलश्री को ऐसी प्रसन्नता हुई, जैसे किसी भिखारी को राजा का खजाना मिल गया हो अथवा अन्धे को आँखे मिल गई हो। उसने मुनिराज के ध्यान में वाधा डालने के लिए क्षमायाचना की। वन्दना की, नमस्कार किया और अपनी सहेलियो के साथ घर लौट आई।

अब कमलश्री ने अपना चित्त फिर धर्म ध्यान मे लगाया। सामायिक, पौषध और उपवास आदि करने लगी। भविष्यदत्त की प्रतीक्षा मे वह एक मास ऐसा लम्बा सा मालूम हुआ, मानो एक वर्ष हो!

इधर धनसार सेठ अपने पुत्र बन्धुदत्त को साथ लेकर हस्तिनापुर--नरेश के पास पहुँचे। उत्तम--उत्तम रत्न थाल मे रख कर राजा को भेट किये। फिर कहा महाराज! यह बन्धुदत्त व्यापार के निमित्त परदेश गया था। यह कमाई करके लौटा है और साथ ही रत्नद्वीप के राजा की राजदुलारी को भी लाया है। उसके साथ जल्दी ही इसका पाणि-ग्रहण होने वाला है! बन्धुदत्त आपका वरद आशीर्वाद चाहता है। कृपया इसे आशीर्वाद दीजिए।

राजा ने प्रसन्न होकर बन्धुदत्त की ओर देखा। उसके भविष्य के लिए अपनी शुभकामना प्रकट की। अन्त मे कहा—किसी चीज की आवश्यकता हो तो मँगवा लेना।

पिता-पुत्र राजा का आभार मानकर घर आये। बन्धुदत्त के विवाह की जोरदार तैयारियाँ आरम्भ हो गई। बिदौरी निकलने लगी। धनसार सेठ के घर पर अपूर्व चहल--पहल शुरू हो गई।

तिलकसुन्दरी सब देखती है और सोचती है कि जरा और ठहर जाऊँ। अभी सारा रहस्य खोल देने से उतना प्रभाव नहीं पडेगा, जितना ऐन मौके पर खोलने से! अभी बन्धुदत्त को अपने मन के लड्डू खा लेने दो। उसके पापों का प्रायश्चित तब शुरू होगा जब ठीक मौके पर उसकी पोल खोली जायगी!

उधर एक महीना पूरा होने मे सिर्फ तीन दिन शेष रहे है। कमलश्री अपनी सखियो से कहती है—भविष्यदत्त अभी तक तो आया ही नही है! न जाने कब आएगा, कब उसे देखूँगी और कब अपने कलेजे को ठडा करूँगी। सखियों तुम्हे विश्वास है कि भविष्यदत्त जल्दी आ जायगा?

सखिया उसे समझाती है - क्या आपको गुरु महाराज के वचनों पर भी श्रद्धा नही है? जब उन्होने कह दिया है तो उसके आने में सन्देह ही क्या हो सकता है? ससारत्यागी निर्लोभ, निस्वार्थ मुनि अगर ठीक बात न जानते होते तो स्पष्ट कह देते कि मैं नही जानता! और जब उन्होने कह दिया है तो उनका कथन मिथ्या नहीं हो सकता। कुमार आएँगे और बतलाये हुए समय पर ही आ जाएँगे। आप चिन्ता न करे।

तीन दिन भी बीत गए और आज वैशाख शुक्ला पंचमी का वही दिन है, जिस दिन के लिए मुनिराज ने भविष्यदत्त के आगमन की भविष्यवाणी की थी। आज कमलश्री का हृदय कभी वासो उछलने लगता है और कभी-कभी सशक हो उठता है। वह अतीव व्याकुलता के साथ प्रतीक्षा कर रही है।

सन्ध्या होने आई थी। उसी समय एक चमचमाता हुआ दिव्य विमान आकाश मे आता दिखलाई दिया। कमलश्री के घर के सभी लोग उसे कुतूहल से देख रहे थे। उनके आश्चर्य का पार न रहा जब उन्होने देखा कि विमान उन्ही के घर की ओर आ रहा है और नीचे उत्तर रहा है। किसी को कुतूहल हुआ तो किसी-किसी के चित्त मे भय का संचार हुआ। तब तक विमान उस घर की छत पर उतर गया। घर के सभी लोग चकित थे, मगर कमलश्री का दिल चुपके--चुपके बोल रहा था--कही भविष्य ही तो नही आ पहुँचा है ?

कमलश्री तत्काल ऊपर पहुँची। तब तक भविष्यदत्त विमान से उतर कर छत पर आ चुका था। उसने अपना सामान भी नीचे उतार लिया था। भविष्यदत्त पर दृष्टि पडते ही कमलश्री मानो पागल-सी हो उठी। वह भविष्य की ओर ऐसी लपकी जैसे अपने दीर्घकाल से बिछड़े हुए पुत्र को अपने हृदय की पिटारी मे ही बन्द कर लेगी ! उसने पुत्र को गले से लगा लिया। प्रेम की अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उस समय की कमलश्री की स्थिति का वर्णन नही हो सकता।

उधर भविष्यदत्त के हृदय मे भी हर्ष की हिलारे उठ रही थी।

उसने सोचा था कि मेरे वियोग के दुःख से न जाने मेरी माता की क्या स्थिति हुई होगी ! अब माता को सकुशल देख उसे अपरिमित सन्तोष और प्रसन्नता हुई ।

भविष्यदत्त ने माता के चरणो मे मस्तक नमाया । माता के प्रति उसकी असीम भक्ति थी वह माता को देवता के समान पूजनीय समझता था और सदैव उसे प्रसन्न देखना चाहता था । उसे भली--भाति विदित था कि मेरी माता पति के सुख से वञ्चित है, अतएव वह उसे सुखी रखने की और भी अधिक भावना रखता था । वह माता के अमित उपकार का बदला चुका सकने की बात तो कभी सोचता नही था, मगर उस उपकार के बदले, वह उस कर्त्तव्य को, जो माता के प्रति आदर्श पुत्र का होना चाहिए, पालन करता था ।

भविष्यदत्त ने जब माता के चरणो मे मस्तक नमाया तो कमलश्री ने कहा— वत्स ! चिरंजीव होओ ।

२९-१०-४८ }

साधुता

स्तुति :

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
आरभ्यते तनुधियाऽपि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु,
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते है—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! आपकी स्तुति करने से जन्म-जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं, ऐसा जानकर और मानकर मैं अल्पबुद्धि वाला

होते हुए भी आपकी स्तुति प्रारम्भ करता हूं। हे नाथ ! स्तुति को आरम्भ कर देना ही मेरी शक्ति की बात है, समाप्ति कर देना मेरे वश की बात नहीं है। कमलिनी के पत्ते पर पडा हुआ जल का बिन्दु मोती की सी आभा प्राप्त कर लेता है। इसमे जल के बिन्दु की कोई विशेषता नही है, विशेषता है कमलिनी के पत्ते की, जिसका ससर्ग पाकर जल का कण भी मोती सरीखा सुहावना प्रतीत होने लगता है। इसी प्रकार मेरे द्वारा रची हुए स्तुति मे अगर कुछ सुन्दरता आ गई और वह सत्पुरुषों को रुचिकर हुई तो उसका श्रेय मुझे नही, आपको ही होगा। मेरी बुद्धि तो इतनी अल्प है कि वह सुन्दर रचना कर नही सकती, फिर भी अगर रचना सुन्दर बनी तो वह आपकी ही महिमा का फल है। आपकी स्तुति होने के कारण ही वह सुन्दर होगी।

जिन परमप्रभु आदिनाथ ऋषभ की ऐसी महिमा है, उनको ही हमारा बार-बार नमस्कार है।

भाइयो ! भगवान् के जीवनचरित की कुछ बाते मैं बतला चुका हू। यह तो प्रकट ही है कि भगवान् पहले गृहस्थाश्रम मे थे। गृहस्थाश्रम का त्याग करके साधु बने और फिर तपस्या करके, चार घातिया कर्मों को क्षय करके पूर्णज्ञानी बने।

मरुदेवी माता साध्वी नही बनी थी और उन्हे केवलज्ञान हो गया। भरतजी ने भी दीक्षा लेकर तपस्या नही की, फिर भी उन्हे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी का पद प्राप्त हो गया था ! मगर ऐसे उदाहरण विरले हैं। सिद्धि प्राप्त करने का राजमार्ग भाव त्यागी अवस्था अगीकार करना ही है। भाव साधु-जीवन अगीकार किये

विना आत्मा का पूर्ण कल्याण नही होता। इसी कारण स्वयं भगवान् भी भाव साधु वने और फिर दूसरो को भी भाव साधु वनने का उपदेश दिया ।

असल वात यह है कि किसी भी महान् ध्येय की सिद्धि के लिए एकनिष्ठ प्रयत्न को आवश्यकता होती है। आपने देखा है कि भारतवर्ष की राजनीतिक मुक्ति के लिए कितने महान् पुरुषों को कितना प्रयत्न करना पडा ? गांधीजी जैसो को अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस महान् लक्ष्य की सफलता के लिए अर्पित कर देनी पडी। तव कहीं देश को स्वाधीनता मिल सकी।

आत्मा की मुक्ति भी एक महान् वल्कि महत्तम ध्येय है। उसकी प्राप्ति के लिए और भी अधिक प्रयास करने की आवश्यकता होती है। भारत को जिनके पजो मे से छुडाना था वे भारतीयो के समान ही स्थूल मनुष्य थे और भारत की पराधीनता भी सिर्फ सैकड़ो वर्षों की ही थी !

'सिर्फ सैकड़ो वर्षों की' यह शब्द सुन कर आप शायद आश्चर्य करेंगे और सोचेंगे कि सैकडो वर्ष क्या मामूली समय है ! ठीक है, दो दिन की अपेक्षा दो वर्ष का समय लम्बा होता है और दो वर्ष की अपेक्षा दो सौ वर्ष का समय और भी लम्बा होता है। मगर जिस काल की किसी प्रकार भी गणना नही हो सकती, जिसकी कभी आदि ही नही है, उस काल की अपेक्षा यह दो सौ वर्ष का समय किस गिनती मे है ?

भारतवर्ष करीब दो सौ वर्षों से पराधीन था और आत्मा अनादिकाल से पराधीन है। आत्मा को पराधीन बनाने वाली

कर्मशक्ति भी सूक्ष्म है । ऐसी स्थिति मे सहज ही कल्पना की जा सकती है कि आत्मा का उद्धार करने के लिए, आत्मा को पराधीन बनाने वाली शक्ति को पराजित करके, नष्ट करके आत्मा को पूर्ण स्वाधीन बनाने के लिए कितने प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है !

पुरुषार्थ कितना ही प्रबल और प्रचण्ड क्यो न हो, अगर उसमे अविचल--अडिग मनोभावना का सहयोग न हो तो वह पूर्ण सफल नही होता और जगह कुछ भी हो, मगर आध्यात्मिक साधना के लिए तो मनोभावो के सहयोग की अनिवार्य आवश्यकता है । मनोभाव भी तभी कार्यकारी होते हैं, जब उनमे एकनिष्ठता हो । मनोभावो मे एकनिष्ठता हुए बिना महान् सफलता पाने की सम्भावना नही की जा सकती ।

इस प्रस्तावना के प्रकाश मे अब आप विचार कीजिए कि आत्मकल्याण के लिए साधु-अवस्था क्यों अगीकार की जाती है ? मनुष्य जब तक गृहस्थाश्रम मे रहता है, उसके पीछे सैकड़ों सांसारिक झझटें लगी रहती हैं । अतएव गृहस्थी मे निर्विघ्न, निरन्तराय, एकाग्र भावपूर्वक आत्मसाधना होना सम्भव नही है । इसी कारण आत्मिक साधना करने वालो को त्यागी-साधु बन जाना पडता है ।

कल जो श्रावक के दर्जे का वर्णन किया था । उस मे एक बात और है । श्रावक के तीन प्रधान मनोरथ होते है, जिनमे एक मनोरथ यह भी है कि कब वह पुण्य-दिवस आएगा जब कि मैं साधु बन जाऊंगा । बार-बार यह भावना करने के कारण

जब उसका परिपाक हो जाता है और अन्तरंग मे प्रत्याख्याना-वरण चौकडी का नाश हो जाता है, तब साधुता उत्पन्न होती है। यह छटा दर्जा है। कहा भी है:—

प्रत्याख्यानी हटते छठे गुण सत्ताईस प्रकटाते है।
विषय कषाय धर्मराग विकथा निद्रा प्रमाद ज्या पाते हैं ॥

प्रत्याख्यानावरण कषाय के हटते ही छठा गुणस्थान आता है। प्रत्याख्यानावरण कषाय सर्वविरति चारित्र को रोकने वाली कषाय है। उसके चार भेद हैं—क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारो का स्वरूप इस प्रकार है:—

(१) क्रोध—जैसे बालू मे लकीर खीचने पर वह कुछ समय में हवा चलने से मिट जाती है, उसी प्रकार जो क्रोध कुछ उपाय करने से शान्त हो, वह प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहलाता है।

(२) मान—जैसे तेल आदि के मलने से काष्ठ मुड जाता है, उसी प्रकार जो मान थोड़े उपायो से नमाया जा सके, वह प्रत्याख्यानी मान कहलाता है।

(३) माया—जैसे चलते हुए बैल के मूत्र की टेढी लकीर थोडी देर मे हवा आदि कारणो से मिट जाती है, उसी प्रकार जो माया सरलता से दूर हो जाय वह प्रत्याख्यानी माया कहलाती है।

(४) लोभ—जैसे दीपक का काजल थोडे परिश्रम से ही छूट जाता है। उसी प्रकार जो लोभ कुछ परिश्रम से दूर हो, वह प्रत्याख्यानी लोभ है।

यह चारो कषाय जब उदय मे नही रह जाते हैं और क्रोध पानी मे खेंची हुई लकीर के समान, मान तिनके के समान जो कि अनायास ही नम जाता है, माया बाँस के छिलके के समान और लोभ हल्दी के रंग के समान रह जाता है, तब छठा दर्जा आता है। कदाचित् इससे अधिक क्रोध मान, माया और लोभ आ जाएँ और वे प्रत्याख्यानावरण की श्रेणी मे चले आएँ तो छठा गुण स्थान भी चला जाता है।

छठा गुणस्थान आते ही सत्ताईस गुण प्रकट होते हैं। वे इस प्रकार है--पाँच महाव्रत, पाच इन्द्रिय विजय, चार कषाय विजय, मन वचन काय की प्रशस्त प्रवृत्ति, भावसत्य, योगसत्य, ज्ञानसम्पन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, क्षमा, वैराग्य, सहिष्णुता और अन्तिम समय मे मारणान्तिक सलेखना।

यद्यपि छठे गुणस्थान मे पहुच कर जीव बहुत कुछ उन्नति कर लेता है, फिर भी उसके हृदय मे प्रशस्त धर्मराग बना रहता है, पाँचो प्रकार के (मद, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा) प्रमाद भी मौजूद रहते हैं। अर्थात् साधु कभी विकथा भी कर बैठता है, निद्रा भी लेता है, कदाचित् कषाय के वशीभूत भी हो जाता है और कभी विषय-रसनेन्द्रिय स्वाद आदि के एव मद के वशीभूत भी हो जाता है। फिर भी साधु जहाँ तक सम्भव होता है, इन्हें भी मिटाने की कोशिश करता है। इनको मिटावे तो ऊंचा चढ़े और बढावे तो नीचे गिरे, इसे प्रमत्तसयतगुणस्थान कहते हैं। अर्थात् प्रमादयुक्त साधुअवस्था इस दशा मे रहती है।

संज्वलन कषाय की चौकड़ी का उदय रहता है, इस कारण

कभी क्रोध भी आ जाता है। विषय-कषाय है, अतएव वह देखने के लिए भी चले जाते है। फिर भी इन दोषो को निरन्तर हटाने की ही भावना रखते हैं। दोष लग जाने पर प्रायश्चित्त लेते हैं। कुतूहल के वश होकर किसी वस्तु को देखने जाएं तो एक उपवास का दण्ड लेना पड़ता है।

मैं साधु की किसी कमजोरी का समर्थन नही करता, किसी प्रकार की शिथिलता को उत्तेजन नहीं देता, फिर भी कहना चाहिए कि छठे गुणस्थान का साधु प्रमाद-अवस्था रहने के कारण अपनी साधना मे त्रुटि कर बैठता है। जब कभी ऐसी स्थिति आवे तो दूसरो को स्थिति की वास्तविकता समझनी चाहिए। रोग होने पर दवा दी जाती है और गलती होने पर सजा दी जाती है। अनुचित कार्य करने पर दण्ड दिया जाता है। आप लोग कपडा फट जाने पर उसे सी लेते है कि नही? जहा तक वह काम मे आने योग्य हो, सीकर काम मे लेते हैं, एकदम सड़--गल गया हो तो फेंक भी देते हैं। यह छठे गुणस्थान की बात है। इस सम्बन्ध मे कहा है—

सिंह महाबलवंत पिंजर ताकी छेड़ करे मूढ़ भोगी,
नाग के बाल को कील दिया ताके हाथ लगावत पावे सोगी।
ऐसे मुनि कोई चूकि गये तो ताकी छेड करे मूढ़ लोगी,
चौथमल कहे सोच करे मत टूटी सी डांग हांडा केरी जोगी ॥

सिंह पीजरे में पड़ा है। कोई उसे देखने जावे और लकड़ी से छेड़कानी करे मगर जब पीजरे के अन्दर से सिंह दहाड़ता है तो छेड़कानी करने वाले का हृदय काप उठता है और उसे डरकर

पीछे भागना पड़ता है। नाग को मन्त्रो से कील देने पर भी वार-वार हाथ मे लिया जाय तो धोखा ही रहता है। इस प्रकार साधु की भूल देखकर जो निन्दा करते है, हंसी करते है, उन्हे समझना चाहिए कि लाठी कैसी भी टूटी-फूटी क्यों न हो, मटके को तो वह फोड ही सकती है—

शास्त्र मे कहा है कि शास्त्र का ज्ञाता कदाचित् चूक जाय तो उसका उपहास नही करना चाहिए। मिथ्यात्वी अभव्य जीव भी अगर नौ पूर्वों का ज्ञान प्राप्त कर ले और चूक जाय तो उसकी भी हँसी करना योग्य नही है।

आनन्द श्रावक ने गौतम स्वामी को बतलाया कि मुझे इतना इतना जान लेने की शक्ति वाला अवधिज्ञान हुआ है। गौतम स्वामी ने कहा—गृहस्थ को इतना ज्ञान नही होता। तुमने गलती की है ऐसा कह करके, इस कारण प्रायश्चित्त लो। आनन्द बोले महाराज! मैंने कोई गलती नही की, प्रायश्चित यदि भूल का होता हो तो आप कीजिए। गौतम स्वामी निर्णय करने के लिए भगवान् महावीर स्वामी के पास पहुँचे। भगवान् ने निर्णय दिया कि श्रावक आनन्द सच्चा है। तुम उसके पास जाकर खमाओ। यह सुनकर सरल हृदय गौतम बेले की तपस्या का पारणा किये विना ही, फिर वाणिज्यग्राम मे गये। आनन्द श्रावक के पास पहुच कर उन्होने कहा—उस समय बराबर उपयोग नहीं लगा था। मैं आपको खमाता हूं!

आशय यह है कि छद्मस्थ से भूल हो जाना स्वाभाविक है। कभी कोई वचनो से चूक जाय तो चिढ़ना नहीं चाहिए।

इस प्रमत्तसयतगुणस्थान में दो प्रकार के साधु होते है।

स्थविरकल्प जिनकल्प दोनों, निग्रन्थ यहां पर होते है।
स्थविर बसे वन या बस्ती, जिनकल्प विपिन को जाते है॥

साधुता की अवस्था दो प्रकार की वतलाई गई है—एक तो स्थविरकल्पी और दूसरे जिनकल्पी होते हैं। स्थविरकल्पी मुनि संघ के साथ रहते है और जिनकल्पी एकाकी विचरते हैं। स्थविर-कल्पी मुनि जंगल मे भी निवास कर सकते है और बस्ती मे भी रह सकते है, मगर जिनकल्पी जगल मे ही रहते है और सिर्फ भिक्षा के लिए बस्ती मे आते हैं। कहा है

आहार हेतु बस्ती में आते हो अचेल न शिष्य बनाते है।
न उपदेशे एकाकी रहवे, दवा न काम में लाते हैं॥

जिनकल्पी मुनी का त्याग और वैराग्य उच्च श्रेणी का होता है। उनके चित्त के अध्यवसाय भी उच्च कक्षा के होते हैं। अतएव वे बस्ती से बाहर रह कर ही आत्मध्यान आदि पारमार्थिक कार्यों मे मग्न रहते हैं। वे वन मे अचेलक अवस्था में ही रहते हैं। किसी को अपना चेला नही बनाते। न दीक्षा देते हैं और न उपदेश ही देते हैं। उनका त्याग-वैराग्य इतनी उच्च श्रेणी का होता है कि शरीर मे व्याधि उत्पन्न हो जाने पर वे औषध का भी सेवन नही करते।

न कंटक दूर करे कर से, न सिह देख फिर जाते है।
अटल पतिज्ञा है उनकी, नही कष्टों से घबराते है॥

भाइयो ! जिनकल्पी मुनि इतने दृढ प्रतिज्ञ होते है कि रास्ते मे काँटे पड़े हो तो उन्हे भी नही हटाते है, यहा तक कि कांटे पैर मे चुभ जाए तो भी अपने हाथ से नही निकालते है ! एक जगह से दूसरी जगह जा रहे हो और सामने सिह आ रहा हो तो वे रास्ता छोड़ कर नही हटते ! उन्हे भय नही होता और कैसा भी कष्ट क्यो न आ पडे, घबराते नही हैं। क्रोध उन्हे आता नहीं है। कोई मारे–पीटे या प्राण ले लेवे, तब भी वे उस पर क्रोध नही करेंगे। बस्ती में आहार के लिए आ गये, नही तो चार-चार महीनो तक निराहार ही रहते हुए आत्म ध्यान, स्वाध्याय आदि मे लीन रहते हैं। जिस जगह वन मे वास करते हैं, उस जगह का जनता को पता चल जाय, लोग आने--जाने लगे और इस कारण उनकी साधना मे बाधा पडने लगे तो वे उस स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान पर चले जाते है।

मुनि की यह महान् साधना है। जिन महापुरुषो ने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो और जिनकी वृत्ति आत्मा की ओर ही बनी रहती हो, जिन्होंने शरीर को आत्मा से पर अनुभव कर लिया हो और वह अनुभव सदा जागृत रहता हो, जो देहध्यास से ऊपर उठ गये हों, वही इस अवस्था को धारण करते हैं। प्रत्येक साधक मुनि यह अवस्था प्राप्त नही कर सकता। जिनकल्प--अवस्था को धारण करने की योग्यता उसी मे आती है जो:—

वज्र-ऋषभनाराचसंघयन, अरु नौ पूरवधारो हो।
जिन दीक्षित या दीक्षित का दक्षित, वह जिनकल्प विहारी हो॥

जो वज्रऋषभनाराच संहनन को धारण करने वाला और

नौ पूर्वों का ज्ञाता होता है, वह इस अवस्था को अंगीकार कर सकता है। साक्षात् तीर्थंकर भगवान् ने जिसे दीक्षा दी हो अथवा तीर्थंकर भगवान् द्वारा दीक्षित साधु ने दीक्षा दी हो, वही जिन-कल्पी मुनि बनता है। इनके सिवाय किसी तीसरे से दीक्षित होने पर यह अवस्था नहीं आती।

तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक साधना की उच्चतर कक्षा में पहुँचने के लिए शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की विशिष्ट योग्यता अपेक्षित रहती है। जिसे वह योग्यता प्राप्त हो जाती है, वह साधना के पथ मे विशेष अग्रगामी हो जाता है और अपने कार्मिक विकारो को नष्ट करके आत्मा को पवित्र एव निर्मल वना लेता है।

मुनियो की दूसरी श्रेणी को स्थविरकल्पी श्रेणी कहते हैं। उसके विषय मे कहा है।

स्थविरकल्प के शिष्य शाखा और धर्म देशना देते हैं।
प्रमाणोपेत वस्त्र रखते और औषध भी ले लेते है ॥

स्थविर कल्प के साधु चेले बनाते हैं, अपनी शिष्य परम्परा चलाते हैं और धर्मोपदेश भी करते हैं। वे शास्त्रोक्त प्रमाण में वस्त्र भी रखते हैं। शरीर में व्याधि हो जाने पर औषध का भी सेवन करते हैं।

विन कारण गृहस्थ के घर पर आहारादिक नही खाते हैं।
ला के स्थान पै गुरु आज्ञा से वे विधियुक्त से पाते है ॥

स्थविरकल्पी मुनि भी बिना प्रयोजन गृहस्थ के घर नहीं जाते। प्रयोजन होने पर जाते हैं तो वहा बैठते नही हैं। खडे-खडे अपना प्रयोजन पूर्ण करके लौट आते है। इस विषय में अगर कोई अपवाद है तो यही कि—

> तिण्णमन्नतरागस्स, निसज्जा जस्स कप्पई।
> जराए अभिभूतस्स, वाहिणो य तवस्सिणो॥

जो मुनि वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त अभिभूत हो गया हो, वह विश्राम लेने के लिए थोडी देर गृहस्थ के घर बैठ सकता है। इसी प्रकार जो बीमार हो या तपस्वी हो उसे भी बैठने का अधिकार है। बीमारी के कारण दुर्बल या कोई लम्बी तपस्या करने के कारण अशक्त हुआ मुनि भिक्षा के लिए अपने स्थान से निकले और गृहस्थो के घरो मे घूमता-घूमता इतना थक जाय कि विश्राम लिये बिना अपने स्थान तक पहुँच न सकता हो तो वह गृहस्थ के घर विश्राम कर सकता है। पूर्वोक्त तीन प्रकार के साधुओ के अतिरिक्त और किसी को वहां बैठने की आज्ञा नहीं है। यही नही बल्कि गृहस्थ के घर पर निष्प्रयोजन खड़ा भी नहीं रहना चाहिए और आवश्यकता से अधिक बातचीत भी नही करनी चाहिए, गृहस्थ के घर पर भोजन भी नही करना चाहिए। अपवाद रूप में प्राप्त हुई भिक्षा, एक किनारे बैठ कर खा सकता है, पर वह अपवाद ऐसे ही मुनियो के लिए जिनका जिक्र ऊपर किया गया है। हां जिनकल्पी मुनि गृहस्थ के घर पर ही, पाणि-पात्र होने से भोजन करते हैं और एक ही बार भोजन करते हैं, उसी समय पानी पी लेते हैं। बाद मे फिर पानी भी नही पीते।

एक पात्र मे शौच के लिए अचित्त जल ले जाते हैं। स्थविरकल्पी आहार लाकर अपने गुरु को बतलाते हैं और आलोचना करते हैं। कोई दोष लग गया हो तो प्रायश्चित्त लेते हैं। गुरु की आज्ञा लेकर आहार करते हैं! आहार करते समय सरस--नीरस का विचार नही करते ! समभाव से सब प्रकार के आहार को निगल जाते है ।

बाईस परीषह उभय सहे, द्वादश विध तप कमाते हैं।
देशन्यून कोटि पूर्व स्थिति या अन्तर्मुहूर्त्त रह पाते है ॥

जिनकल्पी और स्थविरकल्पी दोनो प्रकार के मुनिओ को बाईस परीषह सहन करने पड़ते हैं और दोनो बारह प्रकार की तपस्या करते हैं। इनमे छह अन्तरग तप है और छह बाह्य तप हैं। छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है और उत्कृष्ट स्थिति नो वर्ष कम एक करोड पूर्व की है।

भाइयो! साधुत्व का प्राण समभाव है। साधु की प्रत्येक अवस्था मे समभाव रखना पड़ता है। भिक्षा के लिए निकलने पर और भ्रमण करने पर भिक्षा मिल गई तो ठीक और न मिल गई तो ठीक! मिल गई तो हर्ष नही, न मिली तो विषाद नही! न मिलने पर वे सोचते हैं—चलो अच्छा ही हुआ। आज अनायास ही उपवास हो गया! तपस्या करने का सुअवसर मिल गया! इसी प्रकार कोई वन्दना--नमस्कार करे तो अभिमान न धारण करे और गाली दे तो क्रोध नही करे। मतलब यह है कि साधु को प्रत्येक दशा मे समभाव की ही साधना और आराधना करनी चाहिए।

साधु का मार्ग बडा कठिन है, बहुत टेढा है। स्वादु बनना तो दूसरी बात है, परन्तु सच्चा साधु बनने के लिए तो बड़ी सावधानी रखनी पडती है। मुक्ति को प्राप्त करने के लिए साधुता अगीकार की जाती है। बीच में अपने लक्ष्य को छोड कर अगर चक्कर मे पड गये तो दोई दीन से गए। न इधर के न उधर के रहे गृहस्थी के सुख से भी वचित हुए और आत्मा का प्रयोजन भी पूरा न हुआ।

इस अवसर्पिणी काल मे जम्बू स्वामी अन्तिम केवली हुए हैं। जब तक वे रहे तब तक सब बाते रही। उनके निर्वाण के पश्चात पाँच चारित्रो मे से सामायिक और छेदोपस्थापना नामक दो ही चारित्र रह गये है। परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात चारित्र का लोप हो गया। काल के दोष से मनुष्यो की शक्ति क्षीण हो गई है और निरन्तर क्षीण होती जा रही है। शारीरिक और मानसिक बल घट गया है। अतएव आज पहले की भाति उत्कृष्ट चारित्र से सम्पन्न मुनि नही रहे। फिर भी देश, काल के अनुसार जो साधना कर रहे हैं और भगवान् की आज्ञा मे चल रहे हैं, वे भाग्यवान् हैं। उनमे स्खलनाएँ हो सकती है, फिर भी तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट हो जायगा कि इस गये बीते जमाने मे भी भगवान् महावीर के अनुयायी साधु, ससार के अन्य सभी साधुओ की अपेक्षा अधिक त्यागी, तपस्वी और आचारपरायण हैं। लोग कहते हैं—

मूंड़ मुड़ाये तीन गुण, मिटे मूंड़ की खाज।
खाने को लड्डू मिलें, लोग कहे महाराज॥

मगर ऐसी बात नही है। जहा तक जैन साधु का प्रश्न है, यह धारणा गलत है। कोई साधु वन कर देखे तो पता चले कि साधुपना पालना सरल है या कठिन है! वर्ष मे दो बार लोच करने मे ही खबर पड जाती है! यह भी कोई मामूली वात नही है। किसी का चरित्र उत्तम न हो या कोई सिर्फ अपने जीवन निर्वाह के लिए साधु का वेष धारण कर ले, यह वात दूसरी है, मगर जिसने आत्मा के कल्याण के लिए गृह त्याग किया है, और साधु का वेष धारण किया है, वह भगवान् की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करता है।

भाइयों! ससार मे तरह-तरह के लोग है। श्रावकों मे भी सब समान नही होते। कई श्रावक माता--पिता के समान होते है, कई मित्र के समान होते है, कई भाई के समान होते हैं और कई सौत के समान भी होते हैं। जो माता-पिता, भाई या मित्र के समान होते हैं, वे समय पर साधु को यथोचित चेतावनी और शिक्षा देते है, किन्तु जो सौत के समान होते हैं वे ईर्षा–द्वेष का भाव रखते हैं और निन्दा करते हैं, विज्ञापन छपवा-छपवा कर निन्दा फैलाते हैं और जब साधु चले जाते हैं तो उन्हे पहरावणी देते है!

दुखमा आरा पांचवां निर्लज लोग अपार।
सन्मुख तो भक्ति करे, पीठे निन्दै गंवार॥

यह अवसर्पिणी काल का पांचवां आरा है। इस आरे के लोग सामने कुछ नही कहते और पीठ पीछे निन्दा करते हैं! जिसके हृदय मे धर्म की सच्ची लगन होगी, जो साधुओ के प्रति

निष्कपट प्रीति रखता होगा, वह साधु की कोई त्रुटि देखेगा तो शुद्ध भावना से, उसी के सामने प्रकट करेगा। वह ढोल नही पीटता फिरेगा। इसके विपरीत जिसके हृदय में सच्चा धर्मप्रेम नहा है, वह त्रुटि न देखकर भी निन्दा फैलाने का प्रयत्न करेगा !

यह पाचवाँ आरा धर्म के लिहाज से बड़ा भयानक है। अभी तो जैसे-तेसे रूप मे धर्म की भावना मौजूद है और साधु एव श्रावक अपनी--अपनी शक्ति के अनुसार धर्म का आचरण भी कर रहे हैं किन्तु बाद मे तो ऐसा समय आने वाला है कि धर्म का नाम ही नही रह जायगा। जिस दिन पाचवाँ आरा समाप्त होगा, उस दिन पहले ही पहर मे धर्म का विच्छेद हो जायगा, दूसरे पहर मे राजनीति समाप्त हो जायगी और तीसरे चौथे प्रहर मे प्रलय का दृश्य दिखाई देने लगेगा। जहरीले जल की वर्षा होगी और मनुष्य तथा जानवर मर जाएंगे। पर्वत और पहाड खत्म हो जाएंगे। ऐसी भयानक आँधी चलेगी कि पहाड़ रुई के ढेर के समान उड जाएंगे। दुनिया की सारी स्थिति ही बदल जाएगी। पर यह स्थिति उत्पन्न होने मे अभी काफी समय बाकी है। पाचवा आरा इक्कीस हजार वर्ष का है। उसमे से अभी लगभग अढाई तीन हजार वर्ष ही बीते हैं, करीब अठारह हजार वर्ष और बीतने हैं।

छठे आरे मे जो मनुष्य बच रहेगे वे वैताढ्य पर्वत के बिलो मे घुस कर रहेगे। उनकी लम्बाई सिर्फ एक हाथ की होगी। कुल सोलह वर्ष की आयु होगी। शरीर मे चार पसलिया रहेगी। ओढने-बिछाने का कोई ठिकाना नही रहेगा। सब मनुष्य सुबह के समय अपने-अपने बिलो में से निकलेगे और गंगा-सिन्धु

नदियो मे से मगर, मच्छ, कच्छ पकड कर रेत मे गाड देंगे। दिन की तेज धूप मे वह पक जाएँगे तो शाम के समय निकाल कर उन्हे खा जाएँगे। इस प्रकार की घोर दु.खमय स्थिति बयालीस हजार वर्ष तक रहेगी। छठा आरा यद्यपि इक्कीस हजार वर्ष का है, परन्तु उसके बाद नवीन उत्सर्पिणी काल का दु.खमदु खम आरा लग जायगा और उसमें भी इक्कीस हजार वर्ष तक वही स्थिति जारी रहेगी।

भाइयो ! यह जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और जीवाभिगम सूत्र का जिक्र है। वहां बतलाया गया है कि उस समय के मनुष्यो के पास न खाने के लिए बरतन होगे, न पानी पीने के लिए कोई पात्र होगा ! वे जीवो की खोपडी मे पानी ले-लेकर पीएँगे। उनके शरीर मे खुजली की बीमारी होगी। हर तरह से उनकी हालत बड़ी ही करुणाजनक होगी। अगर आपने अच्छी करनी न की तो ऐसी स्थिति आपको भी भुगतनी पड़ेगी। इसीलिए हम कहते है कि थोडी-बहुत करनी कर लो अभी धर्म की आराधना का अच्छा अवसर है और सयोगवश आपको मनुष्य का जीवन मिल गया है तो इससे पूरा लाभ उठा लो। अपने भविष्य को सुधार लो। पल्योपम की आयु पा जाओगे तो भी यह समय नही देखना पडेगा और इस दारुण दशा से बच जाओगे । समय पर चेत जाओ। अभी तीर तुम्हारे हाथ में है। हाथ से छूट जाने पर फिर कुछ नही होगा। पश्चात्ताप करने पर भी लाभ नही होगा। अतएव दूसरे के दोषो को देखने की अपेक्षा अपने ही दोषो को देखो और उनसे बचने के अभिप्राय से देखो। अपने किसी दोष की उपेक्षा मत करो, उसे सहन मत करो। ऐसा करोगे तो दुःखम-दुःखम आरे के भयानक दु.खो से अपनी रक्षा कर सकोगे।

दुःखमदुःखम आरा समाप्त हो जाने के पश्चात् उत्सर्पिणी काल का जब दूसरा आरा लगता है तो फिर स्थिति मे परिवर्त्तन आता है। दूसरे आरे के प्रारम्भ मे पाच प्रकार का पानी बरसेगा। इससे पहले पृथ्वी बहुत ही उष्ण जलते चूल्हे पर चढे हुए तवे के समान होती है। मगर जब पहली वर्षा सात दिन और सात रात तक, निरन्तर सब जगह एक-सी बरसती है तो वह ठडी हो जाती है। दूसरी वर्षा से जमीन मे चिकनापन आ जाता है। तीसरी वर्षा होने पर वनस्पतिया उग आती है, हरियाली हो जाती है और पृथ्वी अपने स्वाभाविक रूप मे आ जाती है। चौथी वर्षा से वह वनस्पतियाँ बढती हैं और फूलने लगती हैं। तदन्तर पाँचवी वर्षा होती है तो उनमे फल लग जाते हैं।

प्रकृति का यह परिवर्त्तन देखकर बिलो मे रहने वाले मनुष्य बाहर निकलते है और फलो का भक्षण करते हैं। पहले मास खाकर अपना जीवनयापन करते थे, अब फल-फूल हो जाने पर मास खाना छोड देते हैं। उनमे से कोई को अपने पूर्व-जन्म का ज्ञान हो जाता है।

उसी समय तरह तरह के अनाज भी उत्पन्न हो जाते है। हवा के कारण बीज इधर-उधर बिखर जाते है और जगह-जगह फल-फूल पैदा हो जाते हैं। मासभक्षण करने से बुद्धि तामस हो जाती है। जब वे मासभक्षण छोड कर फल-फूल खाने लगते हैं तो उनकी बुद्धि भी निर्मल और सात्विक हो जाती है। उनमे औत्पातिकी, वैनयिकी और कार्मिक बुद्धि का भी धीरे-धीरे विकास होने लगता है। इस विकास के फलस्वरूप सामाजिक मर्यादा भी कायम होने लगती है। यह मेरी बहिन है, यह मेरी

लकड़ी है, यह मेरी माता है, इस प्रकार का विवेक उनमें पैदा हो जाता है।

अगली उत्सर्पिणी का जब तीसरा आरा लग जायगा तब श्रेणिक महाराज का जीव पद्मनाभ के नाम से यहाँ आकर उत्पन्न होगे और प्रथम तीर्थंकर का पद प्राप्त करेगे। वही सब प्रकार की मर्यादाएँ स्थापित करेगे समाजनीति, राजनीति, जीवन-नीति और फिर धर्मनीति की स्थापना करेंगे। वे स्वयं साधु बन कर और केवलज्ञान प्राप्त करके जगत् के जीवो के उद्धार के लिए धर्म का प्रसार करेंगे। इस प्रकार बीच-बीच मे धर्म उठ जाता है और फिर तीर्थंकर भगवान् जन्म लेकर उसकी स्थापना करते हैं।

इस कथन का आशय कोई यह न समझले कि मोक्ष मे गये हुए तीर्थंकर फिर जन्म लेकर धर्म स्थापित करते हैं। नही, न जैन सिद्धात ऐसे मानता है और न मुक्ति मे गये हुए परमात्मा फिर संसारी आत्मा बन सकते हैं। बल्कि प्रत्येक सर्पिणी काल मे नये-नये ही तीर्थंकर जन्म लेते हैं और धर्मस्थापना करते है।

भाइयों! पाचवे, छठे आरे का और उसके बाद का जो विवरण आपको सुनाया है, वह इस आशय से सुनाया है कि आप उससे कुछ बोध प्राप्त कर सके, अपने आपको भविष्य मे आने वाले अतिशय दारुण, दयनीय एव दुःखपूर्ण दशा से बचा सके। अगर आपने ऐसी करणी की कि देवगति मे एक पल्योपम की भी आयु प्राप्त हो सकी तो आप इस दुर्दशा से बच जाएँगे। इधर युग परिवर्त्तन होगा और उधर आप दिव्य सुखो का उपभोग करेंगे। फिर मनुष्यगति मे उत्पन्न होओगे तो वह दुःख नही भोगने

पड़ेगे। उस समय परम पूज्य त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर भगवान् इस भूमि पर विचरेंगे और सब तरह से आपका कल्याण ही कल्याण होगा।

दुनिया मे सुख और दु ख का चक्र चलता ही रहता है। इस परिवर्त्तनशील ससार मे किसी की स्थिति ज्यो की त्यो कायम नही रहती। कभी सुख आता है, कभी दु ख का सामना करना पडता है। परन्तु आप यह नही जान सकते कि कब क्या होने वाला है? अतएव जो समय आपको मिला है, उसका सदुपयोग कर लो। जो कुछ भी सामग्री आपके पास की है, उसे अपने हित मे ही लगाओ। अपने भविष्य को आनन्दमय बनाने का प्रयत्न करो। ईश्वर की आराधना करो। सौभाग्य समझो कि आज तुम्हे धर्म ध्यान करने की पूरी--पूरी सुविधा प्राप्त हुई है। इससे कुछ फायदा उठा लोगे तो आपका ही भला होगा। इस जीवन का भरोसा नही है। यह तो सन्ध्या काल की कालिमा के समान है। थोडी देर ठहरने वाला है अतएव एक क्षण भी व्यर्थ मत गँवाओ और प्रभु की भक्ति करके अपने जीवन को आनन्द पूर्ण और धन्य बना लो। इसके लिए सद्भावना और सदाचार की आवश्यकता है।

मुनिजन यही विचार कर आत्मकल्याण मे लगे रहते है। आप मुनि बन सके तो अच्छी बात है। न बन सके तो भी कोई हानि नही। देवलोक के दिव्य द्वार मे सद्गृहस्थ भी प्रवेश पाते हैं। गृहस्थधर्म का यथावत् पालन करने से भी आपका उद्धार हो जायगा।

लकडी है, यह मेरी माता है, इस प्रकार का विवेक उनमे पैदा हो जाता है ।

अगली उत्सर्पिणी का जब तीसरा आरा लग जायगा तब श्रेणिक महाराज का जीव पद्मनाभ के नाम से यहाँ आकर उत्पन्न होगे और प्रथम तीर्थंकर का पद प्राप्त करेंगे । वही सब प्रकार की मर्यादाएँ स्थापित करेगे समाजनीति, राजनीति, जीवन-नीति और फिर धर्मनीति की स्थापना करेगे । वे स्वय साधु बन कर और केवलज्ञान प्राप्त करके जगत् के जीवो के उद्धार के लिए धर्म का प्रसार करेंगे । इस प्रकार बीच-बीच मे धर्म उठ जाता है और फिर तीर्थंकर भगवान् जन्म लेकर उसकी स्थापना करते हैं ।

इस कथन का आशय कोई यह न समझले कि मोक्ष मे गये हुए तीर्थंकर फिर जन्म लेकर धर्म स्थापित करते हैं । नही, न जैन सिद्धात ऐसे मानता है और न मुक्ति मे गये हुए परमात्मा फिर ससारी आत्मा बन सकते हैं । बल्कि प्रत्येक सर्पिणी काल में नये-नये ही तीर्थंकर जन्म लेते है और धर्मस्थापना करते हैं ।

भाइयों ! पाचवे, छठे आरे का और उसके बाद का जो विवरण आपको सुनाया है, वह इस आशय से सुनाया है कि आप उससे कुछ बोध प्राप्त कर सके, अपने आपको भविष्य मे आने वाले अतिशय दारुण, दयनीय एव दु:खपूर्ण दशा से बचा सके । अगर आपने ऐसी करणी की कि देवगति मे एक पल्योपम की भी आयु प्राप्त हो सकी तो आप इस दुर्दशा से बच जाएँगे । इधर युग परिवर्तन होगा और उधर आप दिव्य सुखो का उपभोग करेंगे । फिर मनुष्यगति मे उत्पन्न होओगे तो वह दुःख नही भोगने

इसके बाद कमलश्री ने अपने पुत्र से कहा—बेटा! तूने इतनी देरी क्यो लगाई? तू कहां रह गया था? मैं तो तेरे लिए तडफ रही थी और राहगीरो से तेरे विषय में पूछा करती थी। पर तूने अपने साथियो को छोड कर इतना समय कहां लगा दिया?

भविष्यदत्त ने प्रश्न किया क्या बन्धुदत्त आ गया है? तुमने कोई बात सुनी हो तो कहो।

कमलश्री—बन्धुदत्त आ गया है और उसके साथ महाजन भी लौट आये हैं। बन्धुदत्त बहुत मूल्यवान् सम्पत्ति लाया है और किसी राजा की एक सुन्दरी कन्या भी लाया है। सुना है, वह कन्या रात--दिन उदास रहती है और रोती रहती है। उसके साथ बन्धुदत्त का विवाह जल्दी ही होने वाला है।

भविष्यदत्त को तिलकसुन्दरी के सतीत्व पर पूरा विश्वास था। माता की बात सुनकर वह सारी परिस्थिति समझ गया। घृणा और क्रोध से उसके नेत्र लाल--लाल हो गये। फिर भी उसने अपने आपको काबू मे रक्खा और आरम्भ से लेकर अन्त तक का हाल अपनी माता को सुनाया। किसी प्रकार बन्धुदत्त ने पहली ही मजिल पर विश्वासघात करके उसे मैनागिरि पर्वत पर छोड़ दिया, किस प्रकार उसने दानव को प्रसन्न किया और तिलक-सुन्दरी के साथ उसका विवाह हुआ, किस प्रकार बन्धुदत्त दुर्दशा मे ग्रस्त होकर उसके पास पहुँचा और किस प्रकार बन्धुदत्त ने फिर धोखा देकर उसे अकेला छोड़ दिया, यह सब अपनी माता को बतलाते--बतलाते उसका क्रोध उभर आया!

पाचवे आरे के अन्तिम समय तक एक साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का अस्तित्व रहेगा। तब तक ही धर्म करने का अवसर है। मगर आपको ऐसा अवसर फिर मिलेगा या नहीं, यह आप नही जानते, मैं भी नही जानता और कोई भी छद्मस्थ नही जानता। अतएव अगर आपकी बुद्धि अच्छी है, आपका विवेक जागृत है और आपकी विचार शक्ति काम दे रही है तो, भाइयो ! विलम्ब न करो। विलम्ब करने से पछताना पड़ेगा। भगवान् ने गौतमस्वामी को चेतावनी दी थी:--

समयं गोयम ! मा पमायए।

गौतम ! एक समय भर का भी प्रमाद मत कर।

क्या आपको इस चेतावनी की आवश्यकता नही है ? गौतमस्वामी ने प्रभु की चेतावनी का सन्मान किया और अपनी आत्मा का कल्याण कर लिया उन्होने अजर-अमर पदवी प्राप्त कर ली। आप अब भी इस ससार मे भटक रहे है। इस भवभ्रमण का अन्त करने के लिए मनुष्य जीवन मे ही प्रयत्न हो सकता है। इसी कारण मैं आपको यह प्रेरणा करता हूं।

भविष्यदत्त-चरित:—

कमलश्री, अपने पुत्र भविष्यदत्त को पाकर निहाल हो गई। भविष्यदत्त दीर्घकाल के पश्चात् लौटकर आया है, अतः माता का दिल आनन्द के झूले मे झूल रहा है। जैसे तडफती हुई मछली को पानी मिल जाय तो मानो जान मिल जाती है, उसी प्रकार कमलश्री को पुत्र पाकर ऐसी प्रतीति हुई मानो प्राण ही मिल गया हो !

इसके बाद कमलश्री ने अपने पुत्र से कहा—बेटा ! तूने इतनी देरी क्यों लगाई ? तू कहा रह गया था ? मैं तो तेरे लिए तडफ रही थी और राहगीरों से तेरे विषय मे पूछा करती थी। पर तूने अपने साथियो को छोड कर इतना समय कहां लगा दिया ?

भविष्यदत्त ने प्रश्न किया क्या बन्धुदत्त आ गया है ? तुमने कोई बात सुनी हो तो कहो।

कमलश्री—बन्धुदत्त आ गया है और उसके साथ महाजन भी लौट आये हैं। बन्धुदत्त बहुत मूल्यवान् सम्पत्ति लाया है और किसी राजा की एक सुन्दरी कन्या भी लाया है। सुना है, वह कन्या रात--दिन उदास रहती है और रोती रहती है। उसके साथ बन्धुदत्त का विवाह जल्दी ही होने वाला है।

भविष्यदत्त को तिलकसुन्दरी के सतीत्व पर पूरा विश्वास था। माता की बात सुनकर वह सारी परिस्थिति समझ गया। घृणा और क्रोध से उसके नेत्र लाल--लाल हो गये। फिर भी उसने अपने आपको काबू मे रक्खा और आरम्भ से लेकर अन्त तक का हाल अपनी माता को सुनाया। किसी प्रकार बन्धुदत्त ने पहली ही मजिल पर विश्वासघात करके उसे मैनागिरि पर्वत पर छोड दिया, किस प्रकार उसने दानव को प्रसन्न किया और तिलक-सुन्दरी के साथ उसका विवाह हुआ, किस प्रकार बन्धुदत्त दुर्दशा मे ग्रस्त होकर उसके पास पहुँचा और किस प्रकार बन्धुदत्त ने फिर धोखा देकर उसे अकेला छोड़ दिया, यह सब अपनी माता को बतलाते--बतलाते उसका क्रोध उभर आया !

अन्त मे उसने कहा—माताजी ! जब बन्धुदत्त मुझे फिर अकेला छोड लौट आया तो मैंने उसी देवता का स्मरण किया। देवता आया और उसने अपने विमान में बिठला कर मुझे अपने घर पहुचा दिया है।

बन्धुदत्त के घोर विश्वासघात की बात सुन कर कमलश्री का हृदय अत्यन्त आहत हुआ। बन्धुदत्त भयानक राक्षस के रूप मे उसे दिखलाई दिया। उसने कहा—मुझे तो पहले ही यह आशंका थी और इसीलिए मै कहती थी कि तू उसके साथ मत जा। यह सब उसकी माता स्वरूपश्री की ही करतूत समझना ! वह जहर की गाठ है। उसी ने बन्धुदत्त को ऐसा पाठ पढाया होगा। हाय मनुष्य कितना पातकी हो सकता है, इस बात की मिसाल उसने पेश कर दी है ! खैर, उसे तो अपनी करतूतो का फल मिलेगा ही पर मेरी पुत्रवधू की क्या स्थिति हो रही होगी ? बेचारी जिस दिन से आई है, व्यथित और विकल है। रात--दिन आसू बहाती रहती है। उस पर कैसी बीत रही होगी ?

कुछ देर सोचकर कमलश्री ने कहा हमारा पहला काम अब यही होना चाहिए कि तिलकसुन्दरी को अपने यहा ले आवे। मुझे किसी का भय नही है, किसी से डरती नही हूँ। अभी बन्धुदत्त के घर जाती हू और अपनी बहू को ले आती हूँ ! देखें, कौन मुझे मना करता है ? सबकी ऐसी खबर लूँगी कि याद रक्खेंगे आततायी और हत्यारे बन्धुदत्त की पोल खोल कर रख दूँगी। दुनिया उसके नाम पर थूकेगी।

भविष्यदत्त माता का जोश देख कर हँस पड़ा। उसने

कहा—माता ! तुम्हारी वहू तुम्हारी ही है। वह कहां जाने वाली है ? तुम्हारी ही सेवा के लिए तो मैने विवाह किया है। पर जरा धीरज रक्खो। युक्ति से काम लिया जायगा तो अच्छा रहेगा। मैं वहुत जल्दी ही व्यवस्था किए लेता हू।

इस प्रकार भविष्यदत्त के कहने पर कमलश्री शान्त हो गई, फिर भी उसके हृदय का तूफान शान्त नही हुआ। वह तिलकसुन्दरी को देखने, उसे सान्त्वना देने और अपने घर ले आने के लिए विकल हो उठी।

भविष्यदत्त ने फिर कहा—माताजी ! आप निश्चिन्त रहें हमे अपने धर्म पर दृढ रहना है। जिस धर्म के प्रताप से मेरी रक्षा हुई और मैं आपके चरणो मे पुनः आ सका, उस धर्म की हमे भी रक्षा करनी है। धर्म की रक्षा करने वाले की ही रक्षा होती है। धर्म के प्रताप से सब प्रकार आनन्द ही आनन्द होगा।

ध्यान

स्तुति :

आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त दोषं,
त्वत्संकथाऽपि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्त्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवान् ! समस्त दोषो से रहित आपके स्तवन से जगत् के जीवो के पापो का नाश हो जाता है, इसमे बड़ी बात ही क्या

है ? मगर आपका स्तवन तो दूर ही रहे, आपकी कथा मात्र से भी समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। सरोवरो मे उगे हुए कमलों को सूर्य की प्रभा भी विकसित कर देती है ! साक्षात् सूर्य की तो बात ही क्या कहनी है !

जिन भगवान् की कथा मात्र से प्राणियो के पापों का प्रणाश हो जाता है, उन अमित महिमा से मंडित महाप्रभु ऋषभदेवजी को ही हमारा बार--बार नमस्कार हो।

भाइयो ! क्या भगवान् ऋषभदेवजी और क्या भगवान् महावीर स्वामी, सभी तीर्थंकरो की वाणी का प्रधान स्वर एक ही है और वह यही कि दुष्कृतो का परित्याग करो। पापो को छोडो। नही छोडोगे तो फिर जन्म लेना पड़ेगा, फिर मरना पडेगा और फिर जन्म लेना पड़ेगा। फिर भी पाप कर्मों का परित्याग नही करोगे तो फिर जन्म-मरण करना पडेगा। जन्म-मरण का चक्र चल रहा है और सच पूछो तो तुम स्वय इसे चला रहे हो। चाहते हो कि इस चक्र से छुटकारा मिल जाय परन्तु कार्य ऐसे करते हो कि वह चक्र बन्द ही नही होता। इसका कारण यही है कि अभी तक तुम्हारे अन्त.करण मे प्रबल आकाक्षा नही जागी है। तुमने अपने शुद्ध स्वरूप को जानने और पाने की पूरी तरह इच्छा ही नही की। मगर यह वज्रसत्य समझना कि पापो का परित्याग किये बिना और प्रभु के चरणो मे अपने आपको अर्पित किये बिना निस्तार नही होने का है ! यह पापकर्म निर्दय चोर है और जब इन चोरो से बचोगे तभी सम्पत्ति सुरक्षित रह सकेगी। जड़ सम्पत्ति की रक्षा करने को तैयार रहने पर मजबूत तिजोरियाँ खरीदते हो, उनमे कई ताले लगाते हो और फिर भी चौकन्ने रहते

हो कि कभी कही से चोर घुसकर सम्पत्ति न ले जाय ! परन्तु जो सम्पत्ति तुम्हारी असली है, उसकी सुरक्षा की ओर ध्यान नही देते ! उसकी रक्षा के लिए कहा प्रयत्न करते हो ? पाप-कर्म का त्याग करना उसकी रक्षा के लिए ताला लगाना है । मगर कहां तुम यह ताला लगाते हो ? इतना ही नही, तुम तो जान-बूझ कर चोरों को भीतर घुसेड़ते हो ! देखते-भालते भी अपना माल लुटाते हो और इसी मे प्रसन्न होते हो । तुम्हारी यह हालत देख कर ज्ञानीजनो को तरस आता है । वे सोचते हैं-प्रभो ! इन प्राणियों का उद्धार किस प्रकार होगा ? मगर तुम्हे अपनी स्थिति का भान ही नही है ! तुम मोह के नशे में मस्त पडे हो !

भाइयो ! पाप-कर्म चोर हैं और जब इनमे सावधान रह कर बचोगे तभी तुम्हारा कल्याण होगा । जो पापकर्मों से वचने का संकल्प कर लेते हैं, वे अक्षय सपदा के धनी बन जाते हैं । कोई शक्ति के अनुसार थोड़ा-थोडा पाप-परित्याग करता है और कोई पूरी तरह पापों को छोड कर सवर की आराधना करता है । थोडा पाप त्यागने वाले श्रावक पाँचवे दर्जे पर पहुंचते हैं और सम्पूर्ण पापो का त्याग करने वाले साधु छठे दर्जे पर चढ़ जाते हैं । जैसे गृहस्थ आगार-छूट रखते हैं, उस प्रकार साधु आगार नहीं रखते । साधु के चौविहार तो होता है, रात्रि के समय अपने पास आहार या औषध भी नही रख सकते । अगर कोई रखता है तो उसका साधुत्व चला जाता है । साधु तभी तक साधु और आराधक है जब तक कि वह जिनेन्द्रदेव की आज्ञा में विचरता है । जब जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के विपरीत प्रवृत्ति करता है तो वह आराधक नही विराधक बन जाता है ।

छठे दर्जे का त्याग साधारण चीज नही है। इसमे आने के लिए हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह का, जिसमे हाथी घोड़ा गाय, भैस. कुटुम्ब-परिवार आदि सचित्त परिग्रह भी शामिल है और रुपया, पैसा, महल, मकान, खेत आदि अचित्त परिग्रह भी सम्मिलित है, त्याग करना पडता है। यह त्याग भी मन से, वचन से और काया से होता है। अर्थात् हिसा आदि पापो का आचरण करने की मनोभावना भी नही होनी चाहिए। पापजनक वचन भी नही बोलना चाहिए। शरीर को भी पाप-व्यापार मे नही लगाना चाहिए। यह तीन योगो से त्याग करना कहलाता है। इतना ही नही कृत, कारित और अनुमोदना रूप तीन करण हैं और इन तीनो करणो से भी पापो का त्याग करना पडता है। मतलब यह है कि साधु न स्वयं किसी पाप का आचरण करता है, न कराता है और अगर कोई करता हो तो उसका अनुमोदन भी नही करता ! तीन करण और तीन योग की बात सुनते--सुनते आप अभ्यस्त हो गये होगे, मगर इस त्याग की गम्भीरता पर विचार करो। इस त्याग को निभाने के लिए कितना अधिक सचेत रहना पडता है ! इसी को कहते है तलवार की धार पर चलना ! यह त्याग मामूली नही है।

साधु-जीवन का प्रधान आचार ध्यान और स्वाध्याय है। ध्यान और स्वाध्याय मे ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होना चाहिए। आत्मा का ध्यान और जिनवाणी का स्वाध्याय करते-करते जब आत्मा अधिक निर्मल हो जाती है तो परिणामो की धारा ऊपर चढती है। उस समय साधु सातवे दर्जे पर पहुँच जाता है।

अप्रमत्त गुणस्थान में यह जिस समय आत्मा जाती है।
धर्मध्यान में स्थिर होकर, प्रमाद को दूर हटाती है॥

सातवे दर्जे का नाम अप्रमत्तसंयतगुणस्थान है। इस गुणस्थान के नाम से ही यह बात प्रकट है कि इस गुणस्थान में प्रमाद का अभाव हो जाता है। केवल ध्यानमय अवस्था रहती है। कोई भी बाह्य प्रवृत्ति इस गुणस्थान मे नही होती। धर्मोपदेश भी नही दिया जा सकता। इसकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। ध्यान अन्तर्मुहूर्त्त तक ही कायम रहता है। उसके बाद या तो छठे गुणस्थान मे आ जाता है या ऊँचा चढे तो आठवे गुणस्थान पर आरूढ होता है।

बहुत बार ऐसा है कि साधु जब धर्मध्यान में लीन हो जाता है तब अप्रमत्त अवस्था में आ जाता है और सातवा गुणस्थान प्राप्त कर लेता है, मगर जब ध्यान पूरा हो जाता है और गोचरी आदि बाह्य क्रियाओ में प्रवृत्त होता है। तो फिर छठे गुणस्थान में आ जाता है। इस प्रकार छठे से सातवें और सातवे से छठे गुणस्थान मे गमनागमन होता रहता है। कहा भी है.—

जहां आहार विहार का काम नही, स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की पाता है
या तो लौट के छट्ठे आता, या ऊपर को चढ़ जाता है॥

इस सातवे गुणस्थान में ध्यान के अतिरिक्त और कोई भी क्रिया नही होती। आहार विहार का काम नहीं। प्रतिलेखना, वन्दना आदि धर्म क्रिया भी नही होती तो दूसरी क्रियाओ की तो

वात ही क्या है ? इसी कारण इस गुणस्थान की स्थिति अन्त-मुहूर्त्त की होती हैं। सज्वलन कषाय हो छठे गुणस्थान मे रह गया था सातवे गुणस्थान मे वह और भी मन्द हो जाता है। क्रोध सर्वथा चला जाता है। जब आत्मा की शक्ति और अधिक प्रवल हो जाती है और सज्वलन मान कषाय भी दूर हो जाता है तो तब आत्मा आठवे गुणस्थान को पाता है। नही तो छठे मे आ जाता है।

जब किसी मुमुक्षु जीव को प्रवल वैराग्य आता है और दीक्षा लेने की भावना उसके अन्त करण मे बलवती होती है तो भावना ऊँची चढ़ने के कारण उस समय भी उसे सातवा गुणस्थान आ जाता है। वह भाव से साधु वन जाता है। फिर भावना का वेग कम होते ही और प्रमाद का प्रवेश होते ही छठा गुणस्थान आ जाता है।

छठे और सातवे गुणस्थान मे तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं। कोई-कोई साधु हो जाने पर भी भगवान् महावीर को छह लेश्याएँ वतलाते हैं। यह तीर्थंकर भगवान् का घोर अवर्णवाद है। तीर्थंकर भगवान् जैसे परमोत्तम पुरुषो मे तीन अधर्म-पापमय लेश्याएँ वतलाना अज्ञान का ही फल है। उनकी परिणामधारा इतनी उज्ज्वल होती है कि वहा कृष्ण, नील और कापोत नामक तीन अधर्म लेश्याएँ हो ही नही सकती। अरे! सामान्य साधु मे भी जब यह लेश्याएँ नही होती तो तीर्थंकर साधु मे तो हो ही कैसे सकती है ?

जब आत्मा सातवें गुणस्थान से ऊपर चढकर आठवे गुणस्थान पर आरूढ होती है तो उसकी क्या स्थिति होती है ?

अब आठवा गुणस्थान वह जहां शुक्लध्यान भी आता है।
उपशम श्रेणी या क्षपकश्रेणी, दोनों में एक कर पाता है ॥

मुनि जब अपूर्वकरण नामक आठवी श्रेणी मे प्रविष्ट होता है तो उसमे धर्मध्यान के बदले, उससे भी अधिक उज्ज्वल और प्रशस्त शुक्लध्यान आ जाता है।

शुक्लध्यान क्या चीज है और धर्मध्यान क्या है, इस बात को भलिभांति समझ लेना आवश्यक है। मगर इनको समझने के लिए ध्यान को भी समझ लेना चाहिए। चित्त की वृत्ति को एकाग्र करना ध्यान कहलाता है। अगर चित्तवृत्ति पाप की ओर एकाग्र हो जाय तो वह ध्यान तो कहलाएगा, परन्तु अधर्मध्यान कहलाएगा। वही चित्तवृत्ति जब परमात्मा की ओर लग जाती है उसकी निष्ठा जब धर्म की ओर होती है, तब वह प्रशस्त ध्यान या धर्मध्यान कहलाता है। इस प्रकार ध्यान के मुख्य दो रूप होते हैं। मगर इन दोनो के भी दो-दो रूप होते हैं और इस कारण शास्त्र मे चार प्रकार के ध्यानो का वर्णन है। उनके नाम इस प्रकार हैं-(१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान।

(१) आर्त्तध्यान—आर्ति का अर्थ है-पीड़ा। इष्ट वस्तु का वियोग होने पर, अनिष्ट वस्तु का संयोग होने पर या आगामी विषयभोगो की प्राप्ति के लिए चित्त मे जो व्यग्रता रूप भावना उत्पन्न होती है और मनोभाव उस पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए स्थिर हो जाता है, तब उसे आर्त्तध्यान कहते हैं।

(२) रौद्रध्यान-रुद्र का अर्थ है—क्रूर आशय। क्रूरतापूर्ण

मनोवृत्ति से जो चिन्तन किया जाता है, वह रौद्रध्यान कहलाता है। इसके सम्बन्ध मे कहा है –

'हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयो ।'

हिंसा, असत्य, चोरी तथा विषयसंरक्षण के निमित्त से जो पापरूप ध्यान होता है, वह रौद्रध्यान कहलाता है। यह ध्यान पाचवे गुणस्थान तक ही होता है। पांचवे गुणस्थान में भी कदाचित् हिंसा आदि का आवेश आ जाने पर ही होता है। आर्त्तध्यान छठे गुणस्थान मे भी पाया जाता है। पर आर्त्तध्यान का एक भेद–निदान–छठे गुणस्थान में नही होता ।

इस प्रकार आर्त्तध्यान भी चार प्रकार का है और रौद्र–ध्यान भी चार प्रकार का है। यह दोनो पापध्यान कर्मबन्ध के कारण हैं। इनसे बचते रहने का प्रयत्न करना चाहिए। आर्त्त–ध्यान से बचने के लिए आवश्यक है कि कदाचित् किसी प्रिय पदार्थ का वियोग हो जाय तो संसार की अनित्यता का विचार करके उसके लिए चिन्ता न की जाय। इसी प्रकार कदाचित् अनिष्ट वस्तु का सयोग हो जाय तो ऐसा विचार न करे कि— हाय ! कब इससे छुटकारा मिले ! हाय ! कब पिण्ड छूटे। इसी तरह शरीर मे किसी प्रकार का रोग उत्पन्न होने पर हाय–हाय करना उचित नही है। शरीर का स्वभाव ही ऐसा है कि बहुत सावधानी रखने पर भी कभी न कभी रोग हो ही जाता है। शरीर के एक–एक रोम मे अनेक-अनेक रोगो के बीज भरे पड़े हैं। अतएव जब कोई रोग उभर आवे तो असातावेदनीय का उदय समझ कर उसे शान्ति के साथ सहन करना चाहिए। ऐसा करने

से चित्त मे बेचैनी नही होगी और शुश्रूसा करने वालों को भी घबराहट नही होगी । आर्त्तध्यान के कारण बँधने वाले अशुभ कर्मों से भी बचाव हो सकेगा ।

एक बात और है । निदान या नियाणा भी आर्त्तध्यान है । जिसके हृदय मे भगवान् की वाणी के प्रति निश्चल श्रद्धा होगी उसे अपने कर्मों के फल पर भी श्रद्धा होगी ही । भगवान् ने बतलाया है कि प्रत्येक शुभ और अशुभ कर्म का फल जीव को भोगना पड़ता है । ऐसी स्थिति मे आप जो शुभ कर्म करेंगे उसका फल तो मिलने वाला ही है, फिर उसकी कामना करके क्यो आत्मा को मलीन बनाना चाहिए ? ऐसा समझ कर निष्काम, निश्शल्य होकर ही धर्म की आराधना करना उचित है । इतनी बातो का ध्यान रखा जाय तो आर्त्त ध्यान से बचाव हो सकता है ।

रौद्रध्यान भी महापाप का कारण है । हिंसा, झूठ आदि का सकल्प करने से रौद्रध्यान होता है । इससे आत्मा अत्यन्त मलीन हो जाती है । अतएव प्रत्येक आत्मकल्याण के इच्छुक भव्य प्राणी को रौद्रध्यान से भी बचना चाहिए यह प्राय· नरक-गति का कारण होता है ।

इस प्रकार जब इन दोनो अधर्मध्यानो से बचाव होता है, तब धर्मध्यान की उत्पत्ति होती है ।

धर्मध्यान के भी चार भेद हैं और दो प्रकार से चार-चार भेद हैं । योगशास्त्र की दृष्टि से पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रुपातीत, यह चार भेद किये गये हैं । इन चारो का स्वरूप मैंने सक्षेप मे एक दिन बतला दिया था । अतएव उसे आज दोहराने की

आवश्यकता नही है । शास्त्रो मे दूसरी तरह से चार भेद बतलाये गये हैं । वे इस प्रकार है—(१ आज्ञाविचय (२) अपायविचय (३) विपाकविचय और (४) सस्थानविचय ।

(१) आज्ञाविचय –भगवान सर्वज्ञ के द्वारा प्ररुपित सूक्ष्म तत्त्व कभी स्थूल बुद्धि के द्वारा समझ मे नही आता । पूरी तरह से तो कभी समझ मे आ ही नही सकता । इनमे न तो सर्वज्ञ भगवान् का दोष है और न तत्त्व का ही कोई दोष है । अगर दोष है तो बुद्धि का ही, जो इतनी स्थूल है और जिसमें सूक्ष्म तत्त्व समा नही सकता । ऐसी स्थिति मे 'नान्यथावादिनो जिना:' अर्थात् जिनेन्द्रदेव कदापि अन्यथाभाषी नही हो सकते, इस प्रकार की अविचल श्रद्धा रखना, भगवान् की आज्ञा से ही उस तत्त्व को उसी रूप में स्वीकार करना और ऐसा ही चिन्तन करना आज्ञा-विचय धर्मध्यान कहलाता है ।

अथवा जिस ज्ञानी पुरुष ने परमार्थ को जान लिया है, वह भगवान् की वाणी को विश्व कल्याणकारिणी जान कर जब यह विचार करता है कि इस प्राणी मात्र का कल्याण करने वाली सुधा के समान पथ्य, दुखो से बचाने वाली, शान्ति का प्रसार करने वाली वीतराग प्रभु की वाणी का किस प्रकार जगत् मे प्रसार किया जाय ? किस पकार प्रभु की आज्ञा की महिमा बढाई जाय ? तब इस प्रकार का चिन्तन आज्ञाविचय धर्मध्यान कहलाता है ।

(२) अपायविचय–अहा ! ससार के बहुत से जीव मिथ्यात्व के वशीभूत होकर मोक्ष के अभिलाषी होते हुए भी बन्धन मे

फँस रहे हैं और सुख के इच्छुक होकर भी दुःख के मार्ग पर अग्र-सर हो रहे हैं ! वेचारे सच्चा मार्ग न पाने के कारण नाना प्रकार के दुःखो के पात्र वनते हैं । इस पकार मिथ्यादृष्टि जीवो के अपाय का विचार करना अपायविचय ध्यान है ।

(३) विपाकविचय—कर्म का फल विपाक कहलाता है। उसके विषय मे विचार करना विपाकविचय धर्मध्यान है। किस कर्म का फल क्या है, कब और किस प्रकार फल प्राप्त होता है, इत्यादि विचार करने से आत्मा को वडा लाभ होता है। कर्म-शास्त्रो सम्बन्धी चिन्तन भी इसी मे गर्भित है।

(४) संस्थानविचय-लोक के आकार चिन्तन करना लोक-विचयधर्म ध्यान है।

भाइयो। लोक का स्वरूप चिन्तन करने से चित्तवृत्ति अगर इधर-उधर घूम रही हो तो भी स्थिर हो जाती है लोक का आकार पैर फैला कर और कमर पर हाथ रख कर खडे हुए पुरुष के आकार का है। लोक-चौदह राजू ऊँचा है। उसके अग्रभाग पर सिद्ध भगवान् विराजमान हैं। उससे नीचे देवलोक है। सात राजू नीचे अर्थात् लोक के वीच मे मध्यलोक है। मध्यलोक के नीचे अधोलोक है। उसमे नारकी निगोदिया आदि जीव रहते हैं। लोक का वर्णन जैन साहित्य मे बडे विस्तार के साथ किया गया है। इस विषय को लेकर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी आचार्यो ने लिखे हैं। जिन्हे विशेष जिज्ञासा हो, वे उन ग्रन्थो को देखें, समझें या सुने ।

यह चार प्रकार का धर्मध्यान है। सातवें गुणस्थान तक

इसका अस्तित्व रहता है। जब आत्मा आठवे गुणस्थान मे प्रवेश करता है तो शुक्लध्यान का अधिकारी बन जाता है। अतीव निर्मल ध्यान होने के कारण वह शुक्लध्यान कहलाता है। इसके भी चार भेद है:-(१) पृथक्त्ववितर्क (२) एकत्ववितर्क (३) सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति (४) व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

इन चार भेदो मे से दो छद्मस्थो को होते हैं और अन्त के दो भेद केवली भगवान् को ही होते हैं। इनकी व्याख्या सूक्ष्म है और उसमे समय अधिक लगने की सम्भावना है। अतएव इनकी व्याख्या न करके सिर्फ इतना ही बतला देना उचित होगा कि शुक्लध्यान समस्त ध्यानो मे उत्तम है और साक्षात् मोक्ष का कारण है। आज हमारी और आपकी शक्ति शुक्लध्यान को प्राप्त करने की नही है, तथापि ऐसी भावना अवश्य रखनी चाहिए कि-वह कौन सा सुअवसर होगा, जब इस आत्मा मे शुक्लध्यान की तीव्रतर अग्नि प्रज्वलित होकर कर्म रूपी महान् अटवी को दग्ध कर देगी! वह दिन और वह समय अतिशय धन्य होगा जब मेरी आत्मा मे शुक्लध्यान का निर्मलतर नीर प्रवाहित होगा और उसमे चिरकाल के सचित समस्त आत्मिक विकार बह जाएंगे! उस क्षण मेरी आत्मा कृतार्थ हो जायगी जिस क्षण अन्तर मे शुक्लध्यान की अपूर्व, अलौकिक, परमाह्लादकारिणी, अज्ञान तिमिरनिवारिणी, सर्वसतापहारिणी, त्रितापप्रणाशिनी दिव्य ज्योति का आविर्भाव होगा!

इस प्रकार की निर्मल भावना रखने से किसी न किसी दिन आपको भी अपूर्वकरण नामक आठवे गुणस्थान की प्राप्ति होगी और आप शुक्लध्यान के भागी बन सकेंगे।

आठवें गुणस्थान से दो श्रेणियां शुरु होती हैं–उपशमश्रेणी और क्षपक श्रेणी। जिसने पहले के गुणस्थानों मे कर्मप्रकृतियों का उपशम किया हो, अर्थात् उनका क्षय तो न किया हो, किन्तु उनकी शक्ति को मात्र दवा दिया हो और दवा-दवा कर आठवें गुणस्थान तक पहुँचा हो, वह उपशमश्रेणी आरम्भ करता है। इसके विपरीत जो मोहनीय कर्म की प्रकृतियो का क्षय करता हुआ आगे वढा है वह क्षपक श्रेणी का प्रारम्भ कहता है। श्रेणी आरम्भ करने से पहले धर्मध्यान रहता है और श्रेणी आरम्भ करते ही शुक्लध्यान आरम्भ हो जाता है।

महा ऋद्धि सिद्धि लब्धि आदि अद्भुत शक्ति प्रकटाती है।
क्षपक श्रेणी वहां करे आत्मा जो घाती शीघ्र खपाती है॥

इस गुणस्थान मे ऋद्धि, सिद्धि, वैक्रियलब्धि, वीर्यलब्धि आदि प्रकट हो जाती है। आठवे दर्जे का माहात्म्य ऐसा है कि यहा आने पर सव प्रकार की ऋद्धियां–लब्धियाँ अपने आप खिची चली आती है।

अनिवृत्तिबादर नौवा जहां- अधिक भाव स्थिर हो जाते है।
संज्वल के क्रोध माना माया, तीनो विकार मिट जाते हैं॥

नौवा गुणस्थान अनिवृत्तिवादर है। जव इस पर आत्मा पहुचती है तो और भी उच्च कोटि की वन जाती है। आत्मा को अद्भुत शान्ति की प्राप्ति होती है। यहाँ सज्वलन कषाय के क्रोध, मान और माया का अभाव हो जाता है। इसी गुणस्थान मे तीनो प्रकार के वेद भी नष्ट हो जाते है। हास्य, रति, अरति

शोक भय और जुगुप्सा नामक नोकषायों से भी आत्मा का पिण्ड छूट जाता है। इस गुणस्थान के बाद दसवा गुणस्थान आता है।

दसमा सूक्ष्मसाम्पराय यहां सूक्ष्म लोभ रह जाता है।
सिद्धि या शिवपुर को वाछा, बस यही इसे अटकाता है।

जब दसवे गुणस्थान की प्राप्ति होती है तब आत्मा में सिर्फ सज्वलनकषाय का सूक्ष्म लोभ ही शेष रह जाता है। वह लोभ कोई सासारिक पदार्थो का नही होता। महल–मकान या धन–दौलत का भी नही होता। सिर्फ मुक्ति प्राप्त करने की वांछा रहती है। यह वाछा ही लोभ रूप है। यही वाँछा उस आत्मा को मुक्त होने से उस समय रोकती है। मगर दसवे गुणस्थान के अन्त मे यह सूक्ष्म लोभ भी दूर हो जाता है।

दसवे गुणस्थान से क्षपकश्रेणी वाला जीव ग्यारहवे गुणस्थान को लाघ कर सीधे बारहवे गुणस्थान मे पहुचता है। जिसने आठवे गुणस्थान से उपशमश्रेणी आरम्भ की है वह ग्यारहवे उपशान्तमोह नामक गुणस्थान को प्राप्त करता है।

उपशममोहनीय गुणस्थान को मोह उपशान्त कर पाता है।
पुन मोह प्रज्वलित होता है, गुणोत्तम से गिर जाता है।।

इस ग्यारहवे गुणस्थान मे समस्त कषायो का उपशम हो जाता है। उपशम हो जाने का मतलव यह है कि कषायो का क्षय तो नही होता है, किन्तु वे दबी रहती है। जैसे आग पर

राख डाल दी जाय तो वह ऊपर से बुझी हुई मालूम होती है, परन्तु भीतर जलती रहती है। और यदि हवा का झौका आ जाय तो ऊपर की राख उड जाने पर वह आग फिर दमकने लगती है। ऐसी ही अवस्था इस गुणस्थान मे आत्मा की होती है। उपशम श्रेणी वाला जीव कषायो को दबाता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुचा था, मगर वह कषाय जब उद्दीप्त होते है तो फिर दसवे मे पहुँच जाता है, फिर नौवे और आठवे मे भी गिर जाता है और भी नीचे गिर सकता है। ज्यो-ज्यो कषाय भाव का उदय होता जाता है, गिरता जाता है कोई जीव गिर कर आठवें से दूसरी बार क्षपक श्रेणी मे आरोहण करता है तो अब की बार सीधा बारहवे मे पहुँचता है। बारहवे गुणस्थान मे जीव अप्रतिपाती हो जाता है।

बारहवें गुणस्थान जाके यह मोह कर्म विनशाता है।
निष्कषायता अरु चारित की पूर्ति जहां कर पाता है॥

बारहवे गुणस्थान के पहले ही समय मे और दसवें गुण-स्थान के चरम समय मे जीव का मोहनीय कर्म सर्वथा क्षीण हो जाता है। भाइयो! देखो, मोहनीय कर्म कितना बलवान है! वह ग्यारहवे गुणस्थान से भी आत्मा को नीचे खीच कर ले जाता है। परन्तु आत्मा? आत्मा उससे भी अधिक बलवान है जो अपने प्रचण्ड बल से, पुरुषार्थ से उसे भी नष्ट कर ही डालता हैं। बारहवे गुणस्थान वाला जीव पूर्ण निष्काय हो जाता है और शुद्ध यथा-ख्यात चारित्र का धनी बन जाता है।

तीसरा, बारहवां और तेरहवां गुणस्थान अमृत्यु हैं। इनमे जीव की मृत्यु नही होती।

भाइयों ! एक साधु बेले--बेले पारणा करता है और दूसरा नही करता है। अब आप सोचिए कि पहले किसे मुक्ति प्राप्त होगी ? एक साधु मैले--कुचैले वस्त्र धारण करता है और मैथी का धोवन पीता है और साथ ही दूसरे ऐसा न करने वाले साधुओं की बुराइया करता है और इधर-उधर की बातो में अपना समय लगाता है। दूसरा साधु ऐसा तो नही करता किन्तु ज्ञान-ध्यान मे मग्न रहता है और कषायो को जीतने का प्रयत्न करता ही रहता है। अब आप सोचिए कि मोक्ष किसे पहले प्राप्त होगा।

वास्तव मे मोक्ष का बाधक कषायभाव ही है। जो कषाय को पहले जीत लेगा वही पहले मोक्ष प्राप्त करेगा। गुणस्थानो की इस चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है। दाख का धोवन पीने वाला छठे गुणस्थान मे और मैथी का धोवन पीने वाला सातवे गुणस्थान मे हो सो बात नही है। मैले कपडे पहनने मात्र से भी गुणस्थान नही चढता। गुणस्थान चढने के लिए कषाय को जीतने की आवश्यकता है। भुने चने या बोर का आटा खाने वाला भी अगर लोलुपता के साथ खाता है तो वह पाप का भागी होता है और यदि बादाम का सीरा विरक्त भाव से खाता है तो वह पाप का भागी नही होता। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वप्रथम क्रोध, मान, माया और लोभ को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए। कषायों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् आत्मा मे ऐसा समभाव उत्पन्न हो जाता है कि किसमिस का धोवन और मैथी का धोवन, दोनो समान भाव से ग्रहण किये जाते हैं। चने और सीरे मे भी कोई अन्तर नही रह जाता। जैसे--जैसे कषाय रूप विकार को जीता जाता है, तैसे तैसे गुणस्थान की उन्नति होती है। इसलिए

हे मुमुक्षुओ ! जो कोई भी क्रिया करो, उसमे कषाय को जीतने का ध्येय प्रधान रूप से रक्खो। कषाय को न जीत सकोगे तो कितनी ही तपस्या करो, कितने ही मैले कपडो से रहो, आत्मा को मुक्ति नही मिलेगी। अतएव कषाय के कचरे को हटाओ।

मेरे कहने का आशय यह न समझ लिया जाय कि मै तपस्या या त्याग-प्रत्याख्यान का निषेध कर रहा हू। नही, मैं सदैव इन सब क्रियाओ का आचरण करने के लिए आप सब को उत्साहित करता रहता हूँ। परन्तु मेरे कहने का आशय यह है कि तपस्या आदि कोई भी बाह्य क्रिया तभी सार्थक होती है जब वह कषाय विजय मे सहायक हो। अतएव जो कुछ भी करो, उसमे कषाय विजय ही प्रधान होना चाहिए। तपस्या करो तो शरीर पर से ममता कम करने के लिए कर्मों की निर्जरा करने के लिए और अप्रमत्त अवस्था प्राप्त करने के लिए करो, लोकपूजा प्रतिष्ठा, यशकीर्त्ति आदि के लिए मत करो। ऐसा करोगे तो कष्ट, भी उठाओगे और आत्मिक प्रयोजन को भी पूरा नही कर पाओगे। बल्कि कषायभाव मे उलटी वृद्धि होगी। मोक्ष और भी दूर चला जायगा।

एक साधु ने अपने गुरु से कहा—मुझे सथारा पचखा दीजिए। गुरुजी समझदार थे। बोले—अभी सलेहणा कर अर्थात् एकान्तर, बेला, तेला आदि तपस्या कर। चेला ने एकान्तर किया और शरीर को दुर्बल बना लिया। वह फिर गुरुजी के पास पहुँचा और बोला गुरु महाराज ! सथारा पचखा दीजिए। मगर गुरुजी ने फिर वही उत्तर दिया—सलेहणा कर। यह उत्तर सुन कर अब की बार चेले ने बेले-बेले की तपस्या की। उसका

शरीर सूख कर अस्थि पिंजर मात्र रह गया। तब वह फिर गुरु के पास आया और संथारा करा देने के लिए कहने लगा। गुरुजी ने कहा वत्स! अभी संथारा करने का अवसर नही है। यह उत्तर सुन कर शिष्य ने अपनी उङ्गली मरोड़ कर तोड़ ली! गुरुजी ने कहा—शिष्य! तू एकान्तर और बेला करके भूखा मरा, मगर वह सब व्यर्थ है जबकि तूने अपने क्रोध को नही मारा! पहले क्रोध को मिटा, फिर संथारा करना।

भाइयो! कषाय आत्मा को मलीन बनाने वाले है। इन कषायो को जीतो। तभी ऊँचे गुणस्थान की प्राप्ति होगी। जिसने कषाय को जीत लिया है, वह नवकारसी का प्रत्याख्यान न करे, कोई दूसरी दिखाऊ धर्मक्रिया न करे, तब भी मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। सामायिक, प्रतिक्रमण, पौषध न करने पर भी कषायो को जीतने वाला केवलज्ञानी हो जाता है। उसमे स्वत भाव-सामायिक आदि का आविर्भाव हो जाता है। इसके विपरीत ईर्षा, द्वेष, लोभ आदि कषायो से प्रेरित होकर कितनी ही क्रिया क्यो न की जाय, आत्मा का कल्याण नही हो सकता। कितना ही लम्बा तिलक लगाओ और मुंहपत्ती बांधो, किन्तु आखिर तो कषायो को जीतना ही काम आएगा।

किसी बरतन मे कचरा है और पानी है। पानी छन कर ऊपर आ गया है और कचरा नीचे बैठ गया है। उस कचरे मे एक हीरा भी पडा है किन्तु कचरे के कारण वह दिखलाई नही देता। ऊपर-ऊपर से पानी निर्मल है परन्तु हाथ डालने पर वह गँदला हो जायगा। इसी प्रकार आदमी बड़ा समझदार कहलाता है और मीठा बोलता है, किन्तु तनिक भी अप्रिय प्रसंग उपस्थित

होने पर लड़ने को तैयार हो जाता है। तो यह कचरा जमा हुआ है और इस कारण हीरा नजर नही आता।

मिर्चों का थैला रक्खा है। उसे जरासा हिलाओ तो मालूम हो जायगा कि कितनी खांसी आती है! ऐसे ही कई जीव होते है जो ऊपर-ऊपर से शान्त प्रतीत होते हैं, किन्तु उनके भीतर कषायों की आग धधकती रहती है। महाराज बडे सरल परिणाम वाले दिखलाई देते हैं। यह तो दो ही भव करेंगे!' किन्तु भाई! तुझे क्या पता है? वे न मालूम कितने भव करेंगे! तू तो राग से प्रेरित होकर ही ऐसा कह रहा है, तुझे उनकी अन्तरात्मा का क्या पता है? अगर उन्होंने सचमुच ही कषाय को जीता होगा तो दो भवों मे ही निस्तार हो सकता है, नही जीता होगा तो अनेक भवो मे भी निस्तार होना कठिन है। मुख्य बात कषाय विजय है। जिसने कषायों को मारा उसने जन्म--मरण को मारा!

भाइयो! आज दीपावली है। बाहर की दीपावली आपने बहुत बार मनाई है, पर उससे आत्मा मे प्रकाश नही हुआ। अज्ञान का अधकार नही मिटा। आत्मा देदीप्यमान नही हुआ। ऐसा अवस्था मे आपका कल्याण कैसे होगा? हजार दीपक लगा दिये जाएँ तो भी अन्धे को क्या लाभ हो सकता है? उसके पास अपना निज का प्रकाश नही है तो वाह्य प्रकाश सारा का सारा उसके लिए व्यर्थ है। बाह्य प्रकाश तो तभी उपयोगी होगा जब निज मे भी प्रकाश हो। इस उदाहरण से आपको निजी-आत्मिक प्रकाश का मूल्य समझना चाहिए। अतएव आत्मा में प्रकाश करो। अन्तरतर मे घुसे हुए अधकार को नष्ट करने का उद्योग करो। भीतर की मलीनता को हटाओ। जैसे मकान का कूड़ा कचरा

साफ करते हो, और उसे साफ--सुथरा बनाते हो, इसी प्रकार आत्मा को भी, अपने चित्त को भी निर्मल और स्वच्छ बनाओ। आत्मा को शुद्ध करो।

भाइयो! हमारा कहना मान लो। हा, अब भी गधेडे, कीडे, मकोडे, आदि की योनियो मे उपजना हो और अनादि काल के जन्म--मरण से सन्तोष नही हुआ हो तो आपकी इच्छा! और यदि आप भव भ्रमण करते--करते ऊब गये हो और अब पूर्ण शान्ति प्राप्त करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई हो तो अपनी आत्मा को सम्यग्ज्ञान के प्रकाश से ज्योतिर्मय करो और कषायों के कचरे को निकाल कर स्वच्छ बनाओ। इसी भव मे इतनी तैयारी कर लो। यह मेरा छोरा है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरी हवेली है, यह समझ कर तुम मोह मे पडे हो, पर इस प्रकार के सम्बन्ध तो तुमने भव-भव मे जोड़े हैं। इनसे क्या तुम्हारा उद्धार हुआ है? व्यर्थ मोह मे पडकर बन्दी न बनो। मोह आत्मा को नीचे गिराता है।

हंसजी, आठ कर्मो मे मायने रे कोई
मोह कर्म मोटो महीपति हो हंसजी।
हंसजी, सब पापन को सेहरो रे, कोई
हैं इनकी मोटी स्थिति हो, हंसजी।
हंसजी, पाण्ढरपुर एक नगर में रे कोई
सेठ धनाढ्य सरे हो हंसजी।
हंसजी दो गोरी को साहिबो रे कोई
छोटी से मोह अति करे हो हंसजी ॥ १ ॥

भाइयो ! पंढरपुर नामक एक नगर था। उसमे वन्नाऊ नामक एक मालदार गृहस्थ था। उसके यहा दो स्त्रियां थी। वह छोटी को अधिक चाहता था। जीमते समय छोटीजी सामने बैठती और कहती कि एक फलका तो और ले लीजिए। तब वह भूख न रहने पर भी झट फुलका ले लेता था। ऐसा गाढा प्रेम था उस पर !

> हंसजो, सेठ के पाप-संयोग से रे कोई
> वेदना हो गई एकदा हो हंसजी।
> हंसजी औषधि लेवा काज रे कोई
> घर में गई लघु प्रेमदा हो हंसजो ॥ २ ॥

एक दिन सेठ पलग पर लेटा था। बीमार था। सिराने की तरफ, पास मे ही छोटीजी बैठी थी। लेकिन जो भी काम होता वडीजी को ही करने को कहता था। वडी सोचती कि मै पतिव्रता हूँ तो पति की आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है। मुझे पति की हृदय से पूरी सेवा करनी चाहिए। छोटी सोचती है कि मुझे तो किसी काम के लिए कहते ही नही हैं !

एक दिन दवा लेने का समय हो गया। वडी किसी दूसरे काम मे लगी थी। अतः छोटीजी ने कहा—मैं ही ले आती हूँ। वह दवा लेने को गई। दरवाजे मे कोई नौकदार पत्थर निकला हुआ था। और वह काफी ऊँचा नही था। जैसे ही वह दरवाजे मे घुसने लगी, उसका सिर उस पत्थर से टकरा गया और चोट ऐसी लगी कि हड्डी में भी जख्म हो गया। वह वेहोश होकर वहीं गिर पड़ी।

नौकर ने सेठानीजी को बेहोश देखा और माथे से खून बहता देखा तो भागा-भागा सेठजी के पास गया। घबराया हुआ कहने लगा—अजी, सेठानीजी को न जाने क्या हो गया है! खून से लथपथ हैं और हिलती--डुलती भी नही हैं!

सेठ यह हाल सुनकर घबरा उठा। बोला-अरे! क्या हो गया? मैंने क्या कर दिया? देखो, जाओ, सम्भालो! यह कहते-कहते सेठ के हृदय की गति बन्द हो गई!

सेठ मोह की प्रबल भावना के साथ मरा। आर्त्तध्यान करता हुआ मरा। उसका परिणाम क्या निकला? सुनिये:—

हंसजी, तस प्यारी के शीश में रे कोई
कीट परो हुआ सेठजी हो हंसजी।
हंसजी, ऐसे भ्रमे संसार में रे कोई
मोहवश मे वह सेठजी, हो हंसजी ॥ ३ ॥

भाइयो! लोक मे कहावत है—'अन्त मति सो गति।' अर्थात् जिस जीव की अन्तिम समय मे जैसी मति होती है, उसे वैसी ही गति मिलती है। यह बात सही भी है। शास्त्रो का कथन है कि जिस जीव ने जिस आयु का बन्ध किया है, मरने से पहले उसी के अनुरूप लेश्या उसमे उत्पन्न हो जाती है और उसी लेश्या मे उसकी मृत्यु होती है। गीता मे भी कहा है—

यं यं वाऽपि स्मरन् भावं, त्यज्यते हि कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय [सदा तद्भावभावितः ॥

इसका आशय भी यही है कि मरते समय जीव के भाव जैसे होते हैं, वह वैसी ही गति पाता है।

भाइयो ! अगर तमाखू मे जीव रह गया तो मर कर तमाखू मे ही उत्पन्न होना पडेगा। देखो, वह सेठ, मरते समय स्त्री को ही याद करते-करते मरा तो स्त्री के सिर में लगी हुई चोट के पकने पर और उसमें पीव पड़ने पर उस पीव मे कीडा बन गया अब वह कीडा चटका मारने लगा, क्योकि मरने के बाद प्रायः पहले वाली प्रकृति नही रहती है। कीडा अपनी प्रकृति के अधीन था। उसी प्रकृति के अनुसार वह चटका मारता था ! सेठानी बहुत दुखी हो गई। इधर तो पति के वियोग की दुस्सह वेदना और उधर कीडे के चटका मारने का दर्द ! आखिर डॉक्टर ने कीडा मारने की दवा दी और उसने उस दवा का इस्तेमाल किया।

अरे जीव ! किस मोह के फंदे मे फसा है ? शरीर त्याग कर चला जायगा तो कौन तुझे पूछेगा ? कुटुम्बी जन तेरे क्या काम आएंगे ? देख लो, प्राणप्यारी पत्नी ही अपने पति जीव को मारने का प्रयत्न कर रही है !

हंसजी, मोह कर्म ने लेवो जीत रे कोई,
तब तो मिल जावे शिवपुरी ही हंसजी।
हंसजी, गुरु हीरालाल प्रसाद से रे कोई,
चौथमल शिक्षा करी हो हंसजी ॥ ४ ॥

भाइयो ! यह मोहकर्म आत्मा का प्रवल वैरी है। मोह ने मनुष्य की ऐसी गति बिगाड़ी कि उसे कृमि के रूप मे जन्म धारण

करना पडा । इसलिए मैं कहता हूँ कि इस मोह के दारिद्रय को दूर करो । यह बड़ा ही चेटू है । आत्मा के साथ ऐसा चिपका है कि अलग होने का नाम ही नही लेता । जीव जब बारहवे गुण-स्थान मे पहुँचता है तब मोह से पूरी तरह पिण्ड छूटता है ! तभी यह डाकी दूर होता है । यह बड़ा जबर्दस्त है । इसके अनेक रूप हैं । राजी होना, नाराज होना, हँसना, घृणा करना रोना, ईर्षा करना, घृणा करना, निन्दा करना आदि-आदि अनेक रूपों में यह आत्मा के साथ लगा रहता है । मोह के उदय से जीव किसी को देख कर प्रसन्न होता है और किसी को देखकर मुँह छिपाता है । एक पाहुना आ जाय तो प्रसन्नता होती है और दूसरा आ जाय तो निगाह रखनी पडती है कि कही लोटा न उठा ले जाय ?

एक आदमी घर मे अकेला था । वह बीमार पडा । उसका एक परिचित आदमी कुशल क्षेम पूछने आया । बीमार को बेहोश देखकर उसका चित्त ललचा गया और उसके कानो मे पहने हुए साकल ही खोल कर ले गया ! उसने यह नही सोचा कि एक दिन उसे भी मरना पड़ेगा और उसके कानो मे से यह साँकल निकाले जाएँगे !

भाइयो ! ससार मे जितने भी पाप कर्म होते हैं, उन सब का प्रधान कारण मोह ही है । अतएव पाप कर्मों से वचने के लिए मोह का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है । भगवान् ऋषभदेव के मार्ग पर चलने के लिए और जन्म--मरण के चक्र से छूटने के लिए मोह का परित्याग करना अनिवार्य है । ज्यो ज्यो मोह का त्याग करोगे, गुणस्थान ऊँचा होता जायगा और एक दिन पूर्ण रूप से निर्मोह दशा प्राप्त हो सकेगी ।

भविष्यदत्त-चरित:—

बन्धुदत्त ने अपने भाई के साथ जो विश्वासघात किया, दुराचार करने को वह उतारू हो गया, इसका एकमात्र कारण मोह ही था। धन और स्त्री के मोह ने उसकी मति को नष्ट कर दिया ! मोह के वशीभूत होकर मनुष्य भविष्य का विचार नही करता कि आगे चल कर मेरी क्या गति होगी ? भविष्यदत्त दैवी सहायता से अपने घर आ गया और उसने माता को बन्धुदत्त की करतूतो का हाल सुनाया। अपने बेटे पर आई हुई विपत्तियों का हाल सुनकर कमलश्री की आंखो मे आसू आ गये ! जब भविष्यदत्त ने कहा—माँ अब रोने की आवश्यकता नही। धर्म के प्रताप से उन सब विपत्तियों पर मैं विजय प्राप्त कर चुका हूँ। मनुष्य सुख ही सुख मे रहे तो उसका अनुभव परिपक्व नही होता है। सुख का आस्वाद भी मजेदार नही होता, दुःख के बाद प्राप्त हुए सुख का मजा कुछ और ही है ! इसके अतिरिक्त ससार मे दु खो से अछूता सुख प्राप्त होना कठिन है। यहाँ तो सुख और दु.ख दोनों आते-जाते ही रहते हैं। किसी जीव के सदा एक से कर्मों का उदय नही रहता। कर्मोदय के अनुसार उनका परिणाम भी परिवर्तित होता रहता है। कितना भी शक्तिशाली मनुष्य या देव भी क्यो न हो, वह किये कर्मों के फल से बच नही सकता है। मैंने जैसे कर्म उपार्जन किये थे, उनका फल भोगा है। इसमे चिन्ता की बात ही क्या है ?

भविष्यदत्त ने आगे कहा—माता ! मैंने बन्धुदत्त को अपना बन्धु समझा और सब तरह से उसकी सहायता की, किन्तु उसने मुझे धोखा देकर बदला चुकाया। यह भी कर्मों का ही प्रभाव है।

उसने जैसा किया है, वैसा पाएगा। वह फटेहाल मेरे पास आया था। मैंने उसे गले से लगाया। और सब कुछ दिया, मगर उसने मेरी पीठ मे छूरा भोंका।

मा मगर चिन्ता न करो। ऐसा तो जगद्व्यापी नियम है। देखो न, राम और कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषो को भी अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पडे थे। मगर वे अपने सत्य पर कायम रहे तो आज भी दुनिया उनका गुणगान करती है।

भाइयो! आज पण्डित जवाहरलाल नेहरू यदि भारत के सर्वेसर्वा बने हुए है तो इसका कारण क्या है? यही कि देशसेवा की प्रबल भावना से प्रेरित होकर उन्होने घोर कष्ट सहन किये है! आज तो कई देशद्रोही सोचते है कि नेहरूजी मर जायें तो हम उनकी जगह ले लें! मगर अरे मँगता! किसी के पुण्य को तू कैसे नष्ट कर सकता है? नेहरूजी के समान प्रभाव, प्रतिष्ठा और आदर पाना है तो उनके समान त्याग कर, परोपकार के लिए कष्ट सहन कर, सच्ची और निस्वार्थ सेवा मे अपनी समस्त शक्तियां लगा दे। यह सब तो करता नही और स्वार्थ का कीड़ा बना बैठा है और फिर भी चाहता है। नेहरूजी के समान पदवी और प्रतिष्ठा तुझे मिल जाय।

भविष्यदत्त कहता है—माता! मैंने जो कर्म उपार्जन किये थे, उनके फलस्वरूप मुझे कष्ट उठाना पडा। मगर बुरे कर्मोदय के दिन चले गये। अब मेरे पुण्य का उदय हुआ है। अतएव माता, अब प्रसन्न होओ और आनन्द करो।

भविष्यदत्त की बात सुनकर कमलश्री को आश्वस्त हुई।

उसका चित्त स्थिर हुआ तब उसने पूछा—बेटा ! जब से मैंने जाना है कि तिलकसुन्दरी मेरी पुत्रवधू है तभी से मेरा हृदय व्याकुल है। उसे बेचारी बालिका पर न जाने कैसी बीत रही होगी। वह सुशीला बहू घोर चिन्ता और मुसीबत मे है। न जाने निराशा और विषाद की हालत मे, अपने धर्म की रक्षा करने के लिए वह क्या कर गुजरे ? उसका एक-एक क्षण बड़े ही दुःख मे व्यतीत हो रहा है। पल भर के लिए उसे शान्ति नही। मैंने सुना है कि वह रात-दिन रोती रहती है। अब तक तो उसके रोने का ठीक कारण ज्ञात नही था, तू आया तब पता चला है। अब मैं उसका कष्ट नही देख सकती। मैं अभी जाती हूँ और अपनी पुत्रवधू को यहाँ ले आती हूँ ! देखूँ, दुनिया मे कितनी शक्ति है जो मुझे न लाने दे ! मैं उस बेईमान बन्धुदत्त के पापो का भडाफोड़ करूँगी और बहू को कष्ट से छुड़ाकर लाऊँगी !

माता का यह जोश देख कर भविष्यदत्त को प्रसन्नता हुई। उसके चेहरे पर एक हल्की-सी मुस्किराहट की रेखा खिच गई। फिर उसने कहा—माँ, तिलका कष्ट मे है, इसमे सन्देह नही, मगर उसके कष्टो का भी अन्त आ रहा है ! धीरज रक्खो। उतावल करने से अपने कार्य मे सुन्दरता नही आएगी। मै कहता हूँ सो सुनो।

कमलश्री—कहो, तुम क्या करना चाहते हो ? उसका छुटकारा शीघ्र ही होना चाहिए। मै बेचैन हो रही हूँ।

भविष्यदत्त—माता ! प्रातःकाल तुम जरी के यह कपड़े पहन कर जाना और यह नागमुद्रिका भी लेती जाना। नागमुद्रिका

उसे दे देना। मेरे आने की सूचना उसे इसी से मिल जायगी। फिर भी अवसर हो तो और अधिक स्पष्ट इशारा कर देना।

कमलश्री— ठीक है। ऐसा ही करूँगी। अभी रात हो गई है। सो जाएँ। मगर बेचैनी के समय निद्रा कहाँ? जैसे-तैसे रात्रि समाप्त हुई और जल्दी ही कमलश्री ने उठ कर स्नान किया और जरी के वस्त्र पहन लिए। बहुमूल्य आभूषण धारण किये। नाग-मुद्रिका साथ ले ली। वह तिलकसुन्दरी से मिलने चली। जब वह बाजार मे से निकली तो उसके बहुमूल्य और मनोहर वस्त्र एव आभूषण देखने के लिए लोग खडे हो जाते थे। कहते थे—यह कौन है? आज सवेरे ही सवेरे इस नगर मे क्या इन्द्राणी का आगमन हुआ है? या यह कोई देवी है।

कमलश्री चलती चलती धनसार सेठ के यहाँ पहुँची। सेठ ने कमलश्री का परित्याग कर दिया था और वह उसके प्रति उपेक्षा का भाव रखता था, मगर आज दिव्य वेश धारण किये कमलश्री को जब उसने देखा तो उसका हृदय भी बदल गया! सोचने लगा—आज भी कमलश्री इन्द्राणी जैसी दिखलाई पडती है। क्यो मैंने इसका त्याग किया है? सचमुच, मैंने ऐसा करके भूल की। एक सुशीला रमणी के साथ विश्वासघात किया है! इसका दोष ही क्या था? धनसार इस प्रकार सोचने लगा और कमलश्री बिना रुके, नीची निगाह करके हवेली के भीतर चली गई!

कमलश्री को आई देख स्वरूपश्री ने कहा—आओ बहिनजी! बहुत दिनो से आई हो! बैठो।

कमलश्री - बहिन ! मैं प्रायः घर से बाहर नही निकलती हूँ। तुमने बुलाया था, तब भी नही आ सकी थी। आज जँच गई सो चली गई।

स्वरूपश्री--अच्छा किया बहिनजी, बड़ी कृपा की। बन्धु-दत्त की तकदीर को देखो। कैसी सुन्दरी राजकुमारी लाया है! सारे हस्तिनापुर मे इसकी जोड़ी नही मिल सकती। विवाह का अवसर आ गया है। आप हमारी बड़ी हो। सब आपको ही करना पड़ेगा।

कमलश्री--ठीक है, मैं अपने कर्त्तव्य का पालन करने से कहा बचना चाहती हूँ? उसी के लिए तो आई हूं।

स्वरूपश्री—मगर बहिन, एक बात समझ मे नही आती! बहू जब देखो तब रोती ही रहती है! खाती नही, पीती नही, हँसती नही! विवाह तो सभी लड़कियो का होता है और सब को अपना--अपना घर भी छोडना पड़ता है, पर ऐसा रोना तो मैंने कभी देखा नही!

कमलश्री--अच्छा, मैं भी जरा देख लूं उसे!

कमलश्री, तिलकसुन्दरी के कमरे मे गई। कमलश्री के वस्त्रो पर ज्यो ही उसकी निगाह पड़ी, वह विस्मित हो गई! उसने सोचा-यह तो मेरे ही कपड़े हैं। यह कौन है? इसे मेरे कपड़े किस प्रकार मिल गये? हाय दैव, यह क्या तमाशा है? मै किस संकट मे पड रही हू?

कमलश्री उसके सामने जाकर बैठ गई। उसने कहा—बेटी तिलका ! चिन्ता का परित्याग कर दो। तुम्हारी विपत्ति के दिन चले गये और सुख के दिन आ गये हैं। तुम्हारा भविष्य आनन्दमय है !

कमलश्री की यह बाते तिलकसुन्दरी को गूढ़ अर्थ से भरी हुई जान पड़ी। 'भविष्य आनन्दमय है' इन शब्दो से यद्यपि दो अर्थ निकलते हैं, फिर भी तिलकसुन्दरी को तो ऐसा ही जान पड़ा कि यह देवी मेरे प्राणनाथ का ही शुभ सन्देश लाई है। उसने चकित और जिज्ञासापूर्ण भावना के साथ, कमलश्री की ओर देखा। उसकी दृष्टि साफ बतला रही थी कि वह कुछ और सुनना चाहती है। वह आगे का सवाद सुनने के लिए छटपटाने लगी।

इसी समय कमलश्री ने नागमुद्रिका उसकी अंगूठी में पहना दी।

नागमुद्रिका देखते ही तिलकसुन्दरी समझ गई कि मेरे पतिदेव आ पहुँचे है और यह देवी उन्ही की माता हैं। तिलकसुन्दरी अब अपनी सासू के चरणो मे लोट गई। उसके चित्त को अपार आनन्द हुआ। कमलश्री ने उससे कहा—बेटी ! अब आनन्द करो। शीघ्र ही भविष्यदत्त से तेरी भेट हो जायगी।

इतने मे स्वरूपश्री भी वहां आ पहुँची। उसे आई देख कमलश्री बोली–बहिन, अभी यह बच्ची है। इसका खयाल रखना। धीरे-धीरे प्रसन्न हो जायगी। दो--चार दिन मे तो रगत ही पलट जायगी।

स्वरूपश्री—वहिन, इतने दिनो मे आज ही इसका चेहरा प्रसन्न नजर आया है ! इसे प्रसन्न देख कर मेरा मन भी प्रसन्न है। आपके आने से इसकी उदासी दूर हो गई है। मैं हाथ जोडती हूँ बहिन ! थोड़ी देर के लिए रोज आ जाया करो और वहू का जी वहला दिया करो।

कमलश्री—अच्छा वहिन ! अभी तो मुझे जाना है। मौका होगा तो फिर आऊँगी।

इतना कहकर कमलश्री घर से वाहर निकली। सेठ की इच्छा तो वहुत हुई कि कमलश्री को रोक कर आज कुछ वाते करूँ, किन्तु लज्जा और सकोच के कारण वह उसे रोक नही सका। कमलश्री सीधी हवेली के वाहर निकल गई और धनसार सेठ देखते ही रह गए !

कमलश्री ने भविष्यदत्त के पास आकर तिलकसुन्दरी का समस्त हाल सुनाया और स्वरूपश्री से हुई वातचीत भी कह सुनाई। इसके वाद दोनो सामायिक करने वैठ गये। सामायिक का समय पूर्ण होने पर भविष्यदत्त वहुमूल्य वस्त्र धारण करके गलियो मे होकर राजा के दरवार मे जा पहुँचा। यथोचित भेट दी।

भविष्यदत्त को देख कर राजा ने कहा - वहुत दिनों मे दिखलाई पड़े भविष्यदत्त ! अव तक कहाँ रहे ?

भविष्यदत्त—नरनाथ ! आपके शुभाशीर्वाद से जीवित लौट सका हू, नही तो इस जीवन मे आपके दर्शन ही होना सम्भव नही था !

राजा—हैं, ऐसी क्या बात हुई ? कौन-सा कष्ट तुम्हारे ऊपर आ पडा था ?

भविष्यदत्त—महाराज ! कुछ न पूछिए ! कहते हुए लज्जा आती है। 'अपनी जाँघ उघाडिये, आपहि मरिये लाज' वाली उक्ति चरितार्थ हो रही है ! मगर आप हमारे पितृतुल्य हैं और एक प्रकार से पिता से भी ज्यादा हैं। आपके सामने अपना दु.ख निवेदन न करने से कैसे काम चलेगा ?

राजा—निःसकोच होकर कहो ।

भविष्यदत्त व्यापार के उद्देश्य से रवाना होने से लेकर अन्त तक का सब हाल राजा को सुनाने लगा । राजा बड़ी सहानुभूति और साथ ही कुतूहलपूर्वक भविष्यदत्त का वृत्तान्त सुनने लगा ।

३१ १०-४८ }

वीर निर्वाण
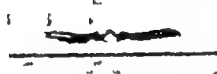
स्तुति :

नात्यद्‌भुतं भुवनभूषण भूतनाथ !
भूतगुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त. ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी को स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे जगत् के भूषण ! हे जगत् के प्राणियो के नाथ ! जो आपकी स्तुति करता है, आपकी उपासना और आराधना करता

है, आपके गुणो का गान करता है वह आपके ही समान बन जाता है। अपने भक्त को, अपने दास को अपने ही समान बना लेने का गुण आपमे ही है। यह कोई आश्चर्य की बात नही है। सेवा करने वाले को मेवा मिलता ही है परन्तु प्रभो! आपकी यह उदारता असाधारण है। वास्तव मे जो स्वामी अपने सेवक को अपने ही समान वैभव से सम्पन्न नही बनाता, उस स्वामी की सेवा करने से लाभ ही क्या है ? स्वामी हो तो आप सरीखा हो जो अपने सेवक को पूर्ण रूप से अपनी बराबरी का बना ले। जिन भगवान् ऋषभदेवजी की ऐसी अपूर्व महिमा है, उन्ही प्रभु को हमारा बार-बार नमस्कार हो।

भाइयो ! ससार मे नाना मत प्रचलित है। किसी ने कुछ और किसी ने कुछ बतला दिया है। कोई कहता है कि आत्मा है ही नही, कोई कहता है—आत्मा है तो सही परन्तु इसी जीवन के अन्त मे उसका भी अन्त हो जाता है। कोई कहता है-आत्मा परभव मे जाती है और शुभ क्रिया करके मुक्तात्मा बन जाती है, मगर परमात्मा नही बन सकती। परमात्मा तो बस, एक ही है। दूसरे को परमात्मा बनने का अधिकार नही और वह बन भी नही सकता। परन्तु भगवान् ऋषभदेव ने और भगवान् महावीर स्वामी ने ऐसा नही कहा। उन्होने इस आत्मा को परमात्मा बनने का मार्ग बतलाया और कहा कि जो इस मार्ग पर चलेगा, वह स्वय परमात्मा--पद का अधिकारी होगा। इस प्रकार का उपदेश देकर वीतराग भगवान् ने आत्मा के सामने विकास की अनन्त सभावनाएँ प्रस्तुत कर दी। अनेक जीवो ने उस मार्ग पर चल कर अपना विकास किया, परमात्म-पद पाया। किस प्रकार

आत्मा के स्वाभाविक गुणो का विकास होता है और किस क्रम से आत्मा का अभ्युत्थान होता है, यही बात मैं कई दिनो से आपको बतला रहा हूँ। परमात्मापद प्राप्त करने के लिए आत्मा के विकारो का नाश होना आवश्यक है। वह किस क्रम से नष्ट होते हैं और किस क्रम से आत्मा की उन्नति होती है, यह बतलाते हुए मै आपको बारहवे गुणस्थान की बात कह चुका हूँ। बारहवे गुणस्थान मे कर्म सेना के प्रबल सेनापति मोह का विनिपात हो जाता है। आप जानते हैं कि सेना का साहस तभी तक कायम रहता है और तभी तक वह जोर लगाती है जब तक उसका सेनापति विद्यमान रहे और वह सारी सेना का सचालन करता रहे। सेनापति के मर जाने पर सेना साहस हीन हो जाती है और उसके पैर उखडते देर नही लगती। वह तितर-बितर हो जाती है।

कर्मों की सेना का भी यही हाल है। जब तक मोह सेनापति रहता है, उसका प्रत्येक सिपाही जी जान से डटा रहता है, परन्तु मोह के नष्ट होते ही सब सिपाही ढीले पड जाते हैं और तितर-बितर होने लगते हैं। यही कारण है कि मोह के पराजित होने पर उसके सबसे बड़े तीन महारथी ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और अन्तराय का भी नाश होने मे विलम्ब नही लगता। मोहनाश के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त्त मे ही इन तीनो घातिया कर्मो का नाश हो जाता है—

क्षीणमोह के चरम समय में, घातित्रय कर्म खपाता है।
सयोगी के प्रथम में, अनन्त चतुष्टय प्रकटाता है॥

बारहवे गुणस्थान की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की है। इसके

प्रथम समय में ही मोहनीय कर्म का नाश हो जाने के कारण आत्मा को क्षीणमोह अवस्था प्राप्त हो जाती है और इसके अन्तिम समय मे शेष तीन घाति कर्मो का क्षय हो जाता है। इस प्रकार चारो घनघातिया कर्मों का क्षय हो जाने पर आत्मा परमात्म पद का भागी बन जाता है। तेरहवे गुणस्थान मे पहुच जाता है। तेरहवे गुणस्थान का नाम सयोगकेवली गुणस्थान है। इसमे आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त क्षायिकचारित्र और अनन्तशक्ति से सम्पन्न होकर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अवस्था प्राप्त करता है। यह वह अवस्था है, जिसे जैनशास्त्रो मे अर्हन् अवस्था कहते हैं और दूसरे लोग जीवनमुक्तदशा कहते है।

अर्हन्तअवस्था मे पहुँचे हुए वीतराग तीर्थंकर भगवान् तत्त्व का उपदेश करते है। आज जो उपदेश शास्त्रो मे हमे मिलता है, वह तेरहवे गुणस्थान मे पहुँचे हुए अर्हन्त भगवान् का ही उपदेश है। यह उन्ही महापुरुपो का असीम उपकार समझना चाहिए कि हम लोग आज आत्मकल्याण का मार्ग समझते हैं और समझाते है!

अरिहत भगवान् इन अठारह दोषो से सर्वथा मुक्त हो जाते हैं--

राग द्वेष काम मिथ्याऽव्रत, षट् हास्यादिक का नाश हुआ।
अज्ञान निद्रा पाचो अन्तराय मिट आत्मगुण प्रकाश हुआ ।।

अरिहत् मे राग और द्वेष नही होता। जहाँ यह दोनो दोप हैं वहा न ईश्वर आ सकता है, न सर्वज्ञता ही आ सकती

है। उनमे पूर्ण निष्काम दशा भी आ जाती है। मिथ्यात्व और अविरति का भी अन्त हो जाता । हास्य, रति, अरति, शोक भय और जुगुप्सा की सत्ता नही रहती। पूर्ण ज्ञानी को कभी हंसी नही आती, क्योकि हंसी किसी नवीन बात पर आया करती है और पूर्ण ज्ञानी के लिए कोई भी बात नयी नही होती। केवलज्ञानी को किसी भी बात से न हर्ष होता है और न विषाद ही होता है। न शोक होता है, न चिन्ता होती है। वे भय से अतीत हो जाते है। जब तक हाथ मे लकडी, तलवार, तीर, त्रिशूल, गदा, चक्र आदि कोई भी शस्त्र है, समझना चाहिए कि तब तक भय विद्यमान है और उसका कोई न कोई शत्रु भी है। शत्रु न होता तो भय न होता और भय न होता तो शस्त्र धारण करने की आवश्यकता न होती। इस स्थिति मे प्रभुता या परमेश्वरता नही रह सकती।

भाइयों! यह अठारह बाते ऐसी है, जिनसे ईश्वरत्व की पहचान होती है। सच्चे ईश्वर को समझना हो तो देख लेना कि इन दोषो में से कोई दोष तो नही है। जिसमे इनमे से एक भी दोष हो उसे ईश्वर नही मानना चाहिए।

ईश्वर मे लेशमात्र भी अज्ञान नही होता। केवलज्ञान होने पर कोई भी बात छिपी नही रहती। केवलज्ञानी भगवान् के लिए भूत और भविष्यत् हथेली की रेखाओ के समान स्पष्ट दिखाई देते हैं। कोई बात मालूम होना और कोई बात न मालूम होना अल्पज्ञता का निशान है।

ईश्वर को निद्रा भी नही आती। निद्रा आ जाय तो ज्ञान न रहे, प्रमादमय अवस्था आ जाय। अगर कोई कहता है कि

अभी भगवान् शयन कर रहे हैं तो समझ लो कि शयन करने वाला भगवान् ही नहीं है। भगवान् को नीद लेने का प्रयोजन ही क्या है ? अनन्तशक्तिमान् होने के कारण उन्हे कभी थकावट नही आती। निद्रा, दर्शनावरण कर्म के उदय से आया करती है और भगवान् उस कर्म को पहले ही नष्ट कर चुके होते हैं। इसलिए भगवान् को नीद लेने का कोई प्रयोजन ही नही है।

ईश्वर के पाँचो ही अन्तराय--दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय-भी नष्ट हो जाते हैं। दानान्तराय कर्म का क्षय होने से भगवान् अनन्त प्राणियो पर अनुग्रह करने वाला क्षायिक अभयदान देते हैं। लाभान्तराय कर्म के क्षय से भगवान् को अनन्त परमशुभ पुद्गलो की प्राप्ति होती है। भोगान्तराय के क्षय से एक विशिष्ट प्रकार का क्षायिक भोग प्राप्त होता है, जिसके प्रभाव से देवगण अचित्त पुष्पो की वर्षा करते है तथा गधोदक की वर्षा करते है। उपभोगान्तराय कर्म का क्षय होने से सिहासन, चामर, छत्र आदि विभूतियाँ देवो के द्वारा प्रकट की जाती हैं। वीर्यान्तराय के क्षय से प्रभु मे अनन्त शक्ति का प्रादुर्भाव होता है।

पूर्वोक्त अठारह बुराइयाँ जब हट जाती हैं तभी केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रकट होता है। देख लो, भगवान् महावीर को केवलज्ञान हुआ तो उससे पहले ही उनके अठारहो दोष हट गये थे। एक वार गोशालक ने क्रोध मे आकर कह दिया कि ज्ञातपुत्र सात दिन मे मर जाएँगे ! यह सुनकर भगवान् के एक शिष्य सिह नामक अनगार को अत्यन्त दुःख हुआ। वे जगल मे रोने लगे। भगवान् ने दूसरे शिष्य को भेज कर सिह अनगार को अपने पास

बुलवाया और कहा—अन्तेवासिन् विषाद मत कर। मैं सात दिन मे नही मरूंगा, सोलह वर्ष तक इस ससार मे मौजूद रहूँगा।

समय बीतते क्या लगता है? धीरे-धीरे सोलह वर्ष बीतने आये। विचरते-विचरते भगवान् पावापुरी मे पधारे और वहां नगरी से बाहर बगीचे मे विराजमान हुए।

आकर के पावापुरी बीच, सुरगण त्रिगड़ा रचाया है।
धुनि छाय गई क्षितिमडल में सुर जग्र जयकार मचाया है ॥
जिस समय पधारे थे भगवन् पुरो में सुख का सचार हुआ।
भगवान् का स्वागत करने को, तैयार भूप परिवार हुआ ॥

जिस समय भगवान ने पावापुरी को परमपुण्यधाम बनाया, उस समय वहा का राजा हस्तिपाल था। समग्र देश के पुण्य का उदय हुआ तो भगवान वहां पधारे। मोटर जब चलती है तो उसका प्रकाश कितनी दूर तक जाता है? इसी प्रकार भगवान महावीर पधारे तो समग्र देश मे उस परमपूत परमात्मा का पुनीत प्रकाश प्रसारित हो गया! भगवान जहा विराजमान थे उस भूमि से सौ--सौ कोस के इर्द--गिर्द तमाम बीमारो की बीमारिया मिट गई। परमपुण्यवान् के पुण्य का प्रकाश पड़ते ही प्राणी मात्र को आनन्द ही आनन्द हो गया।

धर्मप्रभाकर प्रभु ज्ञातपुत्र के पदार्पण का सम्वाद सुन कर राजा और रानी ने दर्शन करने के निमित्त जाने की तैयारी की। देवसमूह ने समवसरण की रचना की। जयजयकार की गम्भीर ध्वनि से गगनमण्डल गूंज उठा। इतने देवता भगवान् की उपा-

सना करने आये कि मानो स्वर्गलोक वही उतर आया ! कोई दर्शन करने के निमित्त आ रहे है तो कोई वापिस जा रहे है । कोई भगवान् की स्तुति करते है तो कोई उनके चरणो का स्पर्श कर रहे हैं । कोई भक्ति के वशीभूत होकर नाटक करते हैं । भगवान को दिखलाने के लिए नही, वरन् जिन्होने देवलोक नही देखा है, उन्हे दैवी ऋद्धि और स्वर्गीय वैभव दिखलाने के लिए । जिससे जनता को पता लग जाय कि शुभ क्रिया करने से ऐसी ऋद्धि, सिद्धि और ऐश्वर्य मिलता है ! कोई-कोई देव आकाश से पुष्पो की वर्षा करते है । वे फूल यद्यपि अचित्त होते है, फिर भी साधुओ पर नही बरसाये जाते है ।

भगवान की सेवा मे हजारो नर-नारी एकत्र होते हैं । कोई हाथ जोड़ कर विनती करते हैं, कोई उनके पावन चरणो मे मस्तक झुका कर कृतार्थ होते है । कोई स्तुति करके अपनी जिह्वा का सर्वोत्तम लाभ लेते है । राजा हस्तिपाल अपने परिवार के साथ आते हैं । साथ मे हाथी, घोडे, रथ और पैदल सेना है । दर्शन करके आंखो को, गुणगान करके जिह्वा को, चरणस्पर्श करके हाथो और मस्तक को, भक्ति करके चित्त को और धर्मोपदेश सुन कर कानो को पवित्र करते हैं । भगवान् का सामीप्य प्राप्त करके अपने समग्र जीवन को धन्य और पुण्यमय बनाते हैं । सबके आनन्द का पार नही रहता । सब भक्ति की हिलोरो मे बह रहे हैं फिर भी एकदम शान्त वातावरण है । वातावरण मे मानो अपूर्व परिवर्त्तन हो गया है । सबके हृदय भक्तिगद्‌गद हो रहे है । कइयो के पारस्परिक द्वेष था, वह भगवान् के समीप आते ही स्वतः शान्त हो गया ! सिह और मृग, सर्प और नकुल जैसे जन्म

के दुश्मन प्राणियो मे भी परस्पर प्रीति दिखलाई देने लगी। भगवान् के प्रभाव से जीवो की भावना मे तो परिवर्त्तन हुआ ही, प्रकृति ने भी अतीव सुषमामय रूप धारण कर लिया। शीतल, मन्द सुगन्धमय हवा चलने लगी। इस प्रकार समस्त वायुमण्डल जैसे पलट गया! धर्म मूर्त्तिमान् होकर धरातल पर अवतीर्ण हुआ। इस प्रकार पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये।

भाइयों! जहा मोती होते है वही हस आते हैं और जहां मोती नही होते वहाँ बगुले बसते है और मच्छियां खाते है। इसी प्रकार जहाँ का श्रीसघ उत्तम धार्मिक गुणो से युक्त होता है, वही तीर्थंकर, आचार्य और उपाध्याय आदि मुनिवर आते हैं।

हाँ, तो समवसरण रचा हुआ है। बीच में परमवीतराग, परमशान्त, परमप्रसादमयी मुद्रा से सम्पन्न, अनन्त करुणा के धाम, त्रिशलानन्दन महाप्रभु महावीर स्वामी विराजमान हैं। अहा! वह छटा कितनी दिव्य रही होगी! वह दृश्य कैसा अनुपम होगा! उस स्थान के वायु मण्डल मे भी कितनी पावनता आ गई होगी? वह देश और वह काल धन्य है जिसमें तीर्थंकर देव साक्षात् विराजमान थे।

राजा और रानियाँ और दूसरे भक्त श्रावक-जन प्रभु के समक्ष खडे होकर प्रार्थना करते है कि प्रभो! दया कीजिए। यह वर्षा-वास यही व्यतीत करके हमे कृतार्थ कीजिए! हमे भक्ति का लाभ दीजिए! प्रभो! आपकी कृपा होगी तो हमारा जीवन पावन और धन्य बन जायगा! प्रभो! आपका आगमन होता है तो जान पड़ता है कि असीम प्रकाश अवतरित हुआ है। आप

अन्यत्र पधार जाते है तो ऐसा लगता है कि जैसे अनमोल खजाना लुट गया, हाथ मे आया हुआ चिन्तामणि चला गया, प्रकाश विलीन हो गया ! अन्धकार सर्वत्र छा गया—भगवन् ! हमारे हृदय की भावना पूर्ण कीजिए !

वीतराग प्रभु को किसी प्रकार के आग्रह की आवश्यकता नही होती। वे अपने ज्ञान मे जैसा जानते है, उसी प्रकार की प्रवृत्ति होती है। भगवान् उस क्षेत्र की स्पर्शना जान कर वही चातुर्मास--काल विराजमान हुए।

भगवान धर्म का उपदेश करते है। धर्मोपदेश समाप्त हो जाने पर सब श्रोता वन्दना-नमस्कार करके अपने-अपने स्थान पर चले जाते है और यथासमय साधु आहार-पानी के लिए नगर मे जाते हैं। भक्तगण हाथ जोड़े खडे रहते है। और मुनियो को देखते ही भक्तिपूर्वक आमन्त्रण करते हैं। कहते है--कृपानाथ ! पधारिये। मुझ पर अनुग्रह कीजिए। मेरा घर पवित्र कीजिए। आहार-पानी निर्दोष है, उसे ग्रहण कीजिए।

कई लोग कहते है कि साधु को देखकर ऐसी प्रार्थना नही करनी चाहिए। मगर उनका कथन यथार्थ नही है। साधु के स्थान पर जाकर पहले से न्यौता दे आना एक बात है और रास्ते मे जाते हुए मुनिराज को देखकर पधारने की प्रार्थना करना दूसरी बात है। पहले से न्यौता देना श्रावक के लिए शोभा नही देता और उस न्यौते को जो स्वीकार करता है वह साधु नही कहा जा सकता। इस प्रकार का न्यौता स्वीकार कर लेने से साधु के निमित्त आहार तैयार होता है और ऐसा भोजन लेना निषिद्ध है। परन्तु

रास्ते चलते मुनि से प्रार्थना करने मे इस दोष की कोई सम्भावना नही है। बल्कि इस प्रकार का विनय-विवेक प्रदर्शित करना ही श्रावक की भक्ति का परिचायक है।

राजा जानता है कि मेरे जीवन मे यही शुभ अवसर अन्तिम है। फिर ऐसा मौका हाथ आने वाला नहीं है, क्योंकि भगवान के कथनानुसार यह उनके निर्वाण का वर्ष है-सोलहवां वर्ष है। पावापुरी मे वर्षावास व्यतीत करने का समाचार सर्वत्र फैल गया। देश-देश के राजाओं ने भगवान् की उपासना करने का निश्चय किया। सोचा-वर्द्धमान जिनेश्वर अन्तिम तीर्थंकर हैं और यह उनका अन्तिम समय है। तीर्थंकर भगवान की उपासना और साक्षात् आराधना का यह पुण्य-अवसर नही मिलने वाला है। अन्य धार्मिक जन भी ऐसा ही विचार करने लगे। कहने लगे— धन्य है पावापुरी नगरी और वहा की जनता, जिसे प्रभु के इस चातुर्मास का सुअवसर मिल गया! धन्य है वहा का राजा जो भगवान् की सेवा का अपूर्व लाभ लेगा!

इस प्रकार पावापुरी को धन्यवाद देते हुए देश-देश के लोग भगवान् की सेवा मे आते जाते। भगवान् अपने शिष्य समूह के साथ विराजमान होकर धर्म का उद्योत कर रहे थे। और राजा हस्तिपाल—

आगत का स्वागत हस्तिपाल, भूपति विचार के करते थे।
हे धन्य आज का दिवस भावना, उर मे ऐसो भरते थे॥

राजा हस्तिपाल विवेक-विचार के साथ सभी आने वालो

का स्वागत करते थे। वे साधर्मी भाइयों की सेवा-शुश्रूषा करके अपने आपको धन्य समझते थे।

जगह-जगह से राजा लोगो के आगमन का समाचार आने लगा। राजा हस्तिपाल सब की व्यवस्था करने मे लगे। उधर देवदुंदुभियाँ बज रही है। भगवान् सुखपूर्वक विराजमान हैं। सबसे पहले पावस ऋतु का आगमन हुआ है बादल मडरा रहे है।

पावस ऋतु का पा समय, आया वर्षा काल।
मघवन इत वर्षा करे उत वर्षा प्रतिपाल ॥

इधर मेघो से पानी की वर्षा हो रही है और उधर तीर्थंकर प्रभु के मुख-चन्द्र से सुधा-समान धर्मोपदेश की वर्षा हो रही है। वर्षा होने से इधर ग्रीष्म ऋतु के प्रखर ताप से तप्त भूतल शीतल हो रहा है, उधर भव्य जीवो के अन्तःकरण, जो काम, क्रोध, मोह, लोभ, लालच आदि कषायो के सन्ताप से तपे हुए थे, शान्त हो रहे है।

भाइयो ! जो कामान्ध हो जाता है उसे अपना हित-अहित नही सूझता। वह अपनी और अपने पूर्वजो की प्रतिष्ठा को कलङ्कित करने मे भी सकोच नही करता ! और क्रोध से जो पागल हो जाता है, वह भी सत्-असत् का विचार करने मे असमर्थ हो जाता है। क्रोध की आग मे उसकी विचारशक्ति भस्म हो जाती है। वह न बोलने योग्य भाषा बोलता है, न करने योग्य कार्य करता है और न करने योग्य सकल्प करता है। वह क्रोध की आग मे स्वय भी जलता है और दूसरो को भी जलाता है।

अभिमान मे छका हुआ मनुष्य भी अनेक अनर्थ कर बैठता है। 'माणो विणयनासणो' मान कषाय से विनम्रता का विनाश हो जाता है, उसके हृदय की कोमलता नष्ट हो जाती है और अभिमान के नशे मे आदमी ऐसा उन्मत्त हो जाता है कि कोई दुष्कर्म कर बैठना उसके लिए बड़ी बात नही होती। वह पूज्य पुरुषो का भी तिरस्कार करता है और वदनीय जनों का अपमान करने से नही चूकता। अभिमानी कहता है–मेरा सारा धन चाहे बर्बाद हो जाय, मगर तुझे तो जेलखाने की हवा खिलाऊँगा ही। मुझे तू ने क्या समझ रक्खा है ?

और लालची आदमी चाहता है कि सारे ससार का धन मेरे घर मे आ जाय तो कितना अच्छा हो ! वह अपने धर्म-कर्म को, विश्राम को सुख को भूल जाता है, रात दिन धन की उपासना मे ही लगा रहता है, भांति-भाँति के कष्ट सहन करता है। धन आता है तो समझता है कि बस प्राण ही आ गये ! धन जाता है तो प्राण चले गये ! धन-दौलत ही उसके जीवन का सार है, धन ही उसका प्राण है, सर्वस्व है। धन के लिए वह निरन्तर आकुल–व्याकुल बना रहता है।

मगर इस प्रकार जिन लोगो के हृदय कषायों की ज्वाला से दग्ध हो रहे थे, उन्हे भी भगवान् के उपदेश से परम शान्ति की अनुभूति हुई। भगवान् का वचनामृत पान करके उनको अपूर्व तृप्ति प्रतीत होने लगी।

यो करते–करते श्रावण के बाद भाद्रपद मास आ गया। लोगो ने सोचा–चलो पावापुरी की ओर ! लोग आये और

भगवान् की उपासना करके धन्य एव कृतार्थ हो गये ! जमीन पर कीचड फैला हुआ था। भाद्रपद मे अगर कीचड न हो तो भाई, फाल्गुन मे चंग बजना भी वन्द हो जाय ! कीचड होने पर भी, उसकी परवाह न करके राजा लोग प्रभु की सेवा, उपासना और आराधना के लिए उमड पडे।

इन्द्र इन्द्राणी आ रहे, मन में खुशी अपार।
धर्मधुरन्धर वीर के, होते जय-जयकार ॥

मन में अपार प्रसन्नता को धारण किये इन्द्र और इन्द्राणी भी पावापुरी की पावन भूमि पर आये। देवो और मानवो का मेला सा लग गया। सर्वत्र "वर्द्धमान भगवान् की जय' के नारे लगने लगे। जय-जयकार की इस ध्वनि मे मेघो की गर्जना की ध्वनि भी विलीन हो जाती थी। आकाश मे सप्तरगी इन्द्र-धनुष वना हुआ था, तो भगवान की सप्तभगीमयी वाणी थी।

भाइयों ! भगवान् की वाणी का वर्णन किस प्रकार किया जाय ? सर्वज्ञदेव के मुख से निकले हुए वचनामृत का जिसने पान किया उसका त्राण हो गया। उसका भवभ्रमण मिट गया। जन्म सार्थक हो गया। उसने स्वर्ग और मोक्ष पर अधिकार प्राप्त कर लिया। अहा ! कैसे भाग्यशाली थे वे भव्य जीव, जिन्हे अपने कानो से भगवद्वाणी सुनने का और अपने नयनो से त्रिशलानन्दन को निहारने का अलभ्य अवसर मिला !

प्रभु की पावन वाणी सुनकर राजाओ का पारस्परिक मलोमालिन्य एव वैरभाव मिट गया। उस अलौकिक पीयूष के

प्रबल प्रवाह मे श्रोताओं के अन्तःकरण में घुसे हुए पाप घुल गये, वह गये और अन्तःकरण स्वच्छ और पवित्र हो गये। दया, क्षमा, सहानुभूति की कल्लोले उठने लगी। सर्वत्र धार्मिकता की शीतल वायु बहने लगी। ऐसा जान पडने लगा कि तीर्थंकर भगवान ने जीव मात्र की प्रकृति में आमूलचूल परिवर्त्तन कर दिया है। सब जीव निर्वैर और निर्विरोध होकर मित्र भाव से एक दूसरे को देखने लगे।

आपको मालूम है कि वर्षा होने पर भूमि पर तरह-तरह के अकुर फूट निकलते है, और नाना प्रकार के फल-फूल उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार भगवान की वाणी रूपी पानी की वर्षा होने पर कोई तपस्या करता है, कोई परोपकार करता है, कोई दान करता है, कोई शील का पालन करता है, कोई शुद्ध भावना करता है! लोग नाना प्रकार के व्रतो और नियमो को अगीकार करके अपने चित्त को आनन्दमय और जीवन को निराकुलतामय बनाते है। कोई धन-दौलत का परिमाण करके अपनी तृष्णा पर अंकुश लगाते है।

भाइयो! आज साक्षात् भगवान विद्यमान नही है, मगर उनके द्वारा बतलाया हुआ मार्ग तो आज भी विद्यमान है। उन महात्माओ के प्रति हमे आभारी होना चाहिए, जिन्होने प्रभु के पवित्र प्रवचनो को शास्त्र के रूप मे गूथा और जिन्होने आज तक उसे सुरक्षित रक्खा है। भगवान की वह वाणी आज भी सुनने-सुनाने का हमे आपको जो सुअवसर मिला है, वह हमारे उत्कृष्ट से उत्कृष्ट पुण्य का फल है। इस वाणी के प्रभाव से कितने ही

भव्य तिर गये हैं, कितने ही पापी पुण्यात्मा बने हैं और कितने ही जीव अपना परम कल्याण कर चुके है ।

इस पावन प्रवचन का श्रवण करके आप भी अपनी आत्मा के कल्याण के लिए प्रयत्न कीजिए। धन-सम्पत्ति का लोभ आपको धर्म की ओर उन्मुख नही होने देता। आप रात-दिन धन का उपार्जन करने मे ही अपनी समस्त शक्तियां व्यय करते हैं। धर्म-साधना मे धन की तृष्णा बहुत बाधक होती है। परन्तु कभी यह भी सोचते हो कि आखिर इतने धन का क्या करोगे ? क्या पाव भर अन्न के बदले बहुमूल्य मोती खोना चाहते हो ? अरे, पाव भर अनाज, थोडीसी जगह और आवश्यक वस्त्र तुम्हे चाहिए और उसके बदले तुम दुनिया भर की दौलत को हथियाने के लिए आकाश पाताल एक कर रहे हो ? सोचते क्यो नही कि यह सब वृथा है ? अपना यह उत्तम जीवन इस जड और विनश्वर सम्पत्ति के पीछे क्यो अकारथ खो रहे हो ? धन की मर्यादा कर लो। मर्यादा कर लोगे तो सन्तोष आ जायगा सन्तोष आ जायगा तो व्याकुलता, व्यस्तता मिट जायगी। निराकुलता का अपूर्व सुख प्राप्त होगा और तब भावना धर्म की ओर जायगी।

धन की मर्यादा नही करोगे तो परिणाम अच्छा नही निकलेगा। लकड़ियां झोके जाओ और आग बढती चली जायगी। इंधन डालते जाने से आग कभी शान्त नही हो सकती। तृष्णा भी आग है। उसमे ज्यो-ज्यो धन का ईंधन झोकते जाओगे, वह बढ़ती ही जायगी। वह विकलता पैदा करेगी। चैन नही लेने देगी। तो भाई, ऐसे धन से क्या लाभ हुआ ? इस धन ने तुम्हे क्या सुख दिया ? इसीलिए मैं कहता हूँ कि धन की मर्यादा करलो।

न करोगे तो तृष्णा की आग मे झुलसते जाओगे, शान्ति नही पाओगे और अपने जीवन को बर्बाद कर लोगे। आखिर प्रायः धन की तृष्णा ही तो पापों की ओर प्रेरित करती है। धन का लोभी कौन-सा पाप नही कर बैठता ? वह अपनी कन्या को बेच देता है, कन्या का धन हड़प जाता है, चोरी करता है, बेईमानी करता है और क्या-क्या नही करता ?

भाइयो ! समुद्र का छोर है पर तृष्णा का छोर नही है। शास्त्र मे कहा है,—

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया।

जैसे आकाश का कही और कभी अन्त नही है, उसी प्रकार तृष्णा का भी अन्त नहीं है।

अतएव अगर सच्चा सुख और सच्ची शान्ति चाहते हो तो धन मर्यादा करके तृष्णा पर अंकुश लगाओ। जो लोग अपने जीवन का अधिक भाग धन कमाने मे व्यतीत कर चुके है, उन्हे निवृत्त (Retired) हो जाना चाहिए। जिंदगी के अन्तिम श्वास तक गधे की तरह लदे-लदे फिरना ठीक नही, दुनिया के धन्धे छोड़ो और परमात्मा की प्रीति से बन्धे रहो। धर्मोपदेश सुनने का यही सर्वोत्तम सार है।

देखो, भगवान का उपदेश सुनकर कितने ही श्रोताओ ने मुनिव्रत अंगीकार किये, कितनो ने ही श्रावक धर्म को स्वीकार किया। राजाओ का वैमनस्य दूर हो गया और सब मे पारस्परिक मैत्रीभाव उत्पन्न हो गया।

एक वार मैं देवास मे, वाजार के, व्याख्यान दे रहा था। वहा के दो पातिदार राजा भी व्याख्यान सुनने आये। उनमे आपस मे वैमनस्य था। व्याख्यान सुनने से वह दूर हो गया। दोनो के चित्त शान्त और स्वस्थ हो गये।

भाइयो! जल उपजाऊ भूमि पर पडता है तो वहा अकुर उगने की उम्मीद होती है। यदि वही पानी ऊसर भूमि मे पडे तो उम्मीद नही की जा सकती। आपने जवासा का नाम सुना है? वर्षा से पृथ्वी जव हरी भरी हो जाती है और वनस्पतिया खिल उठती हैं तो जवासा नाम की झाड़ी सूख जाती है। ससार मे जवासा जैसी प्रकृति के भी लोग होते हैं। कहते है-हुँ, वहा व्याख्यान मे क्या पडा है? व्यर्थ की माथा फोड मे कौन पडे? कोई महापुरुष ससार मे हुआ नही और होगा भी नही, कि सभी मनुष्य, समान रूप से, उसके अनुकूल हो जाएँ। वहुत-से लोग प्रतिकूल भी होते है।

गाधीजी का ही ताजा उदाहरण ले लीजिए। उनका लग-भग समग्र जीवन देश सेवा और परोपकार में ही व्यतीत हुआ। करोड़ो आदमी उनके प्रति आस्था रखते थे। सारा ससार उन्हे आदर्श पुरुष मानता था। परन्तु कुछ लोग ऐसे भी थे जो उनके विरोधी थे और उन्होने आखिर उनकी हत्या करके ही चैन ली!

हा, तो भगवान उपदेशामृत की वरसा कर रहे थे और भव्य जीव उसका पान करके शान्ति का अनुभव कर रहे थे। क्रमशः भाद्रपद महीना भी पूरा हो गया और आश्विन मास लग गया। भगवान के उपदेश से मानो मनुष्यों के अन्त.करण की ही

कालिमा नही मिटी, अपितु बादलों की भी कालिमा दूर हो गई। जैसे श्रोताओ का चित्त निर्मल हो गया, उसी प्रकार मेघो मे भी स्वच्छता आ गई। आकाश में काले-काले बादलो के बदले निर्मल धवल मेघ दृष्टिगोचर होने लगे। गम्भीर गर्जना करके प्रभु का जय-जयकार करने लगे। अपनी कालिमा धुल जाने से कृतज्ञ होकर प्रभु की स्तुति करने लगे। आकाश भी स्वच्छ हो गया। जलाशयो के जल की मलीनता भी हट गई। चहुँ ओर निर्मलता और स्वच्छता ही दृष्टिगोचर होने लगी। शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है:—

हंसश्चन्द्र इवाभाति जलं व्योमतल यथा।
विमलाः कुमुदानीव, तारकाः शरदागमे॥

\+ + + +

काशा क्षीर निकाशा, दधिशरवर्णानि सप्तपर्णानि।
नवनीतनिभश्चन्द्र शरदि च तक्र प्रभा ज्योत्स्ना॥

शरद् ऋतु जब आती है तो सारी प्रकृति मानो स्वच्छता, शुक्लता और धवलता को धारण कर लेती है। चन्द्रमा हंस के समान स्वच्छ, जल आकाश के समान निर्मल और तारकावली कुमुदो के समान धवल दिखाई पडती है। काश नामक पौधे दूध के समान, सप्तपर्ण वृक्ष दधि के समान, चन्द्रमा मक्खन के समान और चाँदनी तक्र के समान सफेद प्रतीत होती है।

इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी के उपदेश से बाह्य प्रकृति के समान जीवो की अन्तः प्रकृति मे भी शरद् ऋतु का

आगमन हो गया। भव्य जीवों के हृदय स्वच्छ और धवल हो गये। वर्षा ऋतु मे मार्ग बिगड़ गये थे, वे भी अब साफ हो गये। सर्वत्र शीतलता व्याप गई। भगवान की वाणी से जीवो के चित्त शीतल हो गये और सारी प्रकृति भी शीतल हो गई।

प्रेम परस्पर कर रहे, मिल सारे भूपाल।
षोडस संवत् का हुआ, सब के दिल में खयाल ॥
आसौज मास आनन्दमयी, राजों ने वहां बिताया है।
तप संयम में मन रगे हुए कातिक का महीना आया है ॥

देश-देश के राजा उपस्थित हैं। सब भाई-भाई की भाँति एक दूसरे पर प्रीतिभाव धारण किये हुए है। सब को सोलहवे वर्ष का खयाल आ रहा है। सब सोचते है धर्म का सूर्य अस्त होने वाला हैं। उससे जितना लाभ उठाया जा सकता हो, उठा लो। प्रभु की वाणी सुनलो। यह अनुपम आनन्द फिर नहीं मिलने वाला है। अभी प्रभु साक्षात् विराजमान हैं! अहा, हम लोगो ने न जाने जन्म-जन्मान्तर मे कितने प्रकृष्ट पुण्य का संचय किया था कि वह सौभाग्य प्राप्त हो सका। सौभाग्य को बढ़ाने और सफल करने का यही अवसर है! आत्मा के उद्धार का, अक्षय सुख प्राप्त करने का, अपने आपको धन्य बनाने का यह सुअवसर मत चूको। चिन्तामणि मिली है तो चितचाहा धन सचित कर लो। कल्पवृक्ष घर मे उगा है तो मन के मनोरथ पूरे कर लो। कामधेनु आई है तो उसकी सेवा करके अपने समस्त दु:खो को मिटा लो। कामपुरुष सामने है, मत चूको रे भाइयों! मत चूको! मन की मुराद पूरी कर लो।

जिस जगपति ने जगत को, जगा दिया जग आन।
जिस जगपति ने जीव को, दीना जीवन दान ॥

इस भूतल पर अवतरित होकर भगवान ने मोह की नीद मे, वेखवर होकर सोने वाले प्रमादशील प्राणियो को जागृत कर दिया। प्रभु ने जगत् के जीवो को अपने आदर्श व्यवहार और उपदेश के द्वारा जीवनदान दिया। स्वय अहिंसामय आचरण किया, जिससे किसी भी प्राणी को उनके निमित्त से कष्ट न पहुँचे और दूसरो को ऐसा उपदेश दिया कि वे भी हिंसा का परित्याग करे। भगवान ने वतलाया कि सुखी होना चाहते हो तो दूसरो को सुखी करो, शान्ति चाहते हो तो दूसरों को शान्ति पहुँचाओ। दुःखों से वचना चाहते हो तो दूसरो को दुःख से वचाओ। कष्ट नही चाहते तो दूसरो को कष्ट मत दो। याद रक्खो, जिस प्रकार तुम्हे अपने प्राण प्रिय हैं. उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने-अपने प्राण प्रिय हैं, जैसे तुम जीवित रहना चाहते हो, उसी प्रकार अन्य जीव भी जीवित रहने की अभिलाषा रखते हैं। किसी को अधिकार नही कि वह तुम्हारे प्राण रूपी परमधन को लूटे, उसी प्रकार तुम्हे भी अधिकार नही कि तुम किसी के प्राणो के ग्राहक वनो। सव इस नीति का अनुसरण करेगे तो सभी सुखी रहेगे। इसके विरुद्ध व्यवहार करेगे तो भूतल कत्लखाना वन जाएगा। ससार अशान्ति का घर हो जायगा। हिंसा, चाहे पेट पालने के लिए की गई हो, चाहे जिह्वालोलुपता के वशीभूत होकर की गई हो, चाहे धर्म के नाम पर की गई हो, हर हालत मे पाप है और हिंस्य तथा हिंसक-दोनो को अशान्ति और व्यथा

देने वाली है। इस प्रकार उपदेश देकर भगवान् ने अहिंसा की प्रतिष्ठा की। जीवो को जीवनदान दिया।

दिया ज्ञान जनता का अज्ञान रोका,
उमडता था हिंसा का तूफान रोका।
किया आत्म बलिदान बलिदान रोका
महावीर स्वामी ! महावीर स्वामी ! ! ॥

धर्म के सम्बन्ध मे नाना प्रकार की मूढताएं फैली हुई थी। लोग भूल गये थे कि वास्तविक धर्म क्या है ? कोई देवी-देवता के नाम पर पचेन्द्रिय जीवो की बलि चढाने मे धर्म समझता था, कोई केवल पानी से नहाने मे धर्म मानता था, कोई विवेकहीन कायक्लेश मे धर्म मानता था, और कोई केवल तिलक-छापा लगा कर ही वैतरणी के पार पहुच जाने के मंसूवे बाँधता था।

उस समय यज्ञ के रूप मे घोर हिंसा हो रही थी। हिंसा तो प्रत्येक तरह की घृणित ही है, परन्तु धर्म के नाम से होने वाली हिंसा तो खास तौर से खतरनाक है। दूसरी हिंसा को लोग कम से कम त्याज्य तो समझते है, मगर धर्म के नाम पर होने वाली हिंसा त्याज्य नही समझी जाती ! भगवान् ने इस हिंसा को रोकने के लिए अपने समस्त सासारिक सुखो का वलिदान कर दिया। वे राजकुमार थे। किसी चीज की उन्हे कमी नही थी। ससार के उत्तम से उत्तम सुखद पदार्थ उन्हे अनायास ही उपलब्ध होते थे। मगर जब जगत् के जीव अज्ञान के अन्धकार मे भटक रहे हो और ठोकरे खा रहे हो, मरने वाले जीव त्राहि त्राहि कर रहे हो और

म रने वाले अपने लिए नरक का निर्माण कर रहे हों तो करुणा-सागर को ससार का ऐश्वर्य कैसे आनन्द देता ? उनकी चित्तवृत्ति भोगोपभोगो मे कैसे रम सकती थी ? दया से द्रवितहृदय होकर भगवान् ने ससारसुखो को ठोकर मार दी और जगत् का कल्याण करने के लिए उद्यत हो गये।

जगत् का कल्याण करने के लिए पहले अपने आपको ऊँचा उठाने की आवश्यकता है। जिसमे पूर्ण ज्ञान और पूर्ण वीतरागता नही हैं, वह समभाव रख कर सच्चा मार्ग नही बतला सकता। अतएव भगवान् ने सर्वज्ञता और वीतरागता प्राप्त करने के लिए घोर तपश्चरण किया। इस प्रकार प्रभु ने स्वहित और परहित को एकाकार कर दिया। परम करुणा कर भगवान् नें वलिदान को रोकने के लिए अपने आपका वलिदान दे दिया। ऐसे त्यागी, वैरागी, ज्ञानी भगवान् महावीर थे !

भाइयो ! भगवान महावीर का जगत् पर असीम उपकार है। उन्होंने ससार को एक नवीन और पारमार्थिक दृष्टि प्रदान की। लोकमान्य तिलक सरीखे वैदिक धर्म के श्रद्धालु विद्वान स्वीकार करते है कि भगवान महावीर की ही कृपा का यह फल है कि आज बहुत--से लोग मासभक्षण करने से बचे हुए हैं। उन्होंने कहा है कि महावीर स्वामी ने वैदिक धर्म पर अहिसा की छाप लगा दी है।

श्री कन्नोमल एम. ए. ने 'महावीर के आदर्श जीवन' की भूमिका मे लिखा है कि दुनिया पर भगवान महावीर की जैसी छाप पड़ी है वैसी किसी की नही पड़ी। उस समय की परिस्थिति

मे भगवान महावीर ने महान कार्य किया। आज साधारण लोग उसकी कल्पना भी नही कर सकते।

आज जो लोग भगवान महावीर के अनुयायी है, उनमे से किसी से कहा जाय कि सौ रुपया लेकर अडा फोड दो या चूस लो तो वह कदापि तैयार नही होगा। भगवान महावीर का निर्वाण हुए पच्चीस सौ वर्ष व्यतीत हो चुके है और आज भी उनके अनुगामियो मे दया की भावना अक्षुण्ण है। आज भी यही माना जाता है जो शराब पी ले या मास खा ले, वह जैन नही है। मगर यह न समझिये कि जैनो तक ही भगवान का प्रभाव सीमित है। नही, आज जैनेतर वैष्णव आदि समाजों मे अहिंसा की जो भावना दिखाई देती है, वह भी भगवान महावीर का ही पुण्य प्रताप है।

भगवान महावीर ने अनेकान्तवाद की प्ररूपणा करके दुनिया को समझाया था कि धर्मनिष्ठ बनो; धर्मान्ध मत बनो। धर्मनिष्ठ और धर्मान्ध में बडा अन्तर है। धर्मनिष्ठ व्यक्ति अपने धर्म पर पूर्ण निष्ठा रखता है, परन्तु धर्म के नाम पर विधर्मियो से लड़ाई झगडा नही करता। वह उन पर मध्यस्थभाव रखता है। परन्तु धर्मान्ध व्यक्ति अपने माने हुए धर्म के सिद्धान्तों पर भी नही चलता है, फिर भी इतर धर्म के अनुयायियों के प्रति द्वेष और घृणा का भाव रखता है। वह चाहता है कि दूसरे लोग सब मेरे ही धर्म को अगीकार कर लें। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए वह जिन साधनो का प्रयोग करता है, उनके सम्बन्ध मे उचित-अनुचितता की भी चिन्ता नही करता। वह किसी को लालच देकर, किसी को भय दिखला कर और किसी को तलवार दिखला

कर अपने धर्म में लाने का जघन्य प्रयास करता है। यहां तक कि कई एक धर्मान्ध तो दूसरे धर्म के अनुयायियो की छाती मे छुरा भी घुसेड़ देते है।

धर्म के नाम पर यह दुष्कृत्य आज ही होते हो सो बात नही है। यूरोप के इतिहास को आप पढ़ेगे तो प्राचीन समय की ऐसी अनेक घटनाएँ आप पाएँगे कि धर्मान्धता के कारण वडे से बडे विचारशील व्यक्ति के प्राण ले लिए गये! औरों की बात जाने दीजिए, ईसाई धर्म के संस्थापक स्वय ईसा मसीह के प्राण लेने वाले धर्मान्ध लोग ही थे! धर्मान्ध लोगो के क्रूर कर्मों का स्मरण आते ही साधारण आदमी के रोंगटे खडे हो जाते हैं।

मगर भारत मे, पिछले जमाने मे भी यह बात नही थी। उस समय के भारतीय धार्मिक थे, अतएव अनेक धर्मों के अनुयायी भी आपस मे मिलजुल कर रहते थे। एक दूसरे के प्रति ईर्षा नही रखते थे। इसका कारण यही हो सकता है कि जैन तीर्थङ्करों ने अनेकान्त दृष्टि का इस देश मे प्रचार किया था और इस कारण यहाँ की प्रजा परम सहिष्णु थी। जहा अनेकान्त दृष्टि नही पहुची वही धर्म के नाम पर खून हुए।

भगवान् महावीर ने कहा कि सत्य बात रख दो। मानने वाला मान लेगा, जिसे न मानना हो, उसकी मर्जी! भगवान् ने कभी यह भी नही कहा कि मैं अर्हन्त हूं और मेरे पास आओगे तो मैं तुम्हारे सब पाप काट दूँगा। वल्कि भगवान् ने स्पष्ट वतलाया कि तुम्हारे पाप तुम्हारे द्वारा ही उपार्जन किये गये हैं और तुम स्वयं ही धर्म का आचरण करके उन्हें नष्ट कर सकते हो!

गाँधीजी जब इग्लैड मे थे तो ईसाई पादरी उन्हें ईसाई धर्म की विशेषताएँ बतला कर ईसाई बनाने का प्रयत्न करने लगे। गाँधीजी ने बतलाया है कि एक पादरी ने क्रिश्चियन धर्म की एक बड़ी विशेषता यह बतलाई कि प्रभु मसीह अपने भक्तो के तमाम पापो को अपने सिर पर ले लेते हैं। परन्तु गाँधीजी को यह बात नही जँची और जँच भी कैसे सकती थी ? गाँधीजी ने कहा—अगर मैं पाप करता हूँ तो उसका फल भोगने के लिए भी मुझे तैयार होना चाहिए। अपने पापों का फल दूसरे के मत्थे मढ देना अनीति है, कायरता है।

भगवान् महावीर स्वामी जीव को ही कर्मों का कर्त्ता और हर्त्ता एव भोक्ता मानते थे और उन्होने अपना यह सिद्धान्त स्पष्ट रूप से प्रकट किया था।

पापो से छुटकारा पाने के लिए प्रभु ने साधु और गृहस्थ के धर्म का विस्तारपूर्वक निरूपण किया है। धर्म तो दोनो का एक ही है, परन्तु उसके आचरण की सीमाएँ अलग-अलग हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह साधु के लिए धर्म है और गृहस्थ के लिए भी यही धर्म है। किन्तु साधु पूर्ण रूप से इस धर्म का पालन करते हैं और गृहस्थ सासारिक बन्धनो मे बन्धे होने के कारण आशिक रूप से गृहस्थ निरपराध त्रस जीव की संकल्प पूर्वक हिंसा करने का त्याग करता है। अर्थात् कोई आततायी उस पर या उसकी पत्नी पर या किसी अन्य आत्मीय जन पर शस्त्र से हमला करता है तो वह भी शस्त्र से मुकाबिला करेगा और ऐसे करने में अगर आततायी मारा जाय तो गृहस्थ के धर्म का विनाश नही होगा, क्योकि उसने निरपराध को नही

मारा, अपराधी को मारा है। इसके अतिरिक्त उसका लक्ष्य उसे मारना नही, बल्कि उसके हमले से बचना या बचाना होता है। मगर साधु ऐसा नही कर सकते। वे तप और त्याग की ऐसी ऊँची कक्षा पर पहुचे हुए होते है कि सापराध-निरपराध, त्रस-स्थावर आदि किसी भी जीव की मन या वचन से हिंसा नही कर सकते।

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोर, निग्गंथा वज्जयंति णं॥

भगवान ने फर्माया है कि ससार के समस्त छोटे और बड़े प्राणी जीवित रहना ही पसन्द करते हैं, कोई भी जीव मरना पसन्द नही करता, अतः प्राणी का वध करना घोर कर्म है और इसी कारण निर्ग्रन्थ साधु प्राणि-वध का सर्वथा परित्याग कर देते हैं।

भाइयो! पर प्राणी के प्राणो को अपने ही प्राणो के समान समझो। किसी के प्राण मत लूटो। जीओ और जीने दो। इस सुनहरे सिद्धान्त को यदि संसार स्वीकार कर सके तो जगत् में अपूर्व शान्ति का सचार हो जाय! फौज पुलिस, कारागार, न्यायालय और वकील की आवश्यकता ही किसी को न रह जाय।

जीवो के हित जगन्नाथ ने, निष्कटक पन्थ बताय दिया।
कर्मो के कंटक से बचे रहो, करुणानिधि ने उपदेश दिया॥

जगत् के नाथ भगवान ने जीवो की करुणा से प्रेरित

होकर निष्कटक अर्थात् अहिंसा का मार्ग बतलाया। उन्होने कहा कि दूसरो को सुख पहुँचाओगे तो स्वय सुखी होओगे। जब तुम अपने घर बना हलुआ पड़ौस मे भेजते हो तो पडौसी भी बदले मे तुम्हारे यहा भेजता है। इसी प्रकार तुम दूसरो को सुख दोगे तो स्वय भी सुख पाओगे। दु.ख पहुँचाओगे तो स्वय भी दु.ख उठाना पडेगा। इसलिए अगर कोई गाली दे देता है तो उसे भी तुम वीरतापूर्वक सहन कर लो। मनुष्य का भव बार-बार मिलने वाला नही है। भाग्य से मिल गया है तो भविष्य को सफल कर लो।

इस जन्म मे जो कुछ भी तू कर पायगा।
बदला इसका आकबत में पायगा ॥

अच्छे कामो का प्रथम तो यही फल मिल जाता है, जैसे-सत्य भाषण की प्रतिज्ञा कर लोगे तो प्रशसा करगे, कदाचित यहा फल न मिल पाया तो अगले जन्म मे तो मिलेगा ही। इसलिए शुभ कार्य करो, भलाई करो। इसी मे जीवन की सार्थकता है और इसी मे आत्मा का स्थायी कल्याण है। भगवान महावीर ने तेरहवे सयोग केवली गुणस्थान मे पहुँच कर जो उपदेश दिया है, वही सत्य है, वह तथ्य है, वही कल्याणकारी है। श्रद्धापूर्वक उसका अनुसरण करोगे तो आनन्द ही आनन्द होगा।

दीपावली, १६४८]

वीर निर्वाण

(२)

स्तुति :

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयम्,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः
पीत्वा पयः शशिकर द्यु तिदुग्धसिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ? ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

हे प्रभो ! आप अनिमेष विलोकनीय हैं। अर्थात् जब आपके भव्य, वीतराग, प्रसादमय, सौम्य और अनुपम सुन्दर मुख पर

किसी की दृष्टि पड जाती है तो उसके नेत्र पलक मारना भी नही चाहते। पलक मारते समय देखने मे व्याघात उपस्थित हो जाता है। यद्यपि वह व्याघात अत्यन्त अल्पकालीन होता है, फिर भी दर्शक को उतना-सा व्याघात भी सह्य नही होता। दर्शक की एक मात्र यही अभिलाषा रहती है कि मेरे पलक न गिरे और टकटकी लगाये प्रभु के मुख-चन्द्र के अमृत का पान निरन्तर करता ही रहूँ।

विद्वानो का कथन है कि मनुष्य के चेहरे से ही उसके शील-स्वभाव का अनुमान लगाया जा सकता है। उसका आचार और विचार कैसा है, यह वात उसका चेहरा ही प्रकट कर देता है। मनुष्य का चेहरा उसके आन्तरिक जीवन का विवरण देने वाली पुस्तिका है। किसी भी पुस्तक को वही पढ सकता है जो उस पुस्तक की लिपि का जानकार हो। लिपि को जाने बिना पुस्तक की भाषा नही समझ मे आती। चेहरे की पुस्तक के सम्बन्ध मे भी यही वात है। जिसे चेहरे की लिपि पढना आता है, वही उस पर लिखे हुए विवरण को पढ सकता है।

इसका आशय यह है कि मनुष्य के अन्त.करण मे जैसी भावनाएँ होती हैं, उन्ही के चित्र चेहरे पर अकित हो जाते हैं। इस खयाल को सामने रख कर अगर हम भगवान् तीर्थंकर के चेहरे की कल्पना करें तो प्रतीत होगा कि उनके समान सुन्दर, सौम्य और मनोहर अन्य कोई हो ही नही सकता क्योकि उनके सरीखे लोकोत्तर गुण किसी अन्य पुरुष मे होना असम्भव है। यही कारण है कि भगवान् के मुख पर दृष्टि पडते ही वह वही उलझ जाती है और वहा से अन्यत्र जाना नही चाहती। भगवान्

का विमल सौन्दर्य असाधारण होता है। ससार का कोई भी सुन्दरतम समझा जाने वाला पुरुष भी उनके सौन्दर्य के समक्ष ऐसा फीका दिखाई देगा, जैसे सूर्य के प्रकाश में टिमटिमाता दीपक फीका-निस्तेज नज़र आता है।

इसी अभिप्राय से आचार्य महाराज आगे कहते हैं,—

नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षु ।

एक बार जिसने अपार करुणा के सागर, निर्मल अनन्त गुणो के धारक, परम शान्त दान्त, वीतराग भगवान् के सौम्य मुखमण्डल के दर्शन कर लिये, उसके नेत्र फिर कही भी सन्तोष नही पा सकते। जो एक बार चन्द्रमा की किरणो के समान निर्मल धवल क्षीर सागर के जल का पान कर चुका हो, उसे लवण समुद्र का पानी क्या रुचिकर होगा ? नही।

भगवान् वीतराग के अनन्त आन्तरिक सौन्दर्य का उनके मुखमण्डल पर जो अनिर्वचनीय चित्र बन जाता है, उसमे अनोखा आकर्षण होता है। गजब का जादू होता है। वह सौन्दर्य अप्रतिम है, कल्पना से अतीत है, जिसने उसे देखा वही मुग्ध हो गया, चकित रह गया ! वह सदा के लिए प्रभु का दास बन गया। फिर अन्यत्र उसे सन्तोष नही होता। जिनमे ऐसा देवदुर्लभ सौन्दर्य है, उन्ही ऋषभदेव भगवान् को हमारा वार-वार नमस्कार हो !

भगवान् ऋषभदेव से ही इस अवसर्पिणी काल मे धर्म का उदय हुआ है। उनके पश्चात् तेईस तीर्थंकर और हुए, जिनमे

अन्तिम भगवान् महावीर थे। कल भगवान् महावीर के अन्तिम वर्षावास के विषय मे कहा गया था। पावापुरी के राजा हस्तिपाल की हस्तिशाला मे भगवान् विराजमान हुए थे। क्रमशः आसौज का महीना भी समाप्त हुआ और कार्तिक मास भी आधा बीत गया। अमावस्या का दिन आ गया। बस, यही भगवान् का निर्वाण का समय था।

उस समय तक ग्यारह गणधरो मे से नौ गणधर मोक्ष मे जा चुके थे, सिर्फ गौतम स्वामी और सुधर्मा स्वामी विद्यमान थे। अन्तिम समय मे भगवान् ने छत्तीस शिक्षाएँ दी।

(१) पहली शिक्षा—आत्मा का कल्याण चाहने वाले को सर्वप्रथम विनीत होना चाहिए। गुरु पर पूर्ण श्रद्धाभाव रख कर उनके आदेश के अनुसार ही वर्ताव करना चाहिए। देव का, गुरु का और धर्म का विनय करने से आत्मा शीघ्र ऊँचा उठ जाता है। विनय धर्म सब से पहला और सब से बडा धर्म है। यह सब धर्मों का मूल है। विनय के होने पर ही अन्य धर्म टिकते हैं। जैसे जड उखड जाने पर सम्पूर्ण वृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी प्रकार विनय के अभाव मे कोई भी धर्म नही टिक सकता। विनय-धर्म की प्राप्ति के लिए अभिमान का त्याग करना आवश्यक है। जहा तक अभिमान है, आत्मा मे अमावस्या ही रहती है। अभिमान के मिटते ही पूर्णिमा होने मे देरी नही लगती। देखो, बाहुबलीजी ने अभिमान का त्याग किया कि उसी समय पूर्णिमा हो गई।

(२) दूसरी शिक्षा—विनय धर्म या इतर धर्म का पालन

करने मे अगर कोई कष्ट आ पड़े तो उससे आकुल-व्याकुल नही होना चाहिए, घबराना नहीं चाहिए। समय आ सकता है और कई बार आता ही है कि आहार न मिले और भूख की वेदना हो रही हो, प्यास से गला सूख रहा हो, फिर भी संयमी पुरुष को दीनता नही धारण करनी चाहिए। वीरता पूर्वक सब आये हुए कष्टो का सामना करना आत्मोन्नति का मूल मत्र है। सर्दी और गर्मी की पीडा, डांस-मच्छरों के काटने का त्रास, अपमान, आदि का प्रसग आ जाय तो समभाव से सहन करना। साधुओ को बाईस प्रकार के कष्ट-परीषह हो सकते हैं और उनमे जो अविचल रहता है, वही ऊँचा उठता है। कष्टो से घबरा जाने वाला अपने धर्म से च्युत हो जाता है। अतएव सब प्रकार के कष्टो को सहन करने के लिए उद्यत रहना आवश्यक है। कष्टो से ऊब कर अपने धर्म-मार्ग का कभी परित्याग न करना। ऐसा करने से कष्टों पर विजय प्राप्त हो जायगी। आत्मा की शक्ति बढेगी। ऐसे अवसर पर मन मे भी लहर न उठने देना कि अजी, क्या धरा है इस धर्म मे! क्यो व्यर्थ कष्ट सहन करूँ इस तरह की लहर उठ खड़ी हुई तो उसी लहर मे बह जाओगे और कही ठिकाना नही लगेगा।

भाइयों! कई लोग ऐसे हैं जो प्रतिकूल परिस्थिति उपस्थित होने पर कहने लगते हैं-हमारी तो धर्म से आस्था उतर गई! किन्तु अरे पगले! उतर गई तो क्या कभी आस्था चढी भी थी! धर्म के लिहाज से तू तो कभी का दीवालिया है! आस्था चढ़ी होती तो तेरी भावना ऐसी मलीन नही होती! जिसकी श्रद्धा धर्म पर गाढी है, वह किसी भी परिस्थिति मे विचलित नही होता।

प्रत्येक स्थिति मे स्थिर रहता है और सब प्रकार के कष्टो को सम-भाव के साथ सहन कर लेता है।

इस सम्बन्ध मे एक बात ध्यान रखने की है। हृदय दुर्बल होता है तो साधारण-सा कष्ट भी बहुत बडा सा, जान पड़ता है और वह असह्य लगता है। मगर सबल हृदय होने पर बड़े से बड़ा कष्ट भी तुच्छ प्रतीत होता है और बलवती भावना के द्वारा अनायास ही उस पर विजय प्राप्त हो सकती है। इस प्रकार किसी भी कष्ट को बडा रूप दे देना अथवा छोटा-सा रूप दे देना आपके अधिकार की बात है। आपकी अनुभूति ही कष्ट को सह्य और असह्य बनाती है।

(३) तीसरी शिक्षा —ससार मे परिभ्रमण करने वाले जीव को चार बातो का मिलना कठिन है। प्रथम मनुष्य भव, दूसरी वीतरागवाणी का श्रवण, तीसरी वीतराग की वाणी पर श्रद्धा और चौथी उस श्रद्धा के अनुकूल प्रवृत्ति।

ससार मे अगणित प्रकार के जीव-जन्तु हैं। उन सब मे जीव भटकता रहता है। किसी भी योनि मे उसके उद्धार का मार्ग नही मिलता। मनुष्ययोनि के सिवाय सभी योनियाँ केवल कर्म का फल भोगने और नवीन कर्मों का बन्ध करने मे ही समाप्त हो जाती हैं। आत्मकल्याण की प्राप्ति के लिए समुचित विवेक उनमे नही होता। अतीव उत्कृष्ट पुण्य का उदय होता है तब मनुष्य जन्म मिलता है। यह जन्म देवो को भी दुर्लभ है। विवेकवान् देवता भी मनुष्य के रूप मे जीवन पाने के लिए तरसते हैं। जिन्हे भाग्यवशात् मानव जीवन की प्राप्ति हुई है वे पुण्यशाली हैं।

मानवभव पाकर भी बहुत-से लोग निन्दा-विकथा और निष्प्रयोजन बातें सुनने में अपना अनमोल समय नष्ट कर देते हैं, धर्म शास्त्र को सुनने की सद्बुद्धि जागृत होना कठिन है।

कदाचित वीतराग की वाणी का श्रवण भी कर लिया तो उस पर अकम्प श्रद्धा हो जाना और भी कठिन है। प्रबलतर पुण्य का उदय होने से श्रद्धा भी हो जाय तो उस श्रद्धा के अनुसार व्यवहार होना अत्यन्त कठिन है।

भाइयो ! जरा आप अपने पुण्य का विचार करो। आपको मनुष्य जीवन मिल गया है और वीतराग भगवान् के उपदेशों को सुनने का सुअवसर भी प्राप्त हो गया है। आपने आधा किला जीत लिया है अब उस वाणी पर परिपूर्ण श्रद्धा स्थापित करो और उसी के अनुसार आचरण करो। ऐसे करने से ही आपका यह भव धारण करना सार्थक होगा। मत भूल जाना इस शरीर को त्याग कर तुम्हे जाना पडेगा, इसी दुनिया मे हमेशा रहना नही होगा। अवसर का सदुपयोग कर लोगे तो बुद्धिमान् कहलाओगे।

(४) चौथी शिक्षा—प्रभु ने चौथी शिक्षा यह दी कि आयु की रस्सी जब टूटती है तो फिर नही जुड सकती। इस डोरी को साधने वाला ससार मे कोई नही उत्पन्न हुआ। सूत कातने वाली टूटे हुए सूत को उसी समय जोड लेती है, मगर टूटे हुए आयुष्य को आज तक किसी ने जोड़ा नही और कोई जोड़ेगा भी नही। कोई अपनी आयु किसी को देने के लिए तैयार हो जाय तो भी मरने वाले को नही रोका जा सकता। एक मिनिट

और एक पल भर भी कोई किसी को, आयु समाप्त हो जाने पर, जीवित नही रख सकता।

(५) पाँचवी शिक्षा--भगवान् ने फर्माया कि जो जनमा है, उसकी मृत्यु अनिवार्य है। जन्म ही मृत्यु का प्रमाण पत्र है। जन्म के साथ ही साथ मृत्यु का भी जन्म हो जाता है। जो फूल लगा है, वह टूटेगा ही। किन्तु मृत्यु दो प्रकार की है—बालमरण और पण्डितमरण। अज्ञानी का मरना बालमरण कहलाता है और ज्ञानी का शरीर त्यागना पण्डितमरण कहलाता है। अज्ञानी मरेगा तो अठारह पापो का सेवन करके मरेगा और हाय-हाय करता हुआ, तड़फता हुआ, रोता हुआ और छाती पीटता हुआ मरेगा। उसकी मृत्यु असमाधि-पूर्वक होगी। वह चौरासी के चक्कर मे घूमता फिरेगा। ज्ञानी पुरुष शरीर का त्याग करता है तो धैर्य के साथ, शान्ति के साथ, समाधि के साथ और विवेक के साथ करता है। शरीर छूटने से पहले ही वह उसे छोड़ देता है। शरीर पर ममता न रहना ही शरीर का त्याग करना है और ज्ञानी पुरुष ममता का त्याग करके, समता धारण करके, परमात्मा के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अतएव वह मृत्य की पीडा को जीत लेता है। कुटुम्ब-परिवार के वियोग की वेदना उसे अभिभूत नही कर सकती। वह जान लेता है कि समस्त-परपदार्थो का नाता शरीर के साथ है और जब शरीर ही मेरा नही तो उसके नातेदार मेरे कैसे हो सकते हैं? कहा भी है—

यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्धं,
तस्यास्ति कि पुत्रकलत्रमित्रै।

पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः,
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये ? ॥

शरीर के साथ भी जिसकी एकता नही है, पुत्र, पत्नी और स्वजनो के साथ उसकी एकता किस प्रकार हो सकती है ? शरीर के ऊपर की चमडी हटा दी जाय तो रोम शरीर मे किस प्रकार रह सकते हैं ? जैसे चमड़ी के हट जाने पर रोम आप हट जाते हैं, उसी प्रकार शरीर का त्याग कर देने पर अन्य पदार्थों का त्याग भी स्वतः हो जाता है।

इस प्रकार विचार करके पण्डित पुरुष समाधिपूर्वक शरीर त्याग करता है और अपने कल्याण का भव्य द्वार खोल लेता है। इन्हे क्रमश. अकाममरण और सकाममरण भी कहते है।

(६) छठी शिक्षा—भगवान् ने यह दी कि तुम इस भरोसे मत रहो कि हम अनेक भाषाओ के ज्ञाता हैं, हम विद्वान् हैं और एक शब्द के हजार अर्थ कर सकते हैं, तुम्हारी पण्डिताई परलोक मे साथ नही जायगी और मात्र इससे कल्याण नहीं होगा। आचरणहीन ज्ञान त्राण करने वाला नही है। ज्ञान होना आवश्यक है, मगर कोरे ज्ञान से कोई कार्य सिद्ध नही होता। सिद्धि प्राप्त करने के लिए तो ज्ञानपूर्वक व्यवहार करना अनिवार्य होता है।

(७) सातवीं शिक्षा—यह दी कि अगर तुम इस शरीर को खिला-पिला कर मोटा और पुष्ट कर लोगे तब भी यह साथ देने

वाला नही है। जब तुम परलोक मे जाने को तैयार होओगे तो यह शरीर यही पसर कर रह जायगा।

एक सरदार ने बकरा पाला। साफ-सुथरी जगह मे बाँध कर उसे खल और मक्का आदि अनाज खिलाये। उसकी यह आवभगत देखकर गाय का बछड़ा बोला-मा, देखो, हम लोगो को सूखा घास खिलाया जाता है और बकरे को खल और अनाज दिया जा रहा है। तुम सरदार को दूध पिलाती हो, फिर भी वह तुम्हे यह सब चीजे नही खिलाता। बकरा दूध नही देता, फिर भी कैसी मौज मार रहा है! गाय ने कहा-बेटा, चिन्ता मत कर। थोड़े दिन बाद देखना कि बकरे की क्या हालत होती है!

थोडे दिन बीते और सरदार के घर मेहमान आये। रसोइया ने पूछा-हुजूर, आज क्या भोजन बनेगा? सरदार साहब बोले लड्डू, इमरती और बकरे का गोश्त! बस, फिर क्या था? नौकर छुरा लेकर वहा पहुचा। उसे देखकर बछडा डरा और बोला-मा, यह छुरा लेकर मारने आया है! गाय ने कहा-बेटा, तुम क्यो डरते हो? जो खाएगा गटका उसी के लिए है झटका!

भाइयो! याद रखना। ज्यादा गटका खाओगे और धर्म-ध्यान नही करोगे और बकरे की तरह मलगे बनोगे तो जब एक दिन कालूरामजी मेहमान होकर आएंगे तो किसकी शरण मे जाओगे? अतएव पहले से ही सावधान रहो। भोगोपभोगो मे आसक्त मत बनो। धर्म का आराधन करो।

(८) आठवी शिक्षा—भगवान् ने फर्माया कि लोभ बुरी बलाय है। यह समग्र जीवन को दु खमय और नष्ट कर देता है।

इस बात को समझने के लिए कपिल ब्राह्मण का उदाहरण दिया है। कपिल, राजा से दो माशा सोना पाने की इच्छा से रात्रि में ही घर से चल पडा। वह गरीब था। उसने सोचा-सबसे पहले पहुंचने वाले ब्राह्मण को सोना मिलता है, अत. आज मैं ही पहले पहुंचू और सोना प्राप्त करलू। वह शहर के पास आया तो दरवाजा बन्द था। अतएव वह मोरी मे से ही भीतर घुस गया और राजमहल की ओर बढा तो सिपाहियो ने चोर समझ कर पकड लिया और जेलखाने मे डाल दिया। दिन हुआ और सोना लेने वाला ले गया। समय पर कपिल को राजा के सामने पेश किया। राजा ने कपिल को गौर से देखा तो समझ गया कि यह ब्राह्मण चोर नही मालूम होता। राजा ने ब्राह्मण से कहा—सच-सच कह दो कि तुम रात्रि मे किसलिए घूम रहे थे ?

ब्राह्मण ने अपनी दरिद्रता का हाल बतलाकर रात्रि में नगर मे घूमने का भी प्रयोजन बतला दिया। राजा को उस पर दया आ गई। उसने कहा—ब्राह्मण, तुम निर्दोष हो। जो मागना चाहो मांग लो।

ब्राह्मण सोचने लगा मागा मिलता है तो दो माशा सोना ही क्यो मागूं ? वह कितने दिन चलेगा ? भिखारी का भिखारी ही बना रहूंगा। पचास मोहरे क्यो न माग लूं ? मगर इससे भी क्या होगा ? पाच सौ माग लेने मे क्या हानि है ? मगर पांचसौ मोहरे भी तो जिन्दगी भर नही चलेगी। तो फिर राजा का सारा राज्य ही क्यो न मांग लूं ? इससे ज्यादा तो वह कुछ दे नही सकता। मुंह मागा मिलने पर क्यों कसर रक्खी जाय ?

विचार करते-करते विप्र की विचारधारा बदली । उसने सोचा—दो माशा सोना पाने के लिए निकला हूँ, मगर लालच की कही सीमा ही नही दिखलाई देती ! दो माशा सोने की अभिलाषा की तो कारागार का द्वार देखना पडा । राज्य ले लूँगा तो न जाने क्या दुर्गति होगी ! हे आत्मन् ! क्यो लालच मे फँस रहा है ? क्यो अपने लिए नरक का निर्माण कर रहा है ? जो बीती उसी से शिक्षा क्यो नही लेता ?

अच्छे सस्कार तो थे ही । विचारधारा ऊँची उठी, पवित्र हुई और पवित्रता की ओर बढती ही गई । बस, उसी समय कपिल केवलज्ञानी हो गये । आत्मा पवित्र हो गई ।

इसलिए भगवान् महावीर कहते हैं कि सन्तोष धारण करो । लोभ को हटाओ । ऐसा करने से तुम्हारी आत्मा भी पवित्र हो जायगी ।

(९) नौवी शिक्षा यह दी कि ज्ञान का उपयोग लगा कर देखो तो स्पष्ट मालूम हो जायगा कि आत्मा अकेली ही आई है और अकेली ही जाने वाली है । जितने भी बाहरी सयोग हैं, सब कर्मबध के कारण हैं और आत्मा को मलीन बना कर गिराने वाले हैं ।

एक राजा बीमार हो गया । उसके शरीर मे भयानक दाह उत्पन्न हुई । वैद्यराज ने कहा—बावना चन्दन की मालिश करो । उसके १००८ स्त्रियां थी । सभी को अपने पति से प्रेम था । सभी चन्दन घिसने लगी । चन्दन घिसते समय उनके हाथो की चूडियाँ आपस मे टकराई और आवाज होने लगी । आवाज राजा को

सहन न होने पर रानियो ने सिर्फ एक एक चूड़ी हाथ में रक्खी तब आवाज बन्द हो गई। राजा ने कहा क्या चदन घिसना बन्द कर दिया है? आवाज बिल्कुल नही आ रही है। उत्तर दिया गया—नही, काम चालू है। चूड़ी सिर्फ एक-एक ही रक्खी है, अतएव आवाज बन्द हो गई है। यह उत्तर सुन कर राजा ने सोचा—जहा एकत्व है वही शान्ति है। सयोग से ही अशान्ति उत्पन्न होती है। आत्मा शान्ति को प्राप्त करना चाहे तो एकता प्राप्त करे- ससार के समस्त सयोगों का त्याग करके अलिप्त हो जाय। इस प्रकार का विचार आते ही राजा को जातिस्मरण ज्ञान हो गया। स्वस्थ होकर उसने तपस्या की। भाइयो! जब खटपट मिट जाती है तभी कल्याण होता है।

(१०) दसवी शिक्षा—भगवान् ने बतलाया कि जिन्दगी विनश्वर है। पेड का पत्ता पहले हराभरा होता है, बाद मे पीला पड जाता है और फिर गिर जाता है। इसी प्रकार बालक जन्म लेता है तो कोपल की भांति लालिमा से युक्त होता है। यौवन वय मे आता है तो हराभरा हो जाता है। बुढ़ापे मे पहुँच कर पीला पड़ जाता है और अन्त मे झड़ जाता है मर जाता है। यह जीवन कव समाप्त हो जायगा, यह बात मनुष्य नही जानता। किसी भी क्षण मृत्यु आ सकती है। अतएव धर्म का आचरण करने मे प्रमाद नही करना चाहिए। एक भी क्षण प्रमाद मे गँवा देना उचित नही है।

(११) ग्यारहवीं शिक्षा—यह दी कि बहुश्रुत हो जाओगे, विविध शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त करोगे तो अपना और दूसरो का उपचार कर सकोगे। शास्त्र मनुष्य के नेत्र के समान हैं उसी से

हितमार्ग और अहितमार्ग की पहचान होती है। ज्ञान के बिना मनुष्य अन्धे के समान है। बहुश्रुत पुरुष इस लोक मे प्रतिष्ठा का पात्र होता है और परलोक मे सुखी होता है। अतएव अपने आन्तरिक नेत्रो को उघाडना है तो बहुश्रुत बनो।

(१२) बारहवी शिक्षा मे भगवान् ने फर्माया कि धर्म का सम्बन्ध आत्मा के साथ है, जाति-बिरादरी के साथ नही। जाति से ही कोई पवित्र और ऊँचा नही हो सकता। उन्नता पाने के लिए सदाचार की आवश्यकता होती है। क्रोध आदि कषायो का परित्याग करना पड़ता है।

एक भगी का लड़का बहुत क्रोधी और अत्यन्त कुरूप था। घर के सभी लोग उससे नाराज रहते थे। वह क्रोध मे आकर एक रोज घर से निकल पड़ा। रास्ते में उसे काला साप मिला। लोग उसे मार रहे थे और अन्त मे उन्होने उस मार ही डाला। लडका यह दृश्य देख कर आगे चला। कुछ आगे जाने पर उसे दुमुही दिखलाई दी। उसे लोग देख तो रहे थे, मगर मार नही रहे थे लड़के को अचानक विचार आया कि लोगो ने साप को क्यो मारा और इसे क्यो नही मारते हैं? उसने सोचा—साप में विष है, वह काटता और दुख देता है इसी कारण वह मारा जाता है। इसके विपरीत यह दुमुही किसी को काटती नही, दुख देती नही अतएव इसे कोई मारते नही हैं। अहा! मैं क्रोध करता हूँ और दूसरो को पीडा देता हूँ, सो साप के समान हूँ, इसी लिए मुझे कोई चाहता नही है। मैं दुमुही के समान शान्त बन जाऊँ तो मुझसे कोई नाराज नही होगा।

यों सोचता-विचारता वह आगे बढ़ा तो भगवान् महावीर उसे मिल गये। कल्याण होना होता है तो निमित्त मिल ही जाते हैं। लड़के ने भगवान् से दीक्षा ग्रहण कर ली। मासखमण की तपस्या करने लगा। देवता भी तपस्या के प्रभाव से उसके सेवक हो गये।

वह साधु एक बार भैरू जी के मन्दिर में ठहरे, जिसमे बहुत से खम्भे थे। वही ध्यान लगा कर खड़े हो गये। संयोगवश उसी समय अपनी सहेलियो के साथ राजकुमारी वहां आई और मन्दिर के विभिन्न खम्भों को विभिन्न देशो के राजकुमारो के नाम देकर खेल खेलने लगी कि जिसके हाथ जो खम्भा आ जाय, उसी के साथ उनका विवाह हो जायगा। राजकुमारी आँख मीच कर खम्भे को हाथ लगाने चली तो भाग्य से खंभा तो हाथ नहीं आया और ऋषि को पकड बैठी। आंख खोल कर देखा तो थू-थू करने लगी। उसका मुंह वैसा ही बना रह गया और बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी। जीभ बाहर लटक आई।

राजा को यह समाचार मिला तो वह भागा-भागा आया। उसने देखा कि यह सब इन ऋषिराज के अविनय का ही फल है। राजा उन ऋषि के चरणों मे गिरा और गिड-गिडा कर बोला-ऋषिराज! क्षमा कीजिए! यह अबोध कन्या है!

तपस्या के प्रभाव से ऋषि के शरीर मे देव था। देव ने उत्तर दिया-आराम तब होगा जब मेरे साथ इसका विवाह होगा। राजा ने यह मांग स्वीकर कर ली। देव शरीर से बाहर निकला और साधुजी बोले-दूर रहो, हमे राजकुमारी से क्या काम ? राजा

के आग्रह करने पर भी ऋषि ने राजकुमारी को स्वीकार नही किया। तब राजा ने अपने पुरोहित से परामर्श किया कि इस कन्या का क्या किया जाय ? यह ऋषि को दी जा चुकी है, दूसरे को कैसे दी जाय ? पुरोहित ने कहा—ऋषि द्वारा त्यागी हुई कन्या को मै स्वीकार कर सकता हूँ। मुझे कोई दोष नही लगेगा। ऐसा ही हुआ।

पुरोहित ने यज्ञ रचा। तरह-तरह के माल ब्राह्मणो के लिए बनाये गये। उन्ही ऋषि के मासखमण का पारणा था। वे भिक्षा के लिए वही पहुँचे। ऋषि को देख कर ब्राह्मणो ने नाक-भौंह सिकोडी और कहा गलीच कही के, चला जा यहाँ से! यहां तेरे लिए भोजन नही है! देवता ने देखा कि महान् तपस्वी का तिरस्कार हो रहा है। तब उसने ऋषि के शरीर मे प्रविष्ट होकर कहा—इतना बहुत-सा भोजन तैयार है, क्या साधु को थोडा-सा भी नही दोगे ? नही दोगे तो तुम्हे पुण्य कैसे प्राप्त होगा ?

ब्राह्मण बोले हम अच्छी तरह जानते हैं कि किसे दान देने से पुण्य होता है। तुम यहा से भाग जाओ।

देव—तुम कुछ भी नही जानते हो। क्रोध, मान आदि कषायो का और हिंसा, असत्य आदि पापो का सेवन करने वाले तुम लोगो को यज्ञ का भोजन करने का अधिकार नही है।

इतना सुनते ही ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये। उनके कहने से उनके शिष्यगण दौडे और महात्मा को पीटने लगे। देव ने क्रुद्ध होकर उन्हे बेहोश कर दिया उनके मुँह से खून बहने लगा और जीभ

बाहर निकल पडी। यह हाल देखकर ब्राह्मण लोग बुरी तरह घबरा उठे।

उधर महल के झरोखे में से उस राजकुमारी ने देखा कि यह तो वही ऋषि हैं, जिन्होंने मुझे स्वीकार नहीं किया था। वह तत्काल वहा आई और कहने लगी-ब्राह्मणो ! भला चाहते हो तो ऋषि के चरणो मे गिरो। राजकुमारी का कथन सुन कर ब्राह्मणो ने ऋषि के पैरो मे गिर कर कहा - महात्मन् ! ये कुमार आपके अपराधी है। महात्मा चाहे जिस जाति का हो, पूजनीय है। आप परम दयालु हैं। इन बच्चों का दु.ख दूर करो। भोजन तैयार है। आप इच्छानुसार जितना चाहे, ग्रहण कीजिए। आपके लेने से यह भोजन पवित्र हो जायगा। भोजन लिया। आकाश मे देवो ने दु दुभी बजाई और पुष्पवर्षा की। सब कुमार स्वस्थ हो गये। ब्राह्मणो ने फिर मुनि से क्षमाप्रार्थना की। मुनि ने कहा-साधु तो कीडी को भी कष्ट नही पहुँचाते। यह सब मेरी वैयावृत्य करने वाले यक्ष का काम था।

इतना कह कर साधु चल दिये और उसी जन्म मे केवलज्ञान पाकर मुक्ति के स्वामी बने। तात्पर्य यह है कि किसी भी जाति मे जन्म ले लेने के कारण ही कोई ऊँचा नही बन जाता बल्कि कर्त्तव्य ऊँचा करने से ही उच्चता प्राप्त होती है।

(१३) तेरहवी शिक्षा—मे चित्त और सभूति का उदाहरण देकर बतलाया कि तुम दान, शील, तप और भावना आदि के रूप मे कोई धर्मक्रिया करो, उनके फल की वाछा मत करो। सकाम क्रिया करने से क्रिया के फल मे विपरीतता और न्यूनता

आ जाती है और निष्काम भाव से क्रिया करने पर पूर्ण फल की प्राप्ति होती है। देखो, सकाम धर्माचरण करने से ब्रह्मदत्त चक्रवर्त्ती को सातवें नरक मे जाना पडा, जब कि चित्त मुनि को मोक्ष की प्राप्ति हुई। यह दोनो पिछले पाच भवो मे भाई-भाई थे, मगर क्रिया के फल की कामना करने के कारण एक को नरक मे जाना पडा, दूसरा अकाम क्रिया करने से मुक्त हो गया।

(१४) चौदहवी शिक्षा– यह दी कि सत्य बात कहने मे झिझक नही होनी चाहिए और साधु-सन्तो के दर्शन एव समागम से यह लाभ होता कि आत्मा का कल्याण हो जाता है। साधुओ का दर्शन करने से भृगु पुरोहित के दोनो लडको को ज्ञान हो गया। उन्होंने मा-बाप से साधु बनने की आज्ञा मागी। माँ-बाप ने बहुतेरा समझाया कि अभी तुम बालक हो, बडे होकर दीक्षा लेना, और तुम सुखी बनने के लिए यदि दीक्षा लेना चाहते हो तो दीक्षा लेना व्यर्थ है, क्योकि अपने यहाँ सभी सुख है। किसी बात की कमी नही है। मगर अनेक प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् भृगु पुरोहित स्वय भी दीक्षा लेने को तैयार हो गया। उसकी पत्नी भी तैयार हो गई। पुरोहित का लावारिश धन लेने के लिए राजा की गाडियाँ आ पहुची और माल ले जाने लगी! यह बात रानी को मालूम हुई। रानी ने राजा से कहा कि पुरोहित को दान-पुण्य मे दिया हुआ धन वापिस लेना योग्य नही है। यह तो थूके को चाटने के समान है! आखिर तो सभी को एक दिन मरना है, फिर धन के लिए यह अनीति क्यो की जानी चाहिए ? राजा ने कहा—पहले तुम साध्वी बन जाओ फिर मुझे उपदेश देना। सचमुच रानी ने साध्वी बनने का उसी समय निश्चय किया

और राजा भी साधु बनने को तैयार हो गया। आखिर उक्त छह जीवो ने एक साथ सयम धारण किया।

(१५) पन्द्रहवी शिक्षा—में भगवान् ने भिक्षु अर्थात् सच्चे साधु के लक्षण बतलाये है। जो देश-देशान्तर में विचरता रहे, कष्ट आने पर समभाव से सह ले, सत्कार सन्मान की इच्छा न करे, मत्र तंत्र का प्रयोग न करे, इहलोक और परलोक सम्बन्धी आकाक्षा न करे इत्यादि अनेक गुणो से युक्त हो वही सच्चा साधु कहलाता है।

(१६) सोलहवी शिक्षा—भगवान् ने ब्रह्मचर्य के विषय मे दी। बतलाया कि ब्रह्मचर्य व्रत का सम्यक् रूप से पालन करने के लिए उसकी नौ वाडो का पालन करना आवश्यक है। यदि वाडों का पालन नही किया जायगा तो ब्रह्मचर्य का पालना कठिन हो जायगा।

(१७) सतरहवी शिक्षा—देते हुए प्रभु ने फर्माया है कि-उस साधु को पापी साधु समझना चाहिए जो खा-पीकर सुख से सो जाता है. आचार्य आदि के प्रति विनय नही रखता, चलते समय, बीज, हरित काय आदि को रक्षा का ध्यान नही रखता, शय्या--सथारे का प्रमार्जन नही करता, जल्दी-जल्दी चलता है, मायाचार करता है कलह करता है, वार-वार दूध, दही आदि का सेवन करता है, सूर्यास्त के समय भोजन करता है, आदि-आदि।

(१८) अठारहवी शिक्षा–देते हुए भगवान् ने फर्माया कि सत-समागम से जीवन सफल हो जाता है। राजा संयति वन में

शिकार खेलने गया। एक हिरण को उसने तीर मारा। हिरन भाग कर एक महात्मा के पास जा पहुँचा और वही ढेर हो गया। राजा वहां गया तो पास मे ध्यान लगाये महात्मा विराजमान थे। राजा ने सोचा-यह हिरन इन्ही का पाला हुआ मालूम होता है। राजा ने क्षमा मागी। महात्मा ने राजा से पूछा-इतना क्यो घबराते हो? राजा ने कहा—महात्मन्! आपके तपोबल से मैं डर रहा हूँ। महात्मा बोले-अच्छा, मैं तुम्हे अभयदान देता हूँ, पर तुम भी तो वन के जानवरो को अभयदान दो! प्रजापालक होकर जीव हिंसा करना शोभा नही देता! इस प्रकार का महात्मा का उपदेश सुनकर राजा को प्रतिबोध हो गया। वह तपस्या करके मोक्ष मे गया।

(१६) उन्नीसवी शिक्षा--यह दी कि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जंगल के हिरन की तरह निरालम्बी बन जाओ। हिरन बीमार पडता है तो किसी वैद्य की शरण नही लेता, किसी से सेवा-शुश्रूषा नही लेता और जब अच्छा होता है तो स्वय चारा खाता है। इसी प्रकार तुम भी अपने आपको निरालम्बी बनाओ। मृगापुत्र को वैराग्य हुआ तो उन्होने ऐसी ही साधना की और अपना कल्याण किया।

(२०) बीसवी शिक्षा-मे भगवान् महावीर स्वामी ने बतलाया कि मनुष्य सेना, परिवार, धनसम्पत्ति आदि का साथ होने पर वास्तव मे तब तक अनाथ ही है, जब तक कि वह अपनी आत्मा का नाथ नही बन जाता।

श्रेणिक राजा ने एक मुनि को देख कर पूछा-आप साधु क्यो बन गये?

साधु बोले-मैं अनाथ था, इस कारण।

श्रेणिक-अच्छा, मैं आपका नाथ बनता हू। चलिए मेरे साथ, और आनन्द कीजिए। किसी चीज की कमी न रहेगी।

साधु-राजन्! तुम स्वयं अनाथ हो, मेरे नाथ कैसे बनोगे?

श्रेणिक-मैं मगध के विशाल साम्राज्य का स्वामी हूं। आप क्या कहते हैं?

साधु-राजन्! यह साम्राज्य तेरे क्या काम आएगा? मेरे पिता के ५७ इभ्य का धन था। मैं बीमार हो गया। सब दुःखी हो गये। सब स्वजनो ने जी जान से मुझे नीरोग करने का प्रयत्न किया, मगर सफल न हुए। यह मेरी अनाथता थी। सब ने भिन्न-भिन्न प्रकार की मनौतियां की। मैंने यह संकल्प किया कि आरोग्य होने पर दीक्षा ले लूंगा। सयोग से यह संकल्प करने के बाद रात्रि मे ही मेरी बीमारी दूर हो गई और मैं स्वस्थ हो गया। दूसरे ही दिन मैं साधु बन गया। इस प्रकार मैंने समझ लिया कि ससार का कोई भी पदार्थ हमे सनाथ नही बना सकता!

मुनि की यह जीवन कथा सुनने से राजा को बोध हो गया। उसने सम्यक्त्व धारण किया और उसी दिन से वह धर्म प्रेमी बन गया।

(२१) इक्कीसवी शिक्षा-भगवान् की यह थी कि जब तुम्हारे किये कर्मो का उदय आएगा तो उनके फल से बचाने में कोई समर्थ नही होगा। जब चोर को शूली पर चढ़ाया जाता है तो उसे कौन बचा सकता है?

(२२) बाईसवी शिक्षा-मे यह बतलाया कि ससार में भोग बड़ा है या योग बडा है? त्याग से कल्याण हो सकता है या भोग भोगने से कल्याण हो सकता है? भगवान् अरिष्टनेमि ने जीवो की दया से प्रेरित होकर, उनके प्राणो की रक्षा के लिए विवाह करने का त्याग कर दिया, भोग को ठुकरा दिया। दूसरी ओर त्यागी बने हुए उन्ही के भाई रथनेमि का चित्त भोगों की ओर चलायमान हो गया। आखिर राजीमतीजी ने खासी फटकार बतला कर उन्हें फिर धर्म और सयम मे स्थिर किया।

(२३) तेईसवी शिक्षा-का आशय यह था कि योग्य जिज्ञासु के साथ धर्म चर्चा करने से लाभ होता है अयोग्य के साथ चर्चा होने से कुछ भी लाभ नही होता।

(२४) चौवीसवी शिक्षा-मे पाँच समितियो और तीन गुप्तियो को धारण करने से आत्मा का कल्याण होता है, यह बतलाया। मन, वचन और काय के व्यापार का जितना निरोध हो सकता हो, करना चाहिए। निरोध न हो सके तो यतना के साथ, सावधान होकर ही, प्रवृत्ति करनी चाहिए, जिससे प्राणियो को कष्ट न पहुँचे और पाप कर्म का बन्ध न हो।

(२५) पच्चीसवी शिक्षा—मे भगवान् ने बतलाया है कि बाह्य क्रियाकाड मात्र से कल्याण नही हो सकता। तिलक लगा लेने से या जटा बढा लेने से आत्मा शुद्ध नही होता। ब्रह्मनिष्ठ (आत्म परायण) बनने के लिए पापो से बचना आवश्यक है।

(२६) छब्बीसवी शिक्षा—यह थी कि साधु की जो समाचारी है, उसके आचार की जो मर्यादाएँ हैं, उन्ही के अनु-

सार व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से ही शीघ्र कल्याण हो सकता है।'

(२७) सत्ताईसवी शिक्षा मे फर्माया कि विनीत को ही शिक्षा देना योग्य है। अविनीत को शिक्षा देना निरर्थक ही नही, हानिकारक भी होता है।

एक महात्मा के पाच सौ शिष्य थे और वे सब अविनीत थे। गुरु महाराज ने उनका संसर्ग त्याग दिया और अकेले ही आत्मोद्धार करने चल दिये। श्रावको ने शिष्यों से पूछा—गुरुजी कहा है ? तब किसी ने कहा—पता नही। किसी ने कुछ उत्तर दिया, किसी ने कुछ और ही कहा। उनका रङ्ग-ढङ्ग देख कर श्रावक समझ गये। उन्होने कहा—तुम सब योग्य नही हो, इसी कारण गुरुजी तुम्हे छोड कर चले गये हैं। अविनय करके तुम कभी मुक्ति नही पा सकोगे श्रावको का यह कथन सुनकर सभी शिष्य भयभीत हुए। गुरु के पास पहुँचे। क्षमायाचना की। विनीत होकर गुरु की आज्ञा का आराधन किया और अपना कल्याण किया!

(२८) अट्ठाईसवी शिक्षा—यह दी कि मोक्ष मे जाने का मार्ग तो एक ही है परन्तु उसके चार रूप हैं। चार चीजें एक साथ मिल कर ही मोक्ष का कारण होती हैं। चार बाते हैं—सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इनको ही धारण करने से आत्मा का उद्धार हो सकता है।

(२९) उनतीसवी शिक्षा—मे भगवान् ने पचहत्तर बातें

बतलाई और कहा कि इनका आचरण करने से आत्मा को अजर-अमर पद प्राप्त होता है।

(३०) तीसवी शिक्षा—मे तपस्या का वर्णन किया। फर्माया ससारी जीव ने पहले ही बहुत से कर्म अपनी आत्मा पर लाद रक्खे हैं। अब नये कर्मों का उपार्जन मत करो। पहले बाधे हुए कर्मों का तपस्या के द्वारा क्षय किया जा सकता है। वह तपस्या बारह प्रकार की है।

(३१) इकतीसवी शिक्षा—मे चरण विधि बतलाई। भगवान् ने स्पष्ट रूप से दिग्दर्शन कराया कि शिष्य को सयम में रहना चाहिए। असयम मे मत जाओ और असयम से बचने के लिए राग-द्वेष को छोडो।

(३२) बत्तीसवी शिक्षा—मे फर्माया कि साधु को अपनी आत्मा वश मे रखनी चाहिए। क्रय-विक्रय करना साधु के लिए योग्य नही है। किसी भी प्रकार का आरम्भ-समारम्भ साधु न करे, न करावे और न करते को भला जाने। इन्द्रियो को वश मे रक्खे।

(३३) तेतीसवी शिक्षा-में बतलाया कि कर्म किस प्रकार आत्मा की शक्तियो को विकृत और विनष्ट करते हैं? कितने समय तक कौन सा कर्म आत्मा के साथ चिपटा रहता है? इन कर्मों के फल को जानकर बुद्धिमान् मनुष्य इनका क्षय करे।

(३४) चौतीसवी शिक्षा-मे महावीर प्रभु ने बतलाया कि तुम्हारे मन, वचन और काय जब कषायो मे रँग कर काम करते

हैं तो उससे कर्म का वन्ध होता है। अतएव कर्मवन्ध से वचने के लिए लेश्याओं का परित्याग करना चाहिए। छह लेश्याओं मे तीन अधर्म लेश्याओं का तो अवश्य ही त्याग करना चाहिए। इसके लिए पवित्र आचार, पवित्र विचार और पवित्र उच्चार की आवश्यकता है।

(३५) पैंतीसवी शिक्षा- यह थी कि साधु को अपने मन को वश में रखना चाहिए। भोजन न पकाना चाहिए, न दूसरे से कह कर पकवाना चाहिए। अग्नि आदि के प्रयोग से बचना आवश्यक है। रस की लोलुपता लेश मात्र भी नही रखनी चाहिए। सत्कार की इच्छा नही रखनी चाहिए। शुक्लध्यान करना चाहिए। निर्मम, निरहकार, समभावी होकर साधना करनी चाहिए।

(३६) छत्तीसवी शिक्षा—जीव और अजीव के विषय में थी। जीव और अजीव का भेद समझ लेना साधना का पहला कदम है। यह समझे बिना साधना ठीक नही हो सकती। क्योकि बहुत से लोग जीव को अजीव समझ कर उसके आरम्भ से नही बचते हैं। जो जीव का स्वरूप समझ कर छह काया की रक्षा करेगा उसका जल्दी कल्याण होगा।

इस प्रकार शिक्षाएँ देकर भगवान् ने गौतम स्वामी से कहा- तुम देवश्रमण को प्रतिवोध देने के लिए जाओ। उधर गौतम स्वामी प्रतिवोध देने गये थे, इधर भगवान् को निर्वाण पद की प्राप्ति हुई।

उत्तराध्ययनजी की शिक्षा, करते करते निर्वाण गये ।
वे जिन–मत के प्रधान गये, वे जग समस्त के मान गये ॥

भगवान् महावीर स्वामी की तेरहवी श्रेणी की स्थिति पूर्ण हुई और चौदहवी श्रेणी मे पहुँचे । मन का निरोध किया और अ, इ, उ, ऋ, लृ इन पाच अक्षरो के उच्चारण मे जितनी देर लगती है, उतनी देर वहा रह कर सिद्ध पदवी को प्राप्त हुए ।

एक आलौकिक ज्योति अस्त हो गई । मानवजाति का सर्वश्रेष्ठ सुधारक चला गया । तपस्या का जाज्वल्यमान प्रतीक उठ गया । ज्ञान का सूर्य अस्तगत हो गया । भूतल पर अधकार छा गया । धार्मिक जनता के हृदय मे भी विषाद का घोर तिमिर व्याप्त गया । उस समय वहां उपस्थित राजाओ ने विचार किया कि जगत् मे अन्धकार हो गया है, अत. उन्होने दीपमालिका की । उधर से भगवान् गौतमस्वामी भी लौट आये ।

जिन भगवान् की याद मे, कोणिक आदि नरेश,
वाणी सुनने के लिए, आये थे तज देश ।
पावन थी पावापुरी परम, और परम मनोहर वह दिन था ।
नृप हस्तिपाल की नगरी मे, आना जाना सब छिन २ था ॥

गौतम स्वामी जब पधारे और उन्हे भगवान् के निर्वाण का समाचार मिला तो कहने लगे–भगवन् ! आपने मुझे उधर भेज दिया और इधर आप चल दिये ? मैं आपका प्रधान शिष्य था, सब से बडा शिष्य था । क्या मैं आपका पल्ला पकड़ता था ? अन्तिम समय मे आपके दर्शन कर लेता तो क्या हानि थी ?

म्हारा महावीर प्रभु के दर्शन की म्हारे मन में रह गई रे ॥टेर॥

देवश्रमण को प्रतिबोधवा आज्ञा दीनी रे,
पीछे से गये आप मोक्ष यह कैसे कीनी रे।

अद्भुत छटा आपकी सुमरि उठे हृदय में लहर,
कहाँ गई वह मोहनी मूरति लाऊँ कहाँ से हेर ॥
गोयम गोयम कौन कहेगा, कौन लड़ावे लाड़ ?
किसको गुरु कहूँगा स्वामी आड़ा पड़ गया पहाड़ ?॥

भगवान् का निर्वाण होने पर गौतम स्वामी का धर्मानुराग उद्दीप्त हो उठा। उन्हे मार्मिक व्यथा हुई। सोचने लगे-मैं कितना भाग्यहीन हूँ कि अन्तिम समय मे प्रभु के दर्शन भी नही कर सका। प्रभु ! मुझ से क्या भूल हुई थी ? मुझ पर कृपा थी तो साथ क्यो नही लेते गये ? अब मुझे 'गोयमा,गोयमा' कौन कहेगा ? मैं किसे 'स्वामी' कह कर अपनी भक्ति प्रकट करूँगा ? अब तो मानो पहाड बीच में आ पड़ा है ! कभी किसी गूढ विषय में शका उत्पन्न होने पर अब किससे पूछने जाऊँगा ?

मैं तो ऐसी नहीं जानता, छूटेगा गुरु-साथ ।
अबतो सपने की हुई माया, देखो दीनानाथ ॥
वृथा मोह करे तू जीवडा, प्रभुजी हुआ निर्वाण।
चौथमल कहे इन्द्रभूतिजी, पाया केवलज्ञान ॥

मैं नही जानता था कि गुरुदेव का साथ छूट जायगा ?

यह तो सपने की सी माया हो गई ! विचारते-विचारते गौतम स्वामी ने फिर सोचा अरे जीव, तू क्यो निरर्थक मोह करता है ! प्रभु का तो निर्वाण हुआ है। उन्होने अजर-अमर पद प्राप्त किया है ! भक्ति का परम प्रकर्ष हुआ तो विरक्ति के रूप मे वह परिणत हो गया। विरक्ति बढी। वे छठे गुणस्थान से क्रमश. ऊपर चढते-चढ़ते तेरहवे गुणस्थान मे जा पहुँचे। उसी समय केवलज्ञान प्राप्त हो गया ! गौतम स्वामी स्वयं केवली हो गये !

भाइयो ! देवो ने और राजाओ ने मिल कर भगवान् महावीर का निर्वाण महोत्सव मनाया और गौतमस्वामी के केवल-ज्ञान का भी उत्सव किया। सुधर्मा स्वामी भगवान् के पट्ट पर विराजमान किये गये।

अब उनके वचन मान करके जो जन निज शीश नमाते है,
उनके तट संकट नहि फटके, वे अक्षय सुख पा जाते हैं।
कोटा के सज्जन वृन्द सभी, अब अपने दिल के पट खोलो ॥
कहे चोथमल्ल शुभ भाव युक्त श्री महावीर की जय बोलो ॥

भाइयो ! आज दीपावली का दिवस है। भगवान् चरम-तीर्थङ्कर त्रिशलानन्दन वर्द्धमान स्वामी के निर्वाण का यह स्मृति-दिवस है। भगवान् की स्मृति किस रूप मे करनी चाहिए, यह बात समझ लेना आवश्यक है। किसी भी महापुरुष की स्मृति उसके उच्च और महान् उपदेशो का अनुसरण करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए प्रेरणा प्राप्त करने के ध्येय से ही मनाई जाती है। भगवान् महावीर की शिक्षाएँ मैं बतला चुका हूँ और वत-

लाया करता हूं। वे शिक्षाएँ आपके जीवन को पवित्र बनाने के लिए हैं। आप उनका अनुसरण करेंगे तो आपका परम कल्याण होगा।

भाइयो! सब लोग आपस के वैर-विरोध को दूर करके एक दूसरे से प्रेम करो। शान्ति और प्रेम का व्यवहार करो। सब को सुख उपजाने का उद्योग करो। कम से कम किसी को पीड़ा मत पहुँचाओ। यही दीपावली का सन्देश है। अपने हृदय को स्वच्छ, निर्मल, तेजोमय और प्रकाशमय बनाओ। अज्ञान के अन्धकार को हटाओ। प्रभु के पावन प्रवचनों को समझो। ऐसा करने से आपको आनन्द ही आनन्द प्राप्त होगा।

दीपावली
१-११-४८

निर्वाण

स्तुतिः—

यः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

भगवन् ! हे त्रिलोकी मे अद्वितीय सुन्दर देव ! आपके रूप के समान सुन्दर रूप जगत् मे दूसरा नही है, इसका कारण

यही जान पडता है कि ससार मे ऊँचे से ऊँचे परमाणु उतने ही थे, जितनो से आपके शरीर का निर्माण हुआ है ? इसीलिए आपके सौंदर्य की कोई उपमा नही मिलती । ऐसे अनुपम सौंदर्य-धाम भगवान् ऋषभदेव हैं । उन्ही को हमारा वार वार नमस्कार हो ।

भाइयो ! शारीरिक सौन्दर्य का सम्बन्ध नाम कर्म के साथ है । जिसके शुभ नाम कर्म का उदय होता है, उसी को सुन्दरता प्राप्त होती है । शुभ नामकर्म की तरममता के आधार पर अनेक श्रेणियां है और उन्ही के अनुसार जीवो की सुन्दरता मे भी अनेक श्रेणियां देखी जाती है । तीर्थङ्कर भगवान् का पुण्य सर्वोत्कृष्ट होता है, अतएव उनका सौन्दर्य भी सर्वोत्कृष्ट होता है !

तीर्थङ्कर भगवान् का शरीर १००८ शुभ लक्षणो से सम्पन्न होता है । समस्त शरीर-के अगोपाग असाधारण रूप से यथोचित और सुन्दर थे । क्या दातो की पक्ति और क्या चेहरे की आकृति, सभी मे अनूठापन था । वज्रऋषभनाराच सहनन था और सम-चतुरस्र सस्थान था । ऐसा उत्कृष्ट शरीर हो और फिर उत्कृष्ट क्रिया भी की जाय तो आत्मा को परमात्मा वनने मे क्या देर लग सकती है ?

पिछले दिनो मैं आपको गुणस्थानो का वर्णन सुना रहा था । तेरहवे गुणस्थान मे पहुंच जाने पर आत्मा को क्या स्थिति होती है, यह बतलाया जा चुका है । वहाँ पहुँच कर आत्मा पूर्ण वीतराग और पूर्ण ज्ञानी हो जाता है । तेरहवे गुणस्थान की स्थिति पूर्ण होने पर आयु कर्म के क्षय का समय सन्निकट आने पर चौदहवे गुणस्थान मे प्रवेश होता है ।

तेरहवे गुणस्थान मे योग मौजूद रहता है। योग की विद्यमानता के कारण वहा भी कर्मों का आस्रव होता है, परन्तु स्थितिबंध और अनुभागबंध नही होता। इसका कारण यह है कि यह दोनो बंध कषाय के कारण होते हैं और तेरहवे गुणस्थान मे कषाय रहता नही है। अतएव सिर्फ योगनिमित्तक प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध ही होता है। अर्थात् कर्मपरमाणु आते हैं और झडते जाते हैं; आत्मा के प्रदेशो के साथ ठहरते नही है। चौदहवें गुणस्थान मे अयोग दशा प्राप्त हो जाती है; इस कारण योग के निमित्त से होने वाला आस्रव और बंध भी रुक जाता है। वहाँ पूर्ण अबन्धक दशा प्राप्त हो जाती है। कहा है:—

मन वचन काय रुन्धन करके शैलेश अवस्था पाते है।
पंच लघु अक्षर की स्थिति जहाँ, चौदहवाँ स्थान जब पाते है॥
आस्रव बंध पैदा करता संवर तो मोक्ष का दाता है।
संवर से आस्रव कर निरुद्ध, वह जगत्पूज्य पद पाता है॥

तेरहवे गुणस्थान तक रहे हुए आस्रव को सर्वथा हटा कर चौदहवें गुणस्थान में परिपूर्ण संवर होता है। पूर्ण संवर हो जाने पर पाच ह्रस्वस्वरो के उच्चारण जितने समय की चौदहवे गुणस्थान की स्थिति पूर्ण करके आत्मा परमात्मदशा—सिद्ध अवस्था-प्राप्त कर लेती है।

शुक्ल ध्यान की आग से अघाती कर्म जल जाता है।
बंध छेदन गति धूम्रतीश्वत् सिद्धालय को पाता है॥

तेरहवे और चौदहवे गुणस्थान मे वेदनीय, नाम, गोत्र

और आयु यह चार कर्म ही शेष रह रये थे। यह भी शुक्लध्यान रूपी तीव्रतर अग्नि से जल कर भस्म हो जाते हैं। शुक्लध्यान का चौथा पाया यहां आ जाता है। पहला पाया आठवे गुणस्थान में, दूसरा पाया वारहवे गुणस्थान मे, तीसरा तेरहवे में और चौथा चौदहवे गुणस्थान में आता है। इस ध्यान के द्वारा शेष चारों कर्म भस्म हो जाते हैं।

सिद्ध होने पर आत्मा का क्या होता है, और वह कहां किस रूप मे रहती है, यह एक ज्ञातव्य वात है। इस विषय मे अनेक मतभेद हैं। किसी-किसी का कहना है कि मुक्त आत्मा आकाश मे ऊपर को चला जाता है। उसे कोई रोकने वाला नही है और वह किसी से रुक भी नही सकता, इस कारण वह अनन्त समय तक अनन्त आकाश मे चलता ही रहता है। कभी रुकता नही कही ठहरता नही। वस, चलते जाना ही उसका स्वभाव है और वह सदा ऊपर की ओर चलता ही रहेगा।

किसी-किसी के खयाल से आत्मा मुक्त होकर शून्य हो जाता है। जैसे दीपक बुझ जाता है तो वह अन्यत्र कही नही जाता, इसी प्रकार आत्मा मुक्त हो जाती है तो अन्यत्र कही नही जाती और जहा मुक्त हुई है वहा भी नही विद्यमान रहती। अर्थात् वह शान्त-समाप्त हो जाती है।

कई लोग मुक्तात्मा का नाना लोको मे पहुंच जाना मानते है। इस तरह अनेक मत-मतान्तर हैं। मगर इस सम्वन्ध मे जैन-धर्म की मान्यता यह है कि मुक्तात्मा इस लोक के अग्रभाग पर स्थित हो जाती है और सदा के लिए वही स्थित रहती है। जव

आत्मा समस्त कर्मों से मुक्त हो जाती है तो सिर्फ एक समय मे वह उस मुक्तिधाम तक पहुँच जाती है, जिसे सिद्धशिला करते हैं। आगम मे कहा है:—

तं ठाणं सासयं वासं, लोयग्गम्मि दुरारुहं।
जं संपत्ता न सोयंति, भवोहन्तकरा मुणी ॥

वह सिद्धिस्थान शाश्वत स्थान है, वह लोक के अग्रभाग मे है और सकर्मा जीव उस स्थान को मुक्त रूप मे प्राप्त नही कर सकते। भवपरम्परा का अन्त करने वाला महामुनि ही उसे पाते हैं। उस स्थान को पाकर किसी भी प्रकार का दु.ख शेष नही रह जाता।

प्रश्न किया जा सकता है कि मुक्त आत्मा को लोक के अग्रभाग तक जाने की क्या आवश्यकता है? और वहा तक उसे कौन ले जाता है?

इन प्रश्नो का अनेक ग्र थो मे विस्तार के साथ उत्तर दिया गया है। मैं सक्षेप में ही यहा प्रकाश डालूंगा। बात यह है कि प्रत्येक वस्तु का अपना-अपना स्वभाव होता है और उसी स्व-भाव के अनुसार उसका परिणमन होता है। जैसे वायु का स्व-भाव तिर्छा गमन करने का है, पुद्गल का स्वभाव नीचे गिरने का है, उसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्व गमन करने का है। हवा को तिर्छी दिशा मे चलाने वाला कौन है? भारी वस्तु को नीचे की ओर ले जाने वाला कौन है? आग की ज्वालाओ को ऊपर की ओर कौन ले जाता है? यह सब निसर्ग से ही होता है।

इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से ही ऊर्ध्वगतिशील है। जब तक तू बा मिट्टी के भारी लेप से लिप्त रहता है, पानी के तल में स्थित रहता है, परन्तु लेप हट जाने पर ऊपर उठता है और जल के अग्रभाग पर आ जाता है। इसी प्रकार कर्मलेप से मुक्त होने पर आत्मा भी ऊपर की ओर स्वभाव से ही उठता है।

चँवले या एरण्ड के फल सूख कर चटकते हैं तो बन्धन से मुक्त हुआ उसका बीज एकदम ऊपर की ओर उछलता है, इसी प्रकार कर्मों के बधन से मुक्त हुआ जीव एकदम ऊपर जाता है।

कहा जा सकता है कि अगर आत्मा का स्वभाव ऊपर जाने का ही है तो फिर चला ही क्यो नही जाता ? लोक के अग्र-भाग मे रुक क्यो जाता है ? इसका उत्तर यह है कि गमन मे निमित्त होने वाला धर्मास्तिकाय लोक के अग्रभाग तक ही है, आगे नही है। अतएव जहा तक धर्मास्तिकाय का निमित्त मिलता है, वहा तक आत्मा ऊर्ध्वगमन करता है उससे आगे नही। जैसे लोहे की पटरी जहां तक होगी वही तक इजिन गमन करेगा, उससे आगे गमन नही कर सकता। इसी प्रकार आत्मा धर्मास्ति कार्य जहा तक है, गमन करता है। आलोक मे आकाश ही आकाश है। वहा गमन करने से रोकने वाला तो कोई नही है, मगर गमन का निमित्त कारण भी नही है। इसी कारण गमन नही होता है।

आत्मा ऊपर की ओर जाता है, इस बात को बतलाने के लिए कई उदाहरण दिये जाते है। मगर यहां इतना ही कथन पर्याप्त है। सार यह है कि चौहदवे गुणस्थान से मुक्त होकर आत्मा सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेता है। उस अवस्था मे क्या है ?

नही बंध मोक्ष नही जन्म जरा, मृत्यु का लगता बाण नही।
नही राजा प्रजा स्वामी सेवक,जहाँ बस्ती औ वीरान नही ।।

भाइयो ! सिद्धि क्षेत्र सर्वार्थसिद्ध विमान की ध्वजा से बारह योजन ऊपर है और उसके दूसरे छोर से अलोकाकाश आरम्भ हो जाता है। सिद्ध अवस्था मे बंध नही, मोक्ष नही, जन्म-जरा-मरण नही। किसी भी प्रकार की उपाधि नही। कालूरामजी वहाँ झाक नही सकते। राजा और प्रजा का भेद नही है, स्वामी और सेवक का भेद नही है। न वस्ती है न उजाड है।

सयोग वियोग बोलना चलना, कर्म काया का काम नही।
नहीहर्ष शोक नही विषयभोग,गुरु शिष्य न्यूनाधिक नाम नही ।।

उस अवस्था मे सयोग भी नही है और वियोग भी नही है। भाषा का प्रयोग नही है और च ने-फिरने आदि की कोई क्रिया नही है। चलना, बोलना आदि क्रियाएँ शरीर के निमित्त से होती हैं। वहाँ शरीर ही नही है तो उसके निमित्त से होने वाली क्रियाएँ भी कैसे हो सकती हैं ? इसीलिए स्पष्ट कर दिया है कि वहाँ कर्म नही हैं और काया भी नही है। वहाँ हर्ष और विषाद भी नही है, क्यो कि हर्ष-विषाद का कारण मोह है और मोह वहाँ रहता नही है। विषय भोग भोगने का तो प्रश्न ही नही उठ सकता ! सब सिद्ध समान रूप मे स्थित हैं, गुरु और शिष्य की भावना वहा शेष नही रह जाती। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा है।

एक में अनेक अनेक में एक नही एक अनेक गिनाते है।
पैठे प्रकाश मे प्रकाश ज्यो, सिद्धो मे सिद्ध समाते हैं ।।

भाइयो ! जैसे एक प्रकाश में दूसरे अनेक प्रकाश समा जाते हैं और अनेक प्रकाशो में एक प्रकाश समा जाता है, उसी प्रकार परम ज्योति स्वरूप सिद्ध भगवान् भी एक दूसरे में सामये रहते है । कहा भी है—

एक माहि अनेक राजे, अनेक मांही एककं ।
एक अनेकन की नही संख्या, नमो सिद्ध निरंजनं ।।

वात यह है कि आत्मा अरूपी है, अतएव प्रत्येक आत्मा को अलग-अलग स्वतन्त्र जगह की आवश्यकता नही रहती । अनेक में एक और एक मे अनेक समाविष्ट होकर रहने मे कोई वाधा नही होती । यही कारण है कि जहाँ एक सिद्ध भगवान् हैं वहाँ अनन्त सिद्ध भगवान् हैं । एक की जगह अनन्त समा गये हैं और समाते ही जाएँगे ।

समुद्र थाह लेने सैन्धव जाता, फिर वापिस वह नही आता है ।
यों सिद्धों में पहुंच आत्मा. स्वयं सिद्ध बन जाता है ।।

भाइयो ! समुद्र की तह का पता लगाने के लिए नमक की एक पुतली बनाई जाय और धागे से उसका गला वांध कर समुद्र मे छोड दी जाय । बाद मे उसे खीचा जाय तो क्या वह पुतली वापिस आएगी ? नही, केवल धागा ही लोट कर आएगा, पुतली नही आएगी । इसी प्रकार जो आत्मा, परमात्मा की खवर लेने जायगा तो फिर वह लौट कर नही आएगा । वह आत्मा स्वयं परमात्मा वन कर वही विराजमान हो जायगी । आप यहा से चिट्ठीपत्री भेजना चाहें तो वह भी वहां नही पहुँच

सकती। जिसने वहां कदम रखा वह फिर कभी लौट कर नही आया।

मोक्ष जाना कहे श्रेष्ठ जगत्, पर जो मुक्ति को जाता है।
अकथनीय वह आनन्द वेद भी नेति-नेति' कह गाता है ॥

संसार के समस्त विचारशील पुरुष और सभी धर्म मोक्ष को श्रेष्ठ मानते है। शास्त्र मे कहा है—'निव्वाणसेट्ठा जह सव्व-धम्मा।' सब धर्मों ने एक स्वर से स्वीकार किया है कि निर्वाण-पद ही सर्वोत्कृष्ट पद है। ऋषि, मुनि, तपस्वी और योगी विविध प्रकार की जो साधनाएँ करते हैं, उनका ध्येय प्रायः मुक्ति प्राप्त करना ही होता है। सभी मुक्त होने की अभिलाषा करते है। परन्तु जो एक बार मुक्ति प्राप्त कर लेता है, उसका स्वरूप अकथ-नीय हो जाता है। किसी की जबान मे ताकत नही कि उस अकथ स्वरूप का कथन कर सके। श्री आचाराग सूत्र मे इस विषय मे बहुत ही सुन्दर कथन किया गया है। एक बार शायद मैं वह कथन आपको सुना चुका हूं। वास्तव मे वह स्वरूप वचन से अगोचर है, बुद्धि से पर है, अनुमान से अतीत है, उसके लिए ससार मे कोई उपमा नहीं है। वहाँ आनन्द ही आनन्द है। अनन्त और अक्षय आनन्द का अपार सागर भरा है। पर उस आनन्द को बतलाया नही जा सकता। कोई भी शब्द और कोई भी अनु-मान वहा तक नही पहुँच सकता। वेद उस अवस्था के विषय मे 'नेति नेति' कह कर थक जाते हैं।

जैसे कोई राजा घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए निकला। घोडा उल्टी लगाम का था, यानी लगाम खींचने पर

दौडता था और ढीली छोड़ने पर रुकता था। राजा को यह वात मालूम नही थी। उसने घोडे को रोकने के इरादे से ज्यों ही लगाम खीची, घोड़ा दौडने लगा। अधिक खीची तो हवा से वातें करने लगा और राजा को सुनसान वनखण्ड मे ले गया। राजा ने सोचा कि किसी वृक्ष की शाखा पकड कर लटक जाऊँगा। इस विचार से उसने जो लगाम ढीली की तो घोडा वही एकदम रुक गया। यह देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सोचने लगा-अहा, मेरे घोडे का कुछ भी कुसूर नही है। इसे रोकने की तरकीव ही मुझे मालूम नही थी।

राजा बहुत प्यासा था। पानी की खोज में इधर-उधर गया तो उसे एक भील मिल गया। राजा ने उसे अपने पास बुलाया तो भील बोला-क्या तेरे वाप का कुछ देना है मुझे? राजा ने कहा - भाई मेरी वात तो सुन लें। सुन लेगा तो क्या कोई हर्ज हो जायगा? यह कह कर राजा उसके पास गया तो भील भाग गया! भाई, जगल मे राजा का जोर चलता नही है। एक वार रतलाम का राजा मोटर मे वैठ कर जावरा जा रहा था। रास्ते मे मोटर विगड़ गई। पास मे एक किसान काम कर रहा था। उससे कहा गया—भाई, जाकर नवाव साहव को खबर दे दो। किसान ने उत्तर दिया-मेरे काम मे हर्ज होता है! जव राजा ने उसे रुपये दिये तब उसने जाकर खबर दी और तव कही दूसरी मोटर आई।

भील को भागते देख राजा ने बड़ी आजीजी की। पूछा—अरे, यह तो वता दे कि यहाँ कही पानी भी है या नही? भील ने कहा—नाक की सीध मे चले जाओ, पानी मिल जायगा। मगर

राजा के फिर दीनतापूर्वक आग्रह करने पर भील ने उसे कूप बतला दिया। पेड़ के पत्ते लाकर किसी प्रकार उसने राजा को पानी पिलाया। राजा पानी पी रहा था, तब तक तो उसकी फौज भी आ गई! फौज को देख भील घबराया और सोचने लगा हे भगवन्! यह क्या बलाय आ गई है?

राजा ने भील को अपने साथ ले जाने का विचार किया। कहा—तू हमारे साथ चल। मगर भील किसी प्रकार नगर मे चलने को तैयार नही हुआ। आखिर जबर्दस्ती उसे लाया गया। महल मे लाकर उसे स्नान कराया गया और उत्तम वस्त्र पहनाये गये। गले मे सुगन्धित फूलो की माला पहनाई गई। मगर भील का हृदय तो वन मे ही भटक रहा था। कोई भी शृ गार उसे सन्तोष नही दे सका। उत्तम भोजन, उत्तम वस्त्र और दूसरी सुख की सामग्री उसे रुचिकर नही हुई। वह उदास रहता और सोचता-हाय, मै किस मुसीबत मे आ पडा? न जाने कब इस बधन से छुटकारा होगा!

राजा भोजन करने बैठता है तो भील को भी साथ बिठलाता है। जो आप खाता है वही भील को भी खिलाता है। राजा के भोजन का क्या कहना है? बढिया से बढिया माल बनते है। भील खाने से इ कार करता है तो जबर्दस्ती खिलाया जाता है। उसे भी स्वाद आने लगता है तो खूब खा जाता है! दो सिपाही भील के हुक्म मे नियत किये गये। मगर भील यही सोचता है कि यदि यह सिपाही इधर-उधर चले जाएँ तो मैं यहा से भाग जाऊँ!

एक बार उसे मनचाहा अवसर मिल गया। सिपाही किसी

काम से इधर-उधर गये तो भील ने कपडे उतार कर अपने वही फटे कपडे पहन लिये और जगल की तरफ भाग छूटा । छह महीने वाद अपने कुटुम्बी जनो से मिला । भाई जो जहा का है उसे वहीं रहना पसन्द आता है ।

छह महीने मे भील का रंग ढंग वदल गया था । जव वह अपने कुटुंबियों से मिला तो वे उसे पहचान नही सके । वह खूब माल खाकर तगड़ा और लाल वून्द हो गया था । उन्होंने इससे पूछा – तू कौन है ? इसने अपना परिचय दिया । जव पूछा कि इतने दिन कहाँ था ? तो इसने कहा—राजा वावू पकड़ ले गये थे । वहा रोज नहाता, नये कपड़े पहनता और गोवर सरीखी चीज (वदाम का सीरा) खाता था । वह वडी मीठी और मजेदार थी । लोगो ने पूछा—कैसी मीठी ? खजूर जैसी या सीताफल जैसी ?

भील —अरे, उसके सामने यह क्या चीज है ? उसका तो स्वाद ही निराला था भाई !

तो भाई ! गुलगुले ही सव से ज्यादा मीठे होते हैं । तो क्या वह चीज गुड़ के गुलगुले जैसी थी ?

भील—नही, इससे भी ज्यादा मधुर थी ।

तव उन लोगो ने कहा तेरी वात हम नही मान सकते । गुलगुले से ज्यादा मीठी और क्या चीज हो सकती है ? हो तो वतलाओ ।

भील—भाइयों ! जगल मे वह चीज वन ही नही सकती, मैं वतलाऊँ तो कैसे—वतलाऊँ ?

भाइयों ! इस कथा पर जरा ध्यान दीजिए। भील ने बादाम का सीरा चखा है और उसके स्वाद की अनुभूति और स्मृति भी है। मगर उस स्वाद को मुख से वतला नही सकता। वह यह तो कह सकता है कि वह स्वाद खजूर-जैसा नही है, सीताफल जैसा नही है, गुलगुले जैसा नही है, मगर ऐसा है यह बात वह नहीं कह सकता। इसी बात को 'नेति, नेति' कहते हैं। मुक्ति का सुख ऐसा नही है, वैसा नही है, इस प्रकार निषेध रूप में तो बतलाया जाता है, मगर विधि रूप मे नही बतलाया जा सकता। आप विचार कीजिए कि जब बादाम के सीरे जैसी स्थूल वस्तु का स्वाद भी नही बतलाया जा सकता तो मोक्ष के सुख को कौन बतला सकता है? बादाम के सीरे का स्वाद तो अनुभव किया हुआ है, मगर मोक्ष के सुख का तो अनुभव भी कभी नही किया है, जो अनुभव करता है वह कहने नही आता और जो कहना चाहता है उसे अनुभव नही है! तब शब्दो द्वारा उसका कथन कैसे किया जाय? फिर भी शास्त्रकार उसके सम्बन्ध मे संकेत तो करते ही हैं—

> अरूविणो जीवघणा, नाणदंसणसन्निया ।
> अउलं सुहं सम्पन्ना, उवमा जस्स नत्थि उ ॥
>
> —श्री उत्तराध्ययन, ३६-६६

सिद्ध आत्मा अरूपी है, शुद्ध आत्मा के प्रदेशो का प्रचय रूप हैं, ज्ञान और दर्शनमय हैं। वे ऐसे अतुल सुख से सम्पन्न हैं कि उसकी कोई भी उपमा नही हो सकती।

भाइयो ! मोक्ष का परिपूर्ण स्वरूप दर्शाने वाला कोई शास्त्र

नही है। उनका हूबहू स्वरूप किसी भी प्रकार समझाया नही जा सकता। उसका स्वरूप समझाने के लिए हमारे पास कोई शब्द नही हैं, कोई वस्तु नही है और कोई शक्ति भी नही है। ऐसा अनिर्वचनीय और अनुभवगम्य सुख है मोक्ष का। उसे चौदहवें गुणस्थान से अतीत हुए सिद्ध भगवान् ही पाते हैं। वे उस सुख को पाते है और अनुभव भी करते हैं, मगर कह नही सकते। केवली कहना भी चाहे तो कहे कहाँ से कोई उपमा भी तो नही है! उसे कहने का कोई साधन ही नही है। अनन्त सुख किसी भी उपाय से नही कहा जा सकता।

कल्पना करो, किसी आदमी को फोडा हो गया है। फोड़ा पक रहा है और उसकी वेदना से वह आदमी क़राह रहा है। वह उस वेदना को भली भाति अनुभव कर रहा है। अब उससे कोई पूछता है—तुम अपनी वेदना को जान रहे हो या नही? वह कहेगा—हाँ, जान क्यो नही रहा हूँ! जानता नही तो भोगता क्यों, कराहता क्यो? बेचैन कैसे होता?

तब दूसरा पूछता है—अच्छा, बतलाओ तुम्हे कैसी पीड़ा हो रही है? क्या लाठी लगने पर होने वाली पीड़ा जैसी?

बीमार क़हता है--नही भाई, उससे भी ज्यादा। उसे मैं कह नही सकता। इसी समय कोई सिद्ध पुरुष आता है और उसके शरीर पर हाथ रखता है। हाथ रखते ही उसकी समस्त पीड़ा दूर हो जाती है और वह सुख का अनुभव करने लगता है।

तब फिर उससे प्रश्न किया जाता है-तुझे आराम मालूम होता है तो बताओ, कैसा आराम मालूम होता है? क्या लड्डू

और कलाकद खाने जैसा ? वह उत्तर देता है--अजी, मैं अपने आनन्द को मैं ही जानता हूँ। मैं उसे बतला नही सकता।

भाइयों! मुक्ति के आनन्द के सामने यह आनन्द तुच्छ है। इस तुच्छ आनन्द का भी जब उल्लेख नही किया जा सकता तो मोक्ष के असीम सुख का वर्णन कैसे किया जा सकता है? उस सुख का अनुभव करना है, उसे जानना है तो उसके लिए पुरुषार्थ करो। तपस्या करो। धर्म का आचरण करो। पाप से बचो। सेवा और परोपकार मे अपना जीवन लगाओ। आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को समझो और उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करो। गुणस्थानों का स्वरूप बारीकी से समझो और अपने आप पर उसे घटाओ। देखो कि हमारे भीतर कर्म की कौन-कौन सी प्रकृतियो का उदय है और उनके हिसाब से हम किस गुणस्थान में होने चाहिए। इस प्रकार अपनी आत्मा को तोलोगे तो तुम्हे अनुपम आनन्द मिलेगा और ऊँचा उठने की प्रेरणा स्वतः होने लगेगी। पुरुषार्थ न करोगे तो कुछ न होगा।

सत्य शील आचार तपस्या पुरुषार्थ पार लगावे।
अरिहंत सिद्ध लब्धिपात्र पद सो सब दुख मिट जावे॥

भाइयों! सत्य, शील, ब्रह्मचर्य, आचार और तपस्या आदि सब पुरुषार्थ के अधीन है। पुरुषार्थ के बिना कोई पार नही लग सकता। तीर्थंकर गोत्र का बन्ध पुरुषार्थ से ही होता है, सिद्ध अवस्था पुरुषार्थ से ही प्राप्त होती है, और लब्धिया भी पुरुषार्थ से ही प्राप्त होती हैं। राम ने पुरुषार्थ किया तो सीताजी को रावण के पजे से छुड़ा कर ला सके। पुरुषार्थ के बिना ससार

मे काम नही चलता। जो पुरुषार्थ नही करता वह पुरुष ही कैसा ? सच्चा पुरुष अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए अपनी समस्त शक्तियाँ अर्पित कर देता है !

भविष्यदत्त चरितः—

भविष्यदत्त सकट मे पड़ कर अगर पुरुषार्थ न करता तो उसे सफलता कैसे मिलती ? वह राजा के पास जब पहुँचा और सवा लाख के रत्नो की भेट राजा के सामने रक्खी तो सभासद चकित रह गये। उसका देवोपम दीप्तिमान चेहरा उसकी वेषभूषा सभी कुछ आकर्षक था। उसने जब राजा से न्याय करने की प्रार्थना की तो राजा ने कहा—अवश्य न्याय होगा। तुम सकोच त्याग कर अपनी बात कहो।

भविष्यदत्त ने निवेदन किया—महाराज ! आप कृपा कर सेठ धनसार को और उनके पुत्र बन्धुदत्त को अपने सामने बुलवा कर उनसे पूछिए कि बन्धुदत्त किसकी कन्या और कहां से लाया है ? साक्षी के लिए उसके साथ गये हुए पाच सौ वणिकों को भी आप चाहे तो बुलवा सकते हैं।

भविष्यदत्त का यह कथन सुनकर राजा ने उसी समय अपना आदमी भेजा और सेठ को तथा बन्धुदत्त को दरबार मे हाजिर होने का हुक्म दिया।

भाइयो ! प्राचीन काल में न्याय प्राप्त करने के लिए आज कल की सी दौड धूप और परेशानी नही करनी पड़ती थी। पहले का न्याय आज कल के समान व्ययसाध्य भी नही था। वर्षों प्रतीक्षा नही करनी पड़ती थी। उस जमाने मे वकीलों की फौज

भी नही थी जो वाल की खाल उतार कर मामले को पेचीदा बना दे और न्यायाधीश को चक्कर मे डाल कर सत्य-असत्य का पता ही न चलने दे। उस समय चटपट न्याय होता था, सस्ता न्याय होता था और दूध का दूध और पानी का पानी होता था।

राजा का हुक्म सुन कर सेठ ने कहा—महाराज से निवेदन कर देना कि मैं अभी विवाह के कार्य मे लगा हूँ। एक महीने के बाद उपस्थित होऊँगा।

राजा के कर्मचारी ने आकर यह उत्तर सुना दिया। तब भविष्यदत्त ने कहा– विवाह हो जाने पर तो भारी अनर्थ हो जायगा महाराज! अगर सेठजी अभी नही आ सकते तो कृपा करके यह आदेश ही दे दीजिए कि जब तक न्याय न हो जाय, विवाह नही होना चाहिए। विवाह के सम्बन्ध मे ही तो मैं न्याय चाहता हू। वह हो गया तो फिर क्या शेष रह जायगा?

भविष्यदत्त का कथन सुनकर राजा ने अपने एक अधिकारी को आज्ञा दी कि पुलिस का एक दल लेकर जाओ और उन्हें साथ लेकर आओ। आखिर सेठ धनसार और बन्धुदत्त आ गये। पाच सौ वणिक् भी आकर उपस्थित हो गये।

इन सब लोगो के आने से पहले ही भविष्यदत्त महाराज से आज्ञा लेकर एक कमरे मे चला गया था। उसने कहा था-- आप उन सब से सच्चा-सच्चा हाल पूछे। तब तक मैं कमरे मे रहूँगा। बाद मे ऐन मौके पर सामने आ जाऊँगा।

राजा ने बन्धुदत्त से कहा –बन्धुदत्त, एक शका का निवारण करने के लिए तुम्हे और इन सब को बुलाया गया है। तुम्हे

अपने पिता की शपथ है, सच-सच कहना। लेश मात्र भी असत्य काम नही आएगा। यह बतलाओ कि तुमने कौन-कौन से द्वीप मे जाकर व्यापार किया ? इतनी सम्पत्ति कहाँ से लाये हो ? और वह कुंवारी लडकी कौन है और तुम्हे किसने दी है ? वही विवाह न करके यहाँ कुंवारी ले आने का क्या कारण है ?

सेठ, राजा के यह प्रश्न सुनकर सन्न रह गया ! वह नगर-सेठ था और जनता मे उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। उसे बन्धुदत्त की चालाकी का पता भी नही था। यह प्रश्न सुने तो उसके दिल में उथल-पुथल मच गई। उसने कहा—बन्धुदत्त ! महाराज के प्रश्नो का उत्तर दो।

बन्धुदत्त भी भीतर-भीतर घबरा उठा। मगर वह साहस करके उठा और धृष्टतापूर्वक कहने लगा- मैं सच-सच ही कहता हूँ। परमात्मा मेरे सिर पर है। इस प्रकार भूमिका बांध कर उसने रत्नद्वीप की कल्पित कहानी सुना दो। अन्त में बोला- कृपा-निधान ! मेरे सौभाग्य को देख-देख कर कितने ही लोग जलते हैं। उन्ही मे से किसी ने आप से चुगली खा दी है। ऐसे झूठे लोगो को उचित दंड मिलना चाहिए। जो नगर-सेठ के कुटुम्ब को कलक लगाता है, वह तो फाँसी की सजा के योग्य है महाराज ! सत्य कहाँ तक छिपा रह सकता है ? आप इस विषय मे पूरी छानबीन कर सकते हैं। बस, यही मुझे कहना है कि झूठे चुगलखोर को दड मिलना चाहिए।

बन्धुदत्त इतना कह कर अपनी जगह बैठ गया। उसी समय भविष्यदत्त कमरे मे से निकल कर बाहर आ गया। भवि-

ष्यदत्त को सामने देख कर बन्धुदत्त सिर से पैरो तक कांप उठा। आखिर झूठ कहा तक ठहर सकता है ?

भविष्य ने आकर कहा—दीनानाथ ! ज़रा देखिए इसके चेहरे की ओर ! इसका मस्तक नीचा क्यो हो गया है और यह सब व्यापारी क्यो लज्जित होकर चुपचाप बैठे हैं ?

आखिर महाराजा ने कहा—व्यापारियो ! तुम लोगो को सत्य बात मालूम है। मेरे समक्ष जैसी की तैसी कहो। अगर किसी ने जरा भी असत्य कहा तो वह भी सजा का पात्र होगा।

भाइयो ! असत्य मे बल नही होता। सत्य के समक्ष असत्य के पैर लड़खड़ाने लगते हैं। असत्यवादी मे भीरुता आ जाती है। वास्तव मे असत्य अनर्थो का घर है।

असत्यमप्रत्ययमूलकारण कुवासनासद्मसमृद्धिवारणं।
विपन्निदान परवञ्चनोर्जितं कृतापराधं कृतिभिर्विवर्जितम् ॥

असत्य अविश्वास का मूल कारण है। जिसे लोग असत्यवादी समझ लेते हैं उसका विश्वास नही करते। उसकी सच्ची बात भी झूठी ही समझी जाती है। असत्य खोटी-खोटी वासनाओं का घर है और समृद्धि मे रुकावट डालने वाला है। बहुत से लोग समझते हैं कि हम झूठ बोल-बोल कर धन इकट्ठा कर लेंगे और ऐसा समझ कर असत्य का सेवन भी करते है। कोई व्यापार मे असत्य बोलते है और कोई—कोई तो न्यायालय मे भी झूठी गवाही देने चले जाते हैं। मगर इसका परिणाम अतीव भयकर होता है। असत्य से ऋद्धि बढ़ने के बदले घटती ही है। इसी कारण यहाँ असत्य को समृद्धि मे रुकावट डालने वाला कहा गया

है। इतना ही नहीं, असत्य विपत्तियों का भी कारण है। असत्य-वादी आपत्तियो का पात्र बनता है। असत्य दूसरों को ठगने वाली है, अपराध है और इस कारण पुण्यात्मा पुरुष कभी असत्य का आश्रय नही लेते। ऐसा समझकर असत्य के सेवन से बचना ही हितकर है।

इस श्लोक मे असत्य के जिन दोषो का वर्णन किया गया है, बन्धुदत्त के चरित मे से वे सब घटित हो रहे हैं। आगे का वर्णन जब आप सुनेंगे तो प्रतीत होगा कि असत्य के सेवन से बन्धुदत्त को धन सम्पत्ति से भी हाथ धोना पड़ा और विपत्तियो का भी शिकार होना पडा।

राजा ने जब वणिको की ओर सकेत करके सत्य बात कहने का आदेश दिया तो किसी की हिम्मत नही पड़ी कि वे असत्य कह सकें। आखिर एक वणिक् उनमे से उठा। उसने कहा -पृथ्वीनाथ! मैं असत्य बोलना गर्हित पाप समझता हूँ और विशेषतया न्यायालय मे। न्यायालय मे भी जब असत्य भाषण से किसी पर अत्याचार होता हो, अधर्म होता हो, तब तो वह अत्यन्त ही गर्हित है। अतएव मैं आपके समक्ष असत्य नहीं कहूँगा। इस मामले का सम्बन्ध एक पतिव्रता नारी के सतीत्व के साथ है, सिर्फ सम्पत्ति के साथ नहो। आप मेरी बात पर पूर्ण विश्वास कर सकते हैं।

राजा ने कहा—ठीक है। मैं सत्य ही सुनना चाहता हूँ।

महाजन ने साक्षी देना आरम्भ किया।

२-११-४८ }

तकदीर और तदबीर

स्तुतिः—

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरग-नेत्रहारी,
निश्शेषनिर्जित जगत्त्रितयोपमानम् ।
विम्बं कलङ्क मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएँ ?

भगवन् ! आपका मुख सुरों, नरो और उरग अर्थात् सर्प जैसे क्रूर जानवरो के भी चित्त को हरण करने वाला है । आपके

मुखारविन्द की शान्तिमय और सौम्य छवि को देख कर क्रूर से क्रूर प्राणी भी मुग्ध हो जाते हैं और अपनी क्रूरता को तजकर शान्त वन जाते हैं। और प्रभो ! आपके दिव्य आभा से अलंकृत मुखमंडल ने संसार के समस्त सुन्दर पदार्थों की उपमा जीत ली है। अर्थात् इस विश्व मे कोई भी ऐसी वस्तु नही दिखलाई देती, जिसके साथ आपके मुख की तुलना की जाय ? ले दे कर एक चन्द्रमा ही ऐसा है जो उपमा देने के लिए याद आता है। मगर जब विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि चन्द्रमण्डल प्रथम तो कलंक से मलीन है और फिर सदा एक सा नही रहता। दिन मे वह फीका पड़ जाता है और ऐसा दिखाई पडता है जैसे ढाक का सूखा पत्ता हो ! कहाँ आपका समस्त कलंकों से वर्जित मुख और सदा लोकोत्तर तेज से दमकता हुआ भव्य मुखमण्डल और कहाँ बेचारा चन्द्रमण्डल ? ऐसी स्थिति मे उपमा दे भी तो किससे दें ? वास्तव मे आपके मुख की कोई उपमा नहीं हो सकती।

भाइयो ! वास्तव में भगवान् ऋषभदेवजी की महिमा का वर्णन नही हो सकता। उन्होंने और अपने-अपने समय में सभी तीर्थंकरों ने जगत् का उद्धार किया, अन्त में भगवान् महावीर स्वामी हुए। भगवान् महावीर ने अपने समय में प्रचलित हिंसा के विरुद्ध अहिंसा का ऐसा प्रभावशाली उपदेश दिया कि जन-समाज के नेत्र खुल गये। भगवान् ऋषभदेवजी ने जनता पर आये हुए संकट को अपने ज्ञान के द्वारा दूर किया, असि, मषि और कृषि रूप आजीविका का मार्ग प्रदर्शन किया, जनता को जीवन निर्वाह का रास्ता दिखलाया और घोर पाप से वचा लिया। फिर स्वयं त्यागी वन कर लोकोत्तर धर्म का स्वरूप सम-

आया। इस प्रकार देश काल के अनुरूप तीर्थंकरो के कार्य मे कुछ-कुछ विशेषता होने पर भी धर्म मार्ग की प्रवृत्ति करने का कार्य सभी का समान होता है। सभी ससार का महान् कल्याण करते हैं।

भगवान् महावीर स्वामी का आज शासन चल रहा है। उन्होंने जगत् को बतलाया था कि वस्त्र अपने मूल रूप मे तो स्वच्छ ही होता है, परन्तु जब उस पर मैल बाहर से आकर जम जाता है वह मलीन हो जाता है। उस मलीनता को दूर किया जा सकता है, क्योकि वह स्वाभाविक नहीं है–औपाधिक है इसी प्रकार आत्मा अपने मूल रूप मे शुद्ध ही है, परन्तु उस पर कर्म जनित मैल चढ गया है। जब तक उस पर मैल चढा हुआ रहता है, वह साफ नही होता। समस्त मैल धुल जाने पर आत्मा अपने स्वाभामिक रूप मे आ जाता है।

भगवान् ने वस्तु-स्वरूप ही बतलाया हो, आत्मा का अशुद्ध और शुद्ध रूप ही प्रकट किया हो सो बात नही। उन्होने यह भी बतलाया कि आत्मा मे अशुद्धता किन कारणो से आती है और इस अशुद्धता को किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

मनुष्य को ज्वर आ जाता है तब उसे दूर करने के लिए वह औषध का सेवन करता है। औषध के सेवन से बीमारी दूर हो जाती है। बीमार कहता है–अमुक औषध का सेवन करने से ज्वर चला गया। किन्तु औषध ने भीतर जाकर किस प्रकार ज्वर से लडाई की और क्या काम किया, यह बात दुनिया को मालूम नही होती। फिर भी वह यह काम करती ही है।

इसी प्रकार मनुष्य या अन्य कोई भी प्राणी जब पाप-कर्म करता है तो यह नही मालूम होता कि वे पाप-कर्म किस प्रकार आत्मा मे मलीनता पैदा करते है ? किस प्रकार आत्मा के स्वाभाविक गुणों को आच्छादित करते है ? वह यह भी नही जान पाता कि कब कितने कर्मो का बन्ध हो गया है ? परन्तु कर्म, औषध की भाँति धीरे-धीरे आप कार्य करते है। तुम चाहे दिन भर के अपने विचारो का पता न लगा सको, मगर कर्मों को सब पता है। तुम जानो या न जानो, कर्म तो लेखा लेंगे और राई-राई का लेखा लेंगे।

बीमार को पथ्य रखना पडता है। वैद्य बतलाता है कि हमारी दवा का पूरा असर तभी होगा जब कि पथ्य रक्खा जायगा। पथ्य न रखने से या तो बीमारी मिटती ही नही है या मिट करके भी फिर लागू हो जाती है। तब बीमार मन ही मन पश्चात्ताप करता है। अपथ्य सेवन के लिए अपने आपको धिक्कारता है। कहता है-हे भगवन् ! मैने यह क्या कर लिया ? इसी प्रकार पाप-कर्म कर डालने वाले को जब अपने पाप-कर्मों का फल भोगना पड़ता है तब उसे पश्चात्ताप होता है। वह हाय हाय करता है। अपने दुष्कृत्य के लिए अपने को धिक्कारता है। मगर किये कर्मों का फल तो उसे भोगना ही पडता है ? कहा भी है—

अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

शुभ या अशुभ, जो भी कर्म उपार्जन किया है, उसका फल भोगना ही पडता है। बिना फल भोगे छुटकारा नहीं मिल सकता।

भाइयों ! कर्म करके कदाचित् तुम भूल जाओगे, मगर यह कर्म अपना फल देना नही भूलेंगे। आज झूठ बोले तो उसका फल चाहे अभी भोगो, कल भोगो या और कभी, किन्तु भोगना अवश्य पड़ेगा। जब तुम्हारी नजर में विकार आया है, उसी समय फल न मिलने के कारण यह मत सोचना कि हम बेदाग बच गये है। नही, जब उसका प्रतिफल भुगतोगे तब कहोगे—हाय, यह मैंने क्या किया था ?

मनुष्य की बुद्धि मे जडता होती है तो उसे दूर करने के लिए सरस्वतीचूर्ण का सेवन किया जाता है। आयुर्वेद के ग्रंथों में उसकी विधि लिखी है। उस चूर्ण का सेवन करने से बुद्धि मे अन्तर पड़ जाता है। ब्राह्मी का सेवन करने से भी बुद्धि बढती है। मगर यह चूर्ण और ब्राह्मी की पत्ती क्या चीज है ? वह जड है फिर भी बुद्धि पर उसका असर होता है। लोग समझते हैं कि जड़ पदार्थ हमारा क्या कर सकते हैं ? परन्तु जरा सी भग घोंट कर पीओ तो पता चलेगा कि जड पदार्थ मे क्या करने की शक्ति है ! भग पीने पर आँखे चढ जाती हैं और चेहरे की रगत बदल जाती है। यही नही, उसमे विचार शक्ति भी प्रभावित होती है। दिमाग पर भी उसका असर होता है। कहते हैं—पी लो भाग और बदला स्वांग ! किसी—किसी को तो भग पागल बना देती है।

एक नौजवान विद्यार्थी अपनी सुसराल गया। सुसराल में उसे भग पिला दी गई। विद्यार्थी के दिमाग पर भंग का ऐसा असर पडा कि वह पागल हो गया। कई महीनो तक उसे मेंटल अस्पताल मे रहना पड़ा, सैकड़ो-हजारो रुपया खर्च हुआ। तब

मुश्किल से वह ठीक हो सका। फिर भी डाक्टरो ने पढने की मनाई कर दी। उसे सदा के लिए अध्ययन छोड़ देना पडा। आशय यह कि कौन-सी चीज, किस समय, कितना असर कर जाती है यह बात मालूम नही होती, परन्तु प्रत्येक वस्तु अपना-अपना असर अवश्य रखती है।

आत्मा स्वभाव से अरूपी है, चेतना स्वरूप है, फिर भी अनादि काल से जड़ कर्मों के साथ उसका मेल हो रहा है। आत्मा के प्रत्येक प्रदेश के साथ अनन्त-अनन्त कर्म परमाणु चिपटे हुए हैं इस कारण वह स्वभाव से अरूपी होने पर भी एक प्रकार से रूपी बना हुआ है। यही कारण है कि उस पर रूपी कर्मों का प्रभाव पडता है। प्रत्येक वस्तु में चाहे वह जड हो या चेतन, कुछ न कुछ शक्तिया विद्यमान रहती हैं। दूध पीते हो इसी लिए कि वह शक्ति देता है। गाजा पीओगे तो क्या होगा ? और यदि धतूरे के बीज पी जाओ तब तो राम-राम ही हो जाय! मतलब यह कि जड पदार्थों मे भी अनुकूल, प्रतिकूल प्रतिक्रिया पैदा करने का स्वभाव है। यह बात इतनी स्पष्ट है कि प्रत्येक मनुष्य बिना किसी कठिनाई के, अनायास ही समझ सकता है। यही नही, प्रतिदिन इस सचाई का सब को अनुभव होता रहता है।

भाइयो! याद रक्खो, तुम्हारा प्रत्येक विचार, प्रत्येक वचन और प्रत्येक कार्य तुम्हारे भविष्य पर प्रभाव डाल रहा है, तुम्हारे लिए सुख या दुःख का निर्माण कर रहा है। अगर तुम्हारा विचार, वचन और कार्य उज्ज्वल है तो तुम अपने भविष्य को उज्ज्वल बना रहे हो, अगर वह मलीन है तो अपने भविष्य को मलीन बना रहे हो। दूध पीओगे तो अच्छी बात है, पुष्टि प्राप्त

होगी। गाजा पीओगे तो बुद्धि को और शरीर को भ्रष्ट कर लोगे। अच्छे विचार रक्खोगे तो सुखी होओगे। बुरे विचार करोगे तो दु.खी होओगे। अतः प्रत्येक समय अपने विचारों को पवित्र ही रक्खो, उनमे कभी अपवित्रता मत आने दो। अच्छे विचार रक्खोगे तो समझना कि दूध पिया है, बुरे विचार करोगे तो समझ लेना कि धतूरे के बीज घोट कर पी लिए हैं।

कई लोग ऐसी स्थूल बुद्धि के होते हैं कि साफ-साफ मालूम पडने वाली बातो को भी नही समझते हैं। समझते हैं तो भी नासमझ की तरह व्यवहार करते है। वे कहते हैं—जो कुछ भी तक़दीर मे लिखा होगा सो होगा। अभी से आगे की चिन्ता क्यो की जाय? परन्तु उन्हे सोचना चाहिए कि अगर अभी से चिन्ता न करेंगे तो फिर क्या हाल होगा? भूख लगने से पहले पेट भरने की चिन्ता की जाती है। यह सब जानते है और इसी के अनुसार प्रवृत्ति भी करते हैं। कोई हाथ पर हाथ धरे नही बैठा रहता। कोई यह नही सोचता कि जब भूख लगेगी तब देखा जायगा, अभी से क्यो चिन्ता करें? कदाचित् कोई ऐसा सोचे तो उसे सभी मूर्ख कहेगे। मकान मे जब आग लग जाय, उस समय कूप खुदवाने का विचार करने वाला मूर्ख शिरोमणि ही कहलाता है। अरे, कब कूप खुद कर तैयार होगा और कब उसमे का पानी निकाल कर तू मकान मे लगी आग बुझायगा? तब तक तेरे मकान का नाम-निशान भी बचेगा? मकान की रक्षा करनी थी तो पहले से प्रबन्ध क्यो नहीं किया?

यही बात आत्मा के कल्याण के विषय मे समझनी चाहिए। जो लोग आज आत्मा के हित की ओर ध्यान नही देते हैं और

दुष्कृत्य करने में लगे हुए हैं, वे आगे जाकर किस प्रकार आत्मा की रक्षा कर सकेंगे ? जब फल भोगने का समय आएगा तब उससे कैसे अपना बचाव करेंगे ?

जो लोग तक़दीर के भरोसे पर रहते हैं, उनकी हालत भी स्तव मे बड़ी दयाजनक है। उन बेचारो को यही पता नही कि तकदीर क्या चीज है ? कहा है—

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति ॥

अर्थात् पूर्वजन्म मे किये हुए कर्म ही इस जन्म मे दैव, भाग्य या तकदीर कहलाते है। अतएव पुरुषार्थ के बिना दैव की भी सिद्धि नही होती ।

आशय यह है कि प्रत्येक प्राणी जो पुरुषार्थ करता है, उसी पुरुषार्थ से उसके भाग्य का निर्माण होता है। इसी दृष्टि से कहा जा सकता है कि मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप ही है। पुरुषार्थ किये विना महान् कार्यों को बात तो दूर ही रही, तुच्छ कार्य भी सिद्ध नही होते ।

विहाय पौरुषं यो हि, दैवमेवावलम्बते ।
प्रासादसिहवत्तस्य, मूर्ध्नि तिष्ठन्ति वायसा. ॥

जो पुरुष, पुरुषार्थ का परित्याग करके केवल भाग्य के भरोसे बैठा रहता है, उसकी बड़ी दुर्दशा होती है। जैसे महल के ऊपर बने हुए सिंह पर कौवे बैठते हैं, उसी प्रकार पुरुषार्थहीन व्यक्ति के सिर पर तुच्छ लोग भी सवार हो जाते है।

वास्तव मे तकदीर और तदबीर दोनों कार्यकारी हैं। भाग्य और पुरुषार्थ एक दूसरे के आश्रित है। आप आज जो पुरुषार्थ करते हैं, वही कल आपका भाग्य बन जायगा और जैसा आपका भाग्य है वैसा ही आपका पुरुषार्थ हो जायगा। जैसी होनहार होती है वैसी ही मति हो जाती है। कहा है—

जाको प्रभु दारुण दुख देई,
ताकी मति पहले हर लेई ॥

यहाँ प्रभु का अर्थ कर्म है। जिसके दु.ख देने वाले कर्मों का उदय आया है, उसकी बुद्धि पहले ही बिगड़ जाती है। इस प्रकार जैसी तकदीर होती है वैसी तदबीर बन जाती है। दोनो का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। परन्तु कई लोग तकदीर को ही मानते है और कई तदबीर को ही स्वीकार करते है। यहाँ तक कि तकदीर को मुख्य मानने वाला तदबीर वाले से और तदबीर को मानने वाला तकदीर वाले से झगडता है। एक वार दोनो मे खूब तन गई तो दोनो निर्णय कराने के लिए राजदरवार मे गये। राजा ने कहा—आज तुम्हारा फैसला नही हो सकता, कल होगा। यह कह कर राजा ने दोनो को एक कमरे मे वद करवा दिया और वाहर से ताला लगवा दिया। दोनो को समय पर भूख लगी। तकदीर वाला कहने लगा—कितना ही प्रयत्न करो, भोजन तो तभी मिलेगा जव तकदीर में होगा! तदवीर वाले ने कहा—हम लोगो ने व्यर्थ ही आपस मे झगड़ा किया! शान्ति से घर वैठे थे, अव यहाँ भूख-प्यास की मुसीवत झेलनी पडेगी। तकदीर वाला वोला—यही तो तकदीर का खेल है! तकदीर ही

हम लोगो को यहाँ ले आई है। अब तकदीर मे भूखा रहना लिखा है तो उसे कोई मिटा नही सकता। तदवीर वाला चुपचाप इधर-उधर घूमने लगा। घूमते समय उसे कमरे मे एक कटोरदान मिला। कटोरदान मे चार लड्डू थे। उसने कटोरदान खोल कर कहा—देखा तदबीर का फल ! मैं घूमता नही तो कटोरदान कैसे मिलता ? यह कह कर उसने तीन लड्डू खा लिये। एक लड्डू तकदीर वाले को दिया। तकदीर वाले ने लड्डू खाकर कहा—देखा तकदीर का फल ! मेरी तकदीर मे एक लड्डू था तो तुम्हे देना ही पड़ा !

लड्डू खाने के बाद दोनों को प्यास लगी। पुरुषार्थवादी ने कहा-मैं तो प्रयत्न करूँगा और जल खोजने का कोई उपाय करूँगा। ऐसा कह कर वह फिर इधर-उधर फिरने लगा। उसे एक जगह पानी का लोटा भरा मिल गया। उसने पानी पी लिया और भाग्यवादी को भी थोडा देते हुए कहा—क्या अब भी पुरुषार्थ को स्वीकार नही करोगे ? मेरे पुरुषार्थ के प्रताप से ही यह जल तुम्हे मिल रहा है। परन्तु भाग्यवादी बोला—भाई, मेरी तकदीर मे जल था तो तुमने लाकर मुझे दिया ! मैंने कौन-सा पुरुपार्थ किया था।

आखिर उनका विवाद समाप्त नही हुआ। दूसरे दिन राजा ने उन्हे दरबार मे बुलाया और कहा—केवल भाग्य के भरोसे बैठे रहना भूल है और केवल पुरुपार्थ को मानना भी भूल है। दोनो को दोनो ही स्वीकार करने पड़ेगे। अगर भाग्य पर ही निर्भर रहना है तो दुकान मे ताला क्यो वन्द करते हो ? एक दिन दुकान खुली छोडकर भाग्य की प्रवलता की परीक्षा क्यो नही

करते ? परन्तु भाई ! पुरुषार्थ के बिना काम नही चलता । पहले पुरुषार्थ है, फिर भाग्य है । पुरुषार्थ भाग्य का जनक है । तुमने रोटी बनाई और खाने को बैठे, यह पुरुषार्थ हुआ । परन्तु अचानक कुत्ता आकर झपटा और रोटी ले गया तो इसे तकदीर का खेल समझना चाहिए । इस प्रकार यथोचित रूप से दोनो को स्वीकार करना ही युक्ति सगत है । वास्तव मे पुरुषार्थ किये बिना कोई काम सिद्ध नही होता । अतएव पुरुषार्थ करना आवश्यक है । पुरुषार्थ करने पर भी अगर सिद्धि न हो–काम सफल न हो, तो तकदीर की बात समझना चाहिए ।

भाइयों ! पुरुषार्थ करने मे तुम स्वाधीन हो । कई लोग हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं और कहते है कि हमारे पास खाने को नही है ! पर अरे मूर्ख ! निठल्ले बैठे रहने से क्या होगा ? देखो, पाकिस्तान से लाखो की संख्या मे सिंधी यहाँ आये और उनके छोटे–छोटे बालक भी पुरुपार्थ करने मे जुट पडे । उन्होने अपने आपको सँभाला और यहाँ के लोगो को भी इधर-उधर की वस्तुएँ सुलभ कर दी ! क्या इनमे से कोई आपके पास भीख माँगने आया था ? अगर इनमे पुरुषार्थ न होता तो यह माँगते ही बन जाते ! पुरुपार्थी होने के कारण ही इन लोगो ने एक बडे भारी सकट को पार कर लिया है । वास्तव मे पुरुषार्थ बडी चीज है । पुरुषार्थ के प्रभाव से ही साधु–महात्मा छठे गुणस्थान से सातवें, आठवे, आदि ऊँचे गुणस्थानो मे पहुँच कर अन्त मे मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । पुरुषार्थ की वदौलत ही छोटा-सा वालक पहली कक्षा मे उत्तीर्ण–होकर क्रमश: मेट्रिक, एफ. ए., बी. ए. और एम ए. हो जाता है । जो पढ़ने मे पुरुषार्थ नही करता उसे हमाली करनी

पड़ती है। भाई, आलसी की मक्खियाँ कौन उड़ाए ?

एक आदमी बेर के पेड़ के नीचे पड़ा हुआ था। एक बेर उसकी छाती पर आकर पड़ा। आलस्य के कारण वह उस बेर को उठाकर अपने मुँह मे भी न डाल सका। थोडी देर बाद एक ऊँट वाला वहाँ से निकला। तब आलसी ने उससे कहा भाई, जरा इधर आओ और मेरी छाती पर पडे हुए बेर को मेरे मुँह मे डाल दो। ऊँट वाले ने कहा—मैं ऊँट को बिठलाऊँगा, नीचे उतरूँगा और तब तुझे बेर खिलाऊँगा! तू अपने हाथ से ही क्यों नही खा लेता ? तब वह आलसी ऊँट वाले से बोला—वाह रे आलसी !

पुरुषार्थ से सिद्धि पावे २ (टे.)

सत्य शील आचार तपस्या पुरुषार्थ पार लगावे ।
अरिहन्त सिद्ध लब्धिपात्र पद सो सब दु:ख मिटावे ।।

भाइयो! पुरुषार्थ के प्रभाव से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं और पुरुषार्थ ही भाग्य का निर्माण करता है। अतएव धर्म का आचरण करना ही मनुष्य के लिए श्रेयस्कर है। पुरुषार्थ के बिना दु:खो का विनाश नही हो सकता। पुरुषार्थ ही मनुष्य को सौभाग्यशाली बना सकता है। अतएव आलस्य त्याग कर धर्म के आचरण में उद्यत बनो।

भविष्यदत्त चरित:—

भविष्यदत्त को अब तक जो सफलता मिली, उसमें पुरुषार्थ की ही प्रबलता है। यद्यपि भविष्यदत्त भाग्यशाली भी था,

मगर वह भाग्य भी तो उसी के पूर्वकालीन पुरुषार्थ का ही फल था। वह अपने पुरुपार्थ से राजा के दरबार तक जा पहुँचा। राजा ने उसकी प्रार्थना पर उसके साथ गये व्यापारियो मे से एक की साक्षी लेना आरम्भ किया। उसने समग्र वृत्तान्त राजा के समक्ष ज्यो का त्यो कह सुनाया। उसने बतलाया कि सती तिलकसुन्दरी ने बहुत हल्ला मचाया, कि ठहरो, मेरे पतिदेव को आने दो, किन्तु बन्धुदत्त ने उसकी बातो पर कान नही दिया और इस कृतघ्न ने जहाज रवाना करा दिया। रास्ते मे बन्धुदत्त ने सती से छेडछाड की। मगर सतीत्व धर्म प्रभाव से जहाज पर चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई। हम सब देवी के पैरो मे, प्राणभिक्षा पाने के लिए गिरे। तब सती ने हमारी प्राणरक्षा करवाई। देवर को भी क्षमा दिलवाई। परन्तु देवर तो ऐसा नीच और निर्लज्ज निकला कि देवी के जाते ही फिर ज्यो का त्यो बन गया। फिर उसकी नियत बिगड गई। इत्यादि वृत्तान्त सुनाकर उसने कहा— अन्नदाता! बन्धुदत्त वास्तव मे घोर अपराधी है और दण्ड का पात्र है। आप न्यायशील है, जो उचित समझे, करे।

अन्य व्यापारियो ने भी पहले व्यापारी की बातो का समर्थन किया। इस प्रकार जब बन्धुदत्त का अपराध प्रमाणित हो गया तो राजा ने सभा मे उपस्थित सदस्यो की सम्मति माँगी। सब ने एक स्वर से बन्धुदत्त को घोर अपराधी बतलाते हुए दण्डनीय ठहराया।

राजा ने कहा—ठीक है, बन्धुदत्त को दण्ड दिया जायगा, भविष्यदत्त का सत्कार किया जायगा और धनसार की नगरसेठ की पदवी छीन कर भविष्यदत्त को दी जायगी।

सदस्यो ने कहा—अन्नदाता ! ऐसा जान पडता है कि बन्धुदत्त की माता इस सारे षडयत्र मे सम्मिलित है, मगर उसका पिता निर्दोष है। जब यह दोनो भाई व्यापार के निमित्त परदेश जाने वाले थे तब सेठ धनसार ने दोनो को हिलमिल कर रहने की शिक्षा भी दी थी। हाँ, धनसार का दोष इतना सा है कि इन्होने बन्धुदत्त जैसे धूर्त और पापी का विश्वास कर लिया मगर यह दण्डनीय अपराधी नही है। धनसार सेठ का दूसरा दोष है निर्दोष कमलश्री का परित्याग कर देना। यह इनका विचारणीय दोष है।

राजा ने कहा-ठीक है। इन सब बातों पर विचार करके मैं अपना निर्णय दूँगा। मगर एक बार तिलकसुन्दरी की भी परीक्षा कर लेना आवश्यक है।

यह कहकर राजा ने अपने मन्त्री को परीक्षा करने का आदेश दिया। कहा—मन्त्री ! तुम जाओ और तिलका की परीक्षा करो, जिससे किसी को किसी प्रकार का अपवाद फैलाने का अवसर न मिले। वह शीलव्रत मे उत्तीर्ण हो जायगी तो जनता को उसकी पवित्रता पर विश्वास हो जायगा।

राजा का आदेश पाकर मन्त्री चँदा और लच्छी नामक दो दूतियो को साथ लेकर तिलकसुन्दरी के घर पहुँचा। मन्त्री बाहर बैठ गया और दूतियाँ अन्दर चली गई। उन्होने तिलकसुन्दरी के पास जाकर उससे कहा—देवी ! तुम्हारा भाग्य खुल गया। राजसभा मे निर्णय हो गया है। भविष्यदत्त झूठा ठहरा और बन्धुदत्त तुम्हारा पति कायम कर दिया गया है। अब तुम अपने मन-

चाहे पति के साथ भोग भोग सकोगी और मौज उड़ा सकोगी। इस खुशी मे हमारा मुँह मीठा कराओ।

दूतियो का कथन सुनते ही तिलकसुन्दरी का मुँह फीका पड गया। उसके विषाद की सीमा न रही। उसने कहा—बस, जबान बन्द करो। पतिव्रता स्त्री एक जीवन मे दूसरा पति नही चाह सकती। वह या तो अपने पति के साथ रहेगी या साध्वी बन कर ससार से नाता तोड़ लेगी। तुम लोग यहाँ से टल जाओ। अपना काला मुँह फिर कभी मुझे न दिखलाना।

दूतियो ने फिर कहा—सुन्दरी! हम आपका भला चाहती हैं,इसी कारण यहाँ आई है। हमारा काला मुँह न देखो,पर काच लेकर अपना मुह तो देख लो! आपका यह गोरा मुखडा साध्वी बनने के लिए है क्या? मनुष्य जन्म बार--बार नही मिलता है। क्या यह साध्वी बन कर तपस्या की आग मे झौंक देने के लिए है? बन्धुदत्त सभी तरह से तुम्हारे योग्य है। उससे घृणा करने से अब काम नही चलेगा।

दूती की यह बात सुनकर तिलकसुन्दरी के क्षोभ और क्रोध का पार न रहा। उसकी आँखो मे ऐसी ज्वाला धधक उठी कि मानो दूतियाँ उसमे भस्म हो जाएँगी। भौंहे तन गई और ओठ फडकने लगे। उसने कड़क कर कहा—चली जाओ, इसी क्षण बाहर निकल जाओ!

दूतिया तिलका का विकराल रूप देख कर सहम गई। डर की मारी काँपने लगी। उस समय वह बाहर चली गई। मन्त्री को समस्त वृत्तान्त बतलाया। मन्त्री तिलकसुन्दरी की परीक्षा करके

राज सभा में पहुँचा। राजा को यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उसने स्वरूपश्री और तिलकसुन्दरी को बुलवाया। तिलकसुन्दरी के आने पर राजा ने कहा वेटी! तेरे मन में जो वात हो, निश्शक होकर कह दे।

तिलकसुन्दरी कहने लगी-महाराज! आप न्याय नीति के महान् स्तंभ है और प्रजा के धर्म के रक्षक है। आपके दरवार मे ही अगर नीति और धर्म की रक्षा न हुई तो फिर दुनिया से यह चीजे उठ जाएँगी। संसार अधर्म का अड्डा वन जायगा। अनीति का दौरदौरा हो जायगा। दूती ने आकर मुझसे जो कुछ कहा है, उससे तो यही जान पडता है कि यह लोक नरक वनने की तैयारी मे है। मुझे अपने धर्म की रक्षा की चिन्ता नही है, क्योकि वह मेरे प्राणो मे समाया हुआ है। जव तक मेरा धर्म सुरक्षित है, तभी तक मेरे प्राण सुरक्षित हैं। धर्म जाने लगेगा तो प्राण उससे पहले ही चले जाएँगे। मगर इस दुनिया का क्या हाल होगा? धर्मपिता! आपका निर्णय कुछ भी हो, मगर मेरा धर्म काच की चूड़ी के समान नही है। भले आसमान के तारे पृथ्वी पर आ जाएँ और जमीन पिघल कर पाताल लोक मे चली जाये, परन्तु मैं अपने पतिव्रत धर्म का परित्याग नही करूँगी। मेरा शील कदापि भंग नही हो सकता।

तिलकसुन्दरी की धर्मयुक्त वाणी सुनकर राजा को अपार हर्ष हुआ। उसने कहा—वेटी! चिन्ता न करो। मैं अपनी समझ के अनुसार न्याय करूँगा और अन्याय का प्रतीकार करूँगा। आज पर्याप्त समय हो चुका है, अतएव सभा विसर्जित की जाती है। कल निर्णय सुना दिया जायगा।

राजा उठकर चले गये और उसके बाद दूसरे सब लोग भी यथास्थान चले गये। जाते-जाते सभी लोग तिलकसुन्दरी की धर्मदृढता की प्रशसा करने लगे। किसी ने कहा—ऐसी धर्मशीला महिलाएँ ही भारत की विभूति हैं। दूसरे ने कहा—ऐसी पतिव्रता नारियाँ इस भूतल की शोभा है। इन्ही की बदौलत धर्म टिका रहता है! तीसरा बोला—देखा आपने, तिलकसुदन्री के वचन कितने ओजपूर्ण है! उसके वचनो में वज्र की सी दृढता है। यह दृढता उसे धर्म ने ही प्रदान की है! कोई कहने लगा—धिक्कार है उस बन्धुदत्त को जिसने ऐसी पवित्रात्मा नारी के धर्म को नष्ट करने का विचार किया! वह सचमुच आग से खेलना चाहता है! उस मूढ को पता नही है कि वह अपनी लगाई आग में स्वय ही भस्म हो जायगा! अधर्म का फल कभी मीठा नही हो सकता।

इस प्रकार विभिन्न लोग तरह-तरह की बाते करने लगे। सर्वत्र यही चर्चा छिड़ गई। लोग अगले दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

२-११-४८
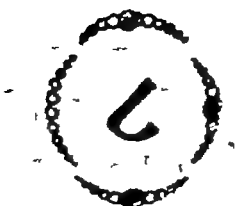
नित्यता और अनित्यता

स्तुतिः—

सम्पूर्णमण्डलशशांककलाकलाप—
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये सश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहा तक गुण गाये जाएं ?

भगवन् ! परिपूर्ण चन्द्रमा की कलाओं के समान निर्मल आपके गुण तीनो लोको को लांघ जाते हैं । भला, जिन गुणो ने

तीन लोक के अद्वितीय स्वामी ऋषभदेवजी का आश्रय पकडा है, उन्हे इच्छानुसार विचरण करने से कौन रोक सकता है? तात्पर्य यह है कि भगवान् के गुण जगत्व्यापी हैं और पूर्णिमासी के चन्द्रमा की कला के समान अत्यन्त शुभ्र हैं ऐसे अनन्त गुणो के धारक श्री ऋषभदेव भगवान् हैं,उन्ही को हमारा बार-बार नमस्कार है।

मंगलमय भगवान् को नमन करो हर बार ॥

भगवान् परम मंगलमय हैं, आनन्दकारी है। अतएव उन्ही को नमस्कार करो। भगवान् की ही शरण गहो। भगवान् की शरण लेने से ही वास्तविक कल्याण होगा। अगर आपके अन्त करण मे स्वाधीन होने की अभिलाषा जागी हो और ससार के बन्धनो से मुक्त होने की उत्कठा उठी हो तो जगदीश्वर का ही आश्रय लो। चिरकाल से आपके भीतर जो गलत धारणाएँ घुसी है, उन्हे निकाल फैंको। मत समझो कि ससार की कोई भी वस्तु तुम्हे शरणभूत हो सकती है। जो स्वय अशरण है, उसकी शरण मे जाने से कुछ लाभ नही होने वाला है एक मात्र भगवान् ही ऐसे है जो शरण प्रदान करने वाले है। अतएव अन्य वस्तुओ से अपनी भावना हटा कर परमात्मा मे ही अपनी भावना को स्थिर करो। इससे अधिक सुगम और सुन्दर कोई मार्ग आत्मकल्याण का नही है।

प्रभु के प्रति परिपूर्ण आत्मसमर्पण करने के लिए आवश्यक है कि उनके उपदेशो के तत्त्व को सम्यक् प्रकार से समझ लिया जाय। यह बात दूसरी है कि कोई जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश को सूक्ष्म रूप मे, विस्तार के साथ समझे और कोई स्थूल रूप मे,

सक्षेप मे ही समझे। मगर समझना तो आवश्यक ही है।

भगवान् के उपदेश की एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होने जगत् को नित्यानित्य बतलाया है। किसी भी वस्तु को न एकान्त रूप से नित्य ही कहा है, न अनित्य ही। बहुत से लोग एकान्त नित्यवाद को स्वीकार करते हैं और बहुत से एकान्त अनित्यवाद–क्षणिकवाद–को मान कर सन्तोष कर लेते है। मगर यह अपूर्ण ज्ञान का फल है। अपूर्ण ज्ञान से अपूर्ण वस्तु ही मालूम होती है। जब ज्ञान मे पूर्णता आती है, तभी वस्तु का परिपूर्ण स्वरूप जाना जा सकता है। इसी लिए आगम मे कहा गया है कि एक वस्तु को पूरी तरह समझने के लिए भी अनन्त ज्ञान की आवश्यकता है। जो एक वस्तु को जानता है, वह सब वस्तुओ को जानता है और जो सब वस्तुओ को जानता है, वही एक वस्तु को जानता है। आचारगसूत्र मे कहा है:—

जो एगं जाणइ से सव्व जाणइ।
जे सव्वं जाणइ से एगं जाणइ॥

इसी आगम वाक्य का आशय सस्कृत मे इस प्रकार प्रकट किया गया है:—

एको भावः सर्वथा येन दृष्टः,
सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः।
सर्वे भावा. सर्वथा येन दृष्टा,
एको भावः सर्वथा तेन दृष्ट॥

तात्पर्य यह है कि इस विश्व की प्रत्येक वस्तु मे अनन्त गुण है और उनमे से प्रत्येक गुण की अनन्त-अनन्त पर्यायें होती हैं। अतएव एक वस्तु को पूरी तरह जानने के लिए उसके अनन्त गुणों को और अनन्त-अनन्त पर्यायो को जानना जरूरी है। इतना जान लेने पर ही उस एक वस्तु का पूरा ज्ञान हुआ कहला सकता है। और यह सब जानने के लिए केवलज्ञान ही समर्थ हो सकता है। मतिज्ञान और श्रुतज्ञान इन्द्रियो से और मन से होने वाले ज्ञान हैं। अतएव उनकी मर्यादा बहुत सकीर्ण है। रहे अवधिज्ञान और मनः पर्याय ज्ञान, सो वे भी सिर्फ रूपी पदार्थों को ही जान सकते हैं, अरूपी पदार्थों को जानना उनकी शक्ति से बाहर की बात है। इन सब ज्ञानो मे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अमुक-अमुक मर्यादा है, और उसी के भीतर रह कर ये जानते है। अतएव अनन्त गुणो, अनन्तानन्त पर्यायो और अरूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप मे जानने की शक्ति इनमे नही है। वह शक्ति अकेले केवलज्ञान मे है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि एक वस्तु पूरी तरह से तभी जानी जा सकती है, जब कि केवलज्ञान प्राप्त हो जाय। केवलज्ञान प्राप्त हो जाने पर जैसे एक पदार्थ पूर्ण रूप से जाना जा सकता है, उसी प्रकार समस्त पदार्थ भी पूर्ण रूप से जाने जा सकते हैं। इस प्रकार एक वस्तु को पूर्ण रूपेण जानने के लिए पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता है।

जिन धर्मोपदेशको को पूर्ण ज्ञान प्राप्त नही हुआ था, उनका वस्तुनिरूपण भी अपूर्ण ही रहा है। यही कारण है कि जगत् मे नाना पथ और सम्प्रदाय एवं मत-मतान्तर प्रचलित हो गये हैं। वे सब अपूर्ण ज्ञान पर टिके हुए है और अपूर्ण वस्तु-स्वरूप को

प्रकट करते हैं। इस अपूर्णता के कारण ही एक पथ दूसरे पथ से टकराता है, एक मत दूसरे मत का विरोध करता है, एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय का खण्डन करता है और कलह उत्पन्न करता है।

इसके विरुद्ध वीतराग देव परिपूर्ण ज्ञानी होते हैं। वे वस्तु के पूर्ण स्वरूप के ज्ञाता और यथार्थ वक्ता होते हैं। इसी कारण उनके द्वारा उपदिष्ट वस्तुस्वरूप अनेकान्तमय है। एकान्तवाद को पकड बैठने से क्या हानियाँ होती हैं, यह बात संक्षिप्त रूप मे मैं पहले बतला चुका हूँ। यहाँ उसकी पुनरावृत्ति नही करूँगा। तथापि आज थोडे शब्दो मे यह समझाने का प्रयत्न करता हूँ कि जगत नित्यानित्य किस प्रकार है।

भगवान् ने फर्माया है कि वस्तु किसी अपेक्षा से नित्य है और किसी अपेक्षा से अनित्य है। अर्थात् द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्यायदृष्टि से अनित्य है। द्रव्य नित्य है, शाश्वत है, अवस्थित है और अव्यय है। द्रव्य का कभी नाश नही हो सकता और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के रूप मे परिणत नही हो सकता। वह त्रिकालस्थायी और अपरिवर्त्तनीय है। मगर पर्याय मे यह बात नही होती। पर्याय परिवर्त्तनशील है। चाहे देर से उसमे परिवर्त्तन मालूम पडे, मगर परिवर्त्तन होता रहता है निरन्तर। किसी-किसी स्थूल परिवर्त्तन को हम जान पाते हैं और किसी किसी को नही भी जान पाते। सूक्ष्म परिवर्त्तन हमारी समझ मे नही आता, परन्तु युक्ति और तर्क से उसकी सिद्धि अवश्य होती है। इस प्रकार पर्याय अनित्य है और वह पर्याय वस्तु का ही एक अंश है, अतएव पर्यायांश से वस्तु अनित्य कहलाती है।

एक स्थूल उदाहरण लीजिए। आपके घर मे मिट्टी का वना एक मटका है। आप को भलीभाँति मालूम है कि मटका सदा से नही चला आया है। कुभार ने उसे वनाया है। मटका वनने से पहले वह मिट्टी के रूप मे किसी जगह था। कुम्भार मिट्टी को उठा लाया। उसने उसमे पानी मिलाया। पहले मिट्टी सख्त हालत मे थी, जब उसमे पानी मिल गया तो नरम हालत मे आ गई। हालत का यह बदल जाना ही पर्याय का बदल जाना है। नरम मिट्टी को कुम्भार ने मसलना शुरू किया और उसे एकरस कर दिया। तब भी उसकी हालत बदली। फिर उसने एक पिण्ड वनाया। हालत फिर वदल गई। पिण्ड को कुम्भार ने चाक पर चढाया और नाना आकृतियो मे वदलते-वदलते आखिर मटके की आकृति पैदा हुई। यह सब पर्यायो का परिवर्त्तन होना कहलाया। मटका वन गया तो उसे धूप मे सुखाया और फिर आग मे पकाया। तब भी हालत बदली। इस प्रकार अनेक पर्यायो के वदलने के बाद मटका तैयार हुआ। जव तैयार हो गया तो क्या वह सदैव उसी हालत मे रहने वाला है? नही। कभी ऊपर से नीचे गिर पड़ेगा या ठोकर लगेगी या पत्थर लगेगा तो उसके टुकडे-टुकड़े हो जाएँगे। मटके की हालत फिर वदल जायगी।

इस प्रकार हम प्रत्यक्ष अनुभव करते है कि प्रत्येक वस्तु की पर्याय सदेव वदलती रहती है। मटके के परिवर्त्तन का मैं ने जो वर्णन किया है, वह तो सिर्फ स्थूल परिवर्त्तन को ही वदलाने के लिए है। इन स्थूल परिवर्त्तनो के वीच उसमे जो सूक्ष्म परिवर्त्तन होते है, उनका वर्णन ही पूरी तरह नहीं किया जा सकता।

मटका क्षण-क्षण मे नवीन से पुराना होता रहता है। उसके रूप, रस, गध और स्पर्श मे परिवर्त्तन होता रहता है। यह सब परिवर्त्तन इतने सूक्ष्म है और इतनी शीघ्रता से होते है कि साधारण ज्ञान वाला न उन्हे जान सकता है और न कह ही सकता है। जाने बिना कहना तो सम्भव ही कैसे हो सकता है ?

जो बात मटके के सम्बन्ध मे कही गई है, वही बात जगत् के दूसरे पदार्थो के सम्बन्ध मे भी है इस प्रकार पर्यायदृष्टि से देखने पर प्रत्येक पदार्थ अनित्य ही प्रतिभासित होता है।

अब दूसरी द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके वस्तु के स्वरूप को देखिए। आपको मालूम है मटका कौन-से द्रव्य मे अन्तर्गत है ? मटका रूपी है और रूपी द्रव्य पुद्गल ही होता है। छह द्रव्य मे से पाँच द्रव्य अरूपी और अकेला पुद्गल रूपी हैं। इस विचार से मटका पुद्गल है। अब आप विचार करे कि मटका जब मिट्टी के रूप मे कही था तब पुद्गल ही था, पानी मिलने से मुलायम हुआ, तब भी पुद्गल था, पिण्ड बना तब भी पुद्गल ही रहा। नाना आकृतियो मे परिवर्त्तन होते समय भी पुद्गल ही था। मटका बना और अन्त मे टुकडे-टुकड़े हो गया, तब भी पुद्गल मिटकर कुछ और नही बन गया। वह पुद्गल का पुद्गल ही रहा। इस प्रकार देखें तो पुद्गल अनादिकाल से पुद्गल ही रहा है और अनन्तकाल तक पुद्गल ही रहेगा। यही द्रव्यदृष्टि से वस्तु की नित्यता है। इस दृष्टि को प्रधान करके जगत् के पदार्थों का जब विचार किया जाता है तो सभी पदार्थ नित्य ही प्रतिभासित होते हैं।

जीव को लीजिए जीव कभी अजीव नही बन सकता। वह मनुष्य के रूप मे है तो जीव है, पशु-पक्षी आदि के रूप मे है तो जीव है, कीट-पतग आदि के रूप मे है तो जीव है, देव या नारक के रूप मे है तब भी जीव ही है। जीव, जीव के रूप मे सदैव स्थिर रहता है, मगर नाना शरीरो को धारण करके नाना पर्यायो को अगीकार करता है। इस प्रकार जीव भी द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य है। आज जो जीव मनुष्य की पर्याय मे है, वही मर कर पशु-पक्षी हो जाता है, और फिर वृक्ष आदि की पर्याय मे भी उत्पन्न हो जाता है। अतएव नाना पर्यायो मे एक रूप से विद्यमान रहने के कारण जीव नित्य है और पर्यायो को पलटने से अनित्य है। शास्त्र मे भी कहा है.—

> से णिच्चऽणिच्चेहिं समिक्ख पन्ने,
> दीवेव धम्म समियं उदाहू ॥

हे भव्य जीवो ! केवली भगवान् ने नित्य और अनित्य दृष्टि कोणों से वस्तुस्वरूप को देखकर धर्म का उपदेश दिया है। भगवान् द्वारा कहा हुआ वह धर्म द्वीप के समान आश्रयभूत है। जैसे समुद्र मे फँसे हुए मनुष्य के लिए द्वीप आश्रयदाता होता है, उसी प्रकार ससार मे केवलीप्रणीत धर्म आश्रयदाता है। अथवा वह धर्म दीपक के समान है। जैसे दीपक वस्तु के सही-सही स्वरूप को प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार भगवत्कथित धर्म भी यथार्थ वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने वाला है।

भाइयो ! वस्तु के असली स्वरूप को पहचानो। नित्या-नित्यपन निमित्त कारण के अनुसार होता है। जैसा निमित्त मिल

जाता है, वैसा ही वस्तु में परिवर्त्तन होता है। सुवर्ण से नाना पर्यायो को धारण करने की शक्ति है, मगर सुनार का निमित्त पाकर ही उसकी पर्याय पलटती है। कुम्भार के निमित्त से मिट्टी के नाना प्रकार के बरतन बन जाते हैं। कर्मों के निमित्त से जीव तरह २ के शरीरो को धारण करता है। इस प्रकार जगत् में विभिन्न निमित्तों के सयोग से विभिन्न परिवर्त्तन होते आ रहे हैं। कोई सात पीढियो से साहूकार है, सब मे इज्जतदार गिना जाता है, किन्तु जब पुण्य का उतार आता है तो बाल-बच्चा भी ऐसा आ जाता है कि उसके निमित्त से सात पीढी का साहूकारपन भी चला जाता है। जगत् मे इस प्रकार नित्य नये-नये परिवर्त्तन होते ही रहते हैं। कोई कहता है—पहले ये मजे मे थे और अब यह क्या हो गया है ? परन्तु वास्तव मे यह सब यह निमित्त रूप कर्मों का ही फल है। ससार में ऐसे लोग भी मिलेंगे जो पहले किसी गिनती मे ही नही थे और आज देखो तो सर्वेसर्वा बने हुए है। इसका कारण क्या है ? पहले पापकर्म का उदय था और अब उसके पुण्य कर्म का उदय हुआ है। जिन्हें पहले भर पेट रोटियो के लाले पड़ते थे, वही आज मोटर में बैठे फिरते है। हजारो नीची दृष्टि से देखने वाले आज बड़े २ अफसर बन गये है यह सब पुण्य-पाप का परिणाम है लेकिन जगत् मे कोई जीव ऐसा नही है, जिसके एकान्त पाप ही पाप का अथवा एकान्त पुण्य ही पुण्य का उदय हो। ऐसा कभी नही हो सकता। कोई कितना ही बड़ा और क्रूर हत्यारा क्यो न हो, दिन-रात मे, कभी न कभी अच्छी परिणामो की लहर आ ही जाती है। इसी प्रकार बडे से बड़े धर्मात्मा के अन्तकरण में भी कभी अशुभ परिणाम की तरंग उठ खड़ी होती है। अतएव न कही एकान्त पुण्य रहता है, न कही एकान्त

पाप ही पाप रहता है। असली केसर पीली होती है और उसमे जरा सा काली स्याही का छाटा लग जाय तो कालापन आ जाता है। इसी भाँति पुण्य असली केसर के समान है और पाप स्याही की बूंद के समान है।

भाइयो ! जीव की जैसी मति होती है, वैसी ही उसकी गति होती है। मति अगर अत्यन्त मलीन हो तो नरक गति का बन्ध पड जाता है, अगर मलीनता मे कुछ हल्कापन हो तो तिर्यञ्च-गति का बन्ध पडता है, पुण्य और पाप लगभग बराबर हो तो मनुष्यगति का और यदि सुमति की प्रबलता हो तो देवगति का बन्ध होता है। इसमे भी फिर तरतमता होती है और उस तरतमता के आधार से किसी को पहले नरक मे, किसी को दूसरे मे और किसी को सातवे नरक मे जाना पडता है। और फिर दिशाओ के भेद मे भी भेद होता है। अधिक पाप का उदय हो तो जीव दक्षिण दिशा मे उत्पन्न होता है और वहा अधिक दु.ख भोगता है।

यही बात अन्य गतियो के सम्बन्ध में भी समझ लेनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि जगत् के प्रत्येक जीव के साथ पुण्य और पाप लगे हुए हैं। और पुण्य-पाप का मुख्य आधार जीव के परिणाम हैं। अतएव इस बात का निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि बुरे विचार कभी उत्पन्न न हो सके। कदाचित् बुरे विचार उत्पन्न हो जाएँ तो शीघ्र से शीघ्र उन्हे दूर कर देने का प्रयास करना चाहिए। मलीन विचार आपकी आत्मा को मलीन बनाने वाले हैं। आपके भविष्य को अधकारमय, दु.खमय और अमगलमय बनाते हैं। अतएव जब कभी बुरे विचारो का अन्त.

करण मे प्रवेश हो तब अपनी समस्त शक्ति लगाकर उन्हे दूर कर दो।

कई लोग व्यर्थ ही बुरे विचार किया करते हैं। ईर्षा और द्वेष से प्रेरित होकर दूसरो का अशुभ चाहते है। अमुक का अमुक काम विगड़ जाय या फलां की सम्पत्ति का नाश हो जाय, अमुक मर जाय या बीमार हो जाय इत्यादि अशुभ विचार करने से विचार करने वाले का ही अहित्त होता है। बिल्ली के कहने या चा॰ने से छीका तो टूट नही सकता। किसी के चाहने से कोई दरिद्र या दुखी नही हो सकता। इसके विपरीत दूसरो का बुरा चाहने वाला अपना बुरा स्वयं ही कर लेता है।

कई लोग अपने लाभ के लिए निरन्तर संकल्प-विकल्प किया करते है। दुनिया की सारी दौलत मेरे ही घर मे आ जाय, ऐसा सोचने से क्या दौलत आपके घर आ जायगी? सभी ग्राहक मेरी ही दुकान पर आ जाएं तो कितना अच्छा! पर भाई सब तो नही आ सकते! ठाकुरजी के दर्शन करता है और उनसे भी यही भीख माँगता है कि सब ग्राहक मेरे यहा आवे! मगर ठाकुरजी को क्या नही मालूम है कि यह लोभी और स्वार्थी जीव दुनिया को दुःखी करके आप सुखी बनना चाहता है! सौ लखपतियो को कगाल बना कर एक करोड़पति बनना चाहता है। नही तो धन क्या आकाश से टपकता है? चादी के हॉल मे यही तो हो रहा है। वह उसको और वह उसको काट खाने को दौड़ रहा है! परन्तु भाई ऐसा करने से आत्मा का कल्याण नही होता। दुख से मुक्ति नही मिलती। अतएव स्वार्थमय विचारो का त्याग करो। यह विचार करो कि:—

सर्वे सुखिनः सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात् ॥

ससार के समस्त प्राणी सुखी हो, सब जीव निरोग हों, सब का भला हो । किसी भी जीव को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो ।

इस प्रकार सब के कल्याण की कामना करने से तुम्हारी परिणाम धारा पवित्र होगी तुम पुण्य के भागी बनोगे और फल स्वरूप सुख प्राप्त होगा, स्मरण रक्खो, जैसे विचार उत्पन्न होंगे वैसी ही चासनी चढ़ेगी जैसी मति होगी वैसी गति होगी ।

एक डाकू ने किसी गाव मे जाकर एक बुढिया से पूछा—इस गांव मे मालदार कौन है ? बुढिया उत्तम विचार वाली थी । उसने कहा—अगर मेरे गाव पर डाका न डालो तो मैं बतला दूं । डाकू ने डाका न डालने का वायदा किया । बुढिया ने उसके वायदे पर विश्वास करके मालदारो के नाम बतला दिये । मगर डाकू मे इतनी प्रामाणिकता नही थी कि वह अपने वायदे पर पक्का रहता । उसने मौका देख कर डाका डाला और माल ले गया ।

अब बुढिया की मनोवृत्ति पर अगर विचार करे तो यही मालूम होता है कि उसने पुण्य और पाप दोनो का बन्ध किया ! मतलब यह है कि मनुष्य अपनी भावना के अनुसार पुण्य-पाप भोगता है । तुम दूसरे का बुरा सोचोगे और उसके पुण्य का उदय होगा तो तुम्हारी एक नही चलेगी । जिन निमित्तो से तुम उसका

बुरा करना चाहोगे वही निमित्त उसके भले के कारण बन जाएंगे। फिर क्यो व्यर्थ पाप की गठरी अपने सिर लादते हो ? किसी को दु.खी बनाने के लिए इशारा भी करना महापाप का कारण है। इसी प्रकार जो धनवान हैं, वे धन के अभिमान में अपने कर्त्तव्य को न भूल जाएं। गरीबो की अवहेलना न करे। लखपति हो तो गरीब की झौपड़ी मे जूठन मत फैंको। धन का भरोसा क्या है ? अभिमान का बदला तुम्हे चुकाना पड़ेगा और उस समय पछ-ताना पड़ेगा। कहा है:—

सबल जान कर निबल को, दु ख मत दीजे सैन।
आखिर मुश्किल होयगा, लेने से भी दैन ॥

अपने आपको शक्ति शाली समझ कर निर्बल को सताओगे तो याद रखना, बदला देना कठिन हो जायगा। लेने के देने पड जाएंगे।

एक ब्राह्मण नवयुवक का बाप मर गया। भारतवर्ष मे फिर मृत्यु भोज की निर्दय प्रथा है। एक ओर घर वाले के वियोग मे कुटुम्बी जनो की आँखो से आँसू बहते हैं तो दूसरी ओर जाति वालो के मुंह से मिठाई खाने के लिए लार बहने लगती है। यह कितनी वीभत्स प्रथा है! घोर शोक के समय भी भोज देने के लिए विवश होना पड़ता है!

उस ब्राह्मण नवयुवक को भी जाति के लोगो ने भोज देने को विवश किया। नवयुवक सोचने लगा—घर मे कुछ है नही, जीमन करूँ तो कैसे करूँ ? थोडी-सी खेती है और खेती करने के

लिए दो बैल है। इन्हे बेच दूँ तो गुजारा कैसे होगा ? मगर जाति वालो से भी कैसे पिण्ड छुडाऊँ ? जीमन न करूँगा तो लोग बात-बात मे ताने मारेगे, हँसी करेंगे और इज्जत मे बट्टा लगेगा।

इस प्रकार सोच-विचार कर उसने एक बैल बेच डालने का इरादा किया। बैल लेकर वह बेचने के लिए चला। रास्ते मे उसे दो ठग मिले। उन्होने ब्राह्मण को देखकर सोचा—इसे ठगना चाहिए। जब ब्राह्मण उनके पास से निकला तो एक ठग ने दूसरे से कहा—क्यो भैया! बैल चाहिए क्या दूसरे ने उत्तर दिया—हा, चाहिए तो सही। जँच जाय तो ले लूँ। यह बात-चीत सुनकर ब्राह्मण खडा रह गया। तब एक ठग ने उससे पूछा-क्यो भाई, बैल बिकाऊ है क्या ? क्या कीमत लोगे ?

ब्राह्मण—आप ही कहिए।

ठग—नही, तुम्हारी चीज है, तुम्ही कहो।

ब्राह्मण—मगर तुम भी तो कुछ बतलाओ। तुम्हे कितनी कीमत जँचती है ?

ठग—देखो भाई, हम कहेगे तो तुम्हे मजूर नही होगा और तुम कहोगे तो हमे मजूर नहीं होगा। इसलिए गाँव मे चलो और बूढा आदमी जो कीमत कह दे उसे तुम और हम दोनों मजूर कर ले। क्यो ठीक है ?

ब्राह्मण सीधा आदमी था। उसने यह बात मंजूर कर

ली। सब गाव में गये। वहा एक बूढ़ा आदमी तकिया का सहारा लिये बैठा था। उसके पास पहुच कर ठग ने कहा—दादाजी! हमारा एक फैसला कर दो। इस बैल की कीमत बता दो।

बूढे ने पहले तो आनाकानी की। कहा—भइया! मैं किसी की पँचायत मे नही पडता। तुम स्वय कीमत तय कर लो। मुझे इस झगडे से क्या मतलब? परन्तु जब ठग ने बहुत अनुरोध और आग्रह किया तो वह मोल बतलाने को तैयार हो गया। उसने बैल को जरा गौर से देख कर कहा—मुझे तो यह बैल छह रुपये का मालूम होता है।

बूढे का फैसला सुन कर ब्राह्मण के हाथों के तोते उड़ गए। उसने कहा—मरा बेमौत! बैल गया और जाति का जीमन भी गया! छह रुपये मे क्या जीमन होगा? किन्तु ब्राह्मण वचन-बद्ध हो गया था। उसने मन मार कर छह रुपये ले लिये। रोता-रोता वह लौट पड़ा। रास्ते मे उसे एक आदमी मिला। उसने रोने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने कहा—मेरा पचास रुपये का बैल छह रुपये मे ले लिया है और उस बुड्ढे ने यह फैसला किया है! यह कह कर उसने बूड्ढे की पहचान बतलाई और सारा हाल कह सुनाया। उस आदमी ने ब्राह्मण से कहा अरे भले मानुस! वे तो बाप बेटे हैं और ठगाई करना ही उनका धन्धा है!

ब्राह्मण को यह बात सुन कर बहुत क्रोध आया। उसने निश्चय किया कि अगर मैंने इन ठगो की अक्ल दुरुस्त न की तो मैं ब्राह्मण का बेटा नही!

इस प्रकार सकल्प करके ब्राह्मण ने घर जाना स्थगित कर दिया। वह वहाँ से सीधा एक वेश्या के घर गया। उसने छह रुपये उस वेश्या को देकर कहा—यह रुपये ले लो और छह महीने के लिए मुझे अपने लहँगा और ओढना दे दो। मैं तुम्हे दूसरे नये दूँगा और यह भी लौटा दूँगा।

वेश्या ने अपने कपड़े दे दिये। ब्राह्मण उन्हे ले गया। बस्ती के बाहर जाकर उसने औरत का वेष धारण किया और फिर उसी रास्ते चला जिससे आया था और जिस रास्ते मे ठग मिले थे। दोनो ठग फिर वही बैठे मिले। ठगो ने औरत को आते देख कर कहा-कपडो से मालूम होता है कि यह कोई मालदार घराने की औरत है। इसे ठगना चाहिए। जब औरत पास होकर निकली तो ठगो ने स्वर ऊँचा करके कहना शुरू किया—शाम का वक्त है और यह कोई अच्छे घराने की स्त्री है। इसका अकेला जाना अच्छा नही है। कोई लुच्चा-गुण्डा मिल गया तो आबरू बचाना कठिन हो जायगा। यह मान जाय तो अपन कहे।

ठगो का यह वार्त्तालाप सुनकर वह औरत ठिठक गई। तब एक ठग ने उससे प्रश्न किया—कहाँ जा रही हो ?

औरत घर वाले से लडाई हो गई है, इस कारण पीहर जा रही हूँ।

ठग रात होने वाली है और तुम अकेली हो। अभी मत जाओ। सुबह चली जाना। कोई गुडा तुम्हारी इज्जत बिगाड़ देगा तो क्या करोगी ?

औरत—कोई हर्ज नही है। मैं रात ठहर जाऊँगी।

वजा-वजा कर देखी। फिर पूछा—तुम्हें यह तकलीफ कैसे हुई बावा ?

बूढे ने कहा—महाराज, कुछ न पूछो । तीसरे मञ्जिल से गिर पड़ा हूँ !

वैद्यराजजी ने बडी गम्भीरता से, ललाट को सिकोड कर फिर नाडी पकडी । कुछ देर नाडी की जाँच करके कहा—बावा, नाड़ी से तो ऐसा मालूम नही पड़ता । क्या किसी ने कोई मार-पीट की है ? बूढ़े ने सोचा—वैद्य बडा होशियार मालूम होता है । इससे बात छिपाना कठिन है और हानिकारक भी है । यह सोचकर उसने सही-सही बात स्वीकार कर ली ।

वैद्यराज ने कहा - ठीक है । मेरे मास कई तरह के नुस्खे है । कहो तो तीन महीने मे आराम करूँ और कहो तो आज ही सब ठीक-ठाक कर दूं ?

दोनो लड़को ने कहा—आज ही ठीक होना चाहिए महाराज !

वैद्यराज—अच्छा, मैं नीमचौक में रहता हूँ । मेरे घर जाकर मेरी स्त्री से लाल रग की थैली माँग लाओ ।

एक लड़का थैली लेने चल दिया । तब वैद्यराज ने दूसरे से कहा—देखो, बस्ती के बाहर, नाले के पास अमुक जड़ी है, तुम उसकी जड़ खोदकर ले आओ । जब दूसरा लड़का भी चला गया तो वैद्यराज ने फिर बूढ़े की खूब मरम्मत की और कुछ माल

लेकर चलता बना। चलते-चलते उसने कहा—बोल बुड्ढे बैल छह का या साठ का ? अभी एक बार फिर आऊँगा।

थोडी देर भटक कर जब दोनो लडके घर लौटे तो देखा वैद्यराज गायब हैं। बूढे ने जब सब हाल सुनाया तो लड़कों को अपनी मूर्खता पर पछतावा हुआ। कहने लगे—यह खूब मिला है सेर को सवा सेर !

दोनो लडको ने निश्चय किया कि अब एक हर समय बूढे के पास ही रहा करे। काम पडे तो एक बाहर जाय और दूसरा घर रहे।

थोडे दिन बीत जाने पर वह ब्राह्मण फटे कपडे पहन कर और हाथ मे लाठी लेकर आया। अब की बार उसके साथ परन्तु कुछ दूरी पर आगे आगे एक घुडसवार भी था। घुडसवार ने बूढे के दरवाजे पर पहुच कर मजाक किया-'बुड्ढे, बैल छह का कि साठ का ?' इतना सुनते ही बूढे का लडका घुडसवार के पीछे दौडा। जब वह दौडता-दौडता काफी दूर निकल गया तो इधर बूढ़े को अकेला पाकर ब्राह्मण ने फिर उसकी मरम्मत की और घुड़सवार से उलटी दिशा मे चल दिया।

लडका जब लौटकर आया तो बूढे ने फिर मारपीट की कहानी सुनाई। अन्त मे कहा-वह कह गया है कि अब नही आऊँगा, मगर ठगाई का धन्धा छोड़ दो !

यह दृष्टान्त है। इससे स्पष्ट है कि आज जो बेईमानी करता है, धोखा देता है, ठगाई करता है, उसे भविष्य में कई गुणा बदला

ठगो ने समझा – चलो, मछली फँस गई जाल में । वे उसे अपने घर लिवा ले गये । रात हुई । कहा–अपने लिए भोजन वनालो और खालो ।

औरत मेरे पास खाने-पीने का कोई सामान नही है।

ठगो ने कहा—इसकी चिन्ता न करो हम सब ला देते हैं।

यह कह कर उन्होने आटा दाल आदि सामान ला दिया। औरत ने बढिया नरम-नरम फुलके वनाये और मूंग की दाल वनाई। उसने बुड्ढे को भी आग्रह करके भोजन कराया। नरम-नरम फुलके खाकर वूढे को बहुत सन्तोष हुआ। उसने कहा-वेटी ! ऐसे नरम फुलके न जाने कितने दिनो के वाद मिले है ! महीना दो महीना यही ठहर जा तो क्या हर्ज है ? इसी को अपना ही पीहर समझ ले।

औरत ने रहना मन्जूर कर लिया। वह प्रतिदिन उत्तम-उत्तम भोजन वनाती,वूढे को खिलाती और आप खाती डेढ महीना हो गया। उसने जाने का नाम नही लिया तो सबको विश्वास हो गया कि यह अब कही जाने वाली नही है।

एक दिन बूढे के दोनो लड़के कही वाहर गये थे। औरत ने भोजन वनाया और बूढ़े को खिलाया। बूढा खा-पीकर बाहर की तरफ चला गया तो उसने तिजोरी खोली और सोने की पोटली वाँध कर रखली। वूढा शाम को फिर भोजन करने आया। अब की बार औरत ने भोजन कराकर उसे भीतर ही वाँव दिया। लातो और घूसो से खूब मरम्मत की। दो–चार लाठियाँ जड़ दी और वह सोने की पोटली उठाकर चलती बनी।

बुढे ने कराहते हुए कहा—अरे, तू है कौन ?

औरत का वेष बनाये ब्राह्मण ने कहा—बेईमान कही के ! तू ने छह रुपये मे मेरा बैल ठग लिया था न ! मैं वही बैल वाला हूँ। हल्ला-गुल्ला किया तो जान ले लूँगा। मैं अब जाता हूँ और एक बार फिर आऊँगा।

ब्राह्मण ने बस्ती के बाहर पहुँच कर अपना असली वेष पहन लिया। वह सीधा वेश्या के घर पहुँचा। उसके वस्त्र वापिस लौटाये और ऊपर से कुछ और रुपये दे दिये। उसने रातो रात सब ठीक ठाक कर लिया। माल इधर-उधर पहुँचा कर ठिकाने लगा दिया।

दूसरे दिन बूढे के दोनो लडके लौटे बूढे ने सारा किस्सा उन्हे सुनाया और कहा वह औरत नही थी, वह तो बेईमान बैल वाला था ! फिर एक बार आने को कह गया है। दोनो लडको ने मत्था ठोका और बूढे का सिकताव किया।

दूसरे दिन वही ब्राह्मण वैद्य का रूप बना कर आया। वह कहता फिरता था—अश्क मुश्क सिगा लगाऊँ और बुड्ढे को जवान बनाऊँ ! छह महीने के बीमार को एक ही दिन मे चगगा कर दूँ।

वैद्यराज का नारा सुन कर बूढे ने कहा—बेटा ! भाग्य से घर बैठे वैद्य आ गया है तो मेरा इलाज करा दो।

दोनो लडके वैद्यराज को बुला लाये। वैद्यराज ने बुढे की नाड़ी देखी, जीभ देखी, पेट को दबाया और छाती की हड्डियाँ

भोगना पडता है। पाप छिपाये नही छिपता है। प्रत्येक प्राणी को अपने किये कर्मों का फल अवश्य भोगना पडता है।

भाइयो ! अब जरा मूल बात पर आइए। प्रारम्भ में बतलाया गया था कि जीव द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य है। इस सचाई को समझने के लिए पुण्य-पाप का भोग भी एक सवल प्रमाण है। जीव को अगर एकान्त नित्य मान लिया जाय तो वह पुण्य और पाप के फल का भागी नही हो सकता। क्यो कि जो एकान्ततः नित्य होगा वह सदैव एक रूप मे रहेगा और एकरूप मे रहेगा तो कभी सुखी और कभी दुखी नही हो सकेगा, अर्थात् पुण्य पाप के फल को नही भोग सकेगा। इसी प्रकार जीव को अगर एकान्त अनित्य मान-लिया जाय तो वह एक क्षरण भर ही ठहरेगा और दूसरे क्षरण मे विनष्ट हो जायगा। ऐसी स्थिति मे अपने किये पुण्य या पाप के फल को किस प्रकार भोग सकता है ? अतएव वीतराग भगवान् ने प्रत्येक पदार्थ को नित्य-अनित्य बतलाया है और ऐसा मानने मे किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित नही होती।

भाइयो ! यह अनेकान्तवाद का सिद्धान्त है। वड़ा ही सूक्ष्म है। इसका ज्ञान प्राप्त करो। वीतराग की वाणी के मर्म को समझो। ज्ञान से ही तुम्हारा कल्याण होगा।

भविष्यदत्त—चरित—

अपने किये कर्मों का फल किस प्रकार भुगतना पड़ता है, यह बात एक लोकप्रचलित उदाहरण के द्वारा आपको बतलाई

है। यही बात बन्धुदत्त के उदाहरण से भी समझी जा सकती है। बन्धुदत्त का चरित भी कर्मफल के सिद्धान्त की सचाई का प्रमाण है।

दूसरे दिन यथा समय दरबार भरा। हस्तिनापुर के राजा आकर विराजमान हुए। उनके सब सभासद, धनसार सेठ, भविष्यदत्त और बन्धुदत्त आदि भी उपस्थित हुए। कमलश्री, स्वरूपश्री, तिलकसुन्दरी और पाँच सौ वणिक् भी हाजिर हुए।

राजा ने अपना निर्णय सुनाते हुए कहा - स्वरूपश्री के कहने से बन्धुदत्त ने भविष्यदत्त के साथ विश्वासघात किया, यहाँ तक कि भविष्यदत्त की पत्नी के साथ विवाह करने की धृष्टता भी की, अतएव स्वरूपश्री और बन्धुदत्त को देश निकाले का दण्ड दिया जाता है। धनसार सेठ निर्दोष है, इस लिए उनकी पदवी नही छीनी जायगी। कमलश्री सेठानी बनाई जाती है। बिना अपराध घर से निकाल देने के लिए धनसार सेठ को उससे क्षमायाचना करनी होगी। इस सारे परिवार मे भविष्यदत्त अत्यन्त ईमानदार और धर्मात्मा है। मैं अपनी एकलौती लडकी सुमति का उसके साथ विवाह करके उसे राजा बना दूंगा। तिलकसुन्दरी पक्की पतिव्रता है, अतः वह भविष्यदत्त को सौंपी जाती है। तिलक-सुन्दरी को रानी का पद प्रदान किया जाता है।

राजा का निर्णय सुन कर सभा मे स्तब्धता छा गई। सब लोग राजा की न्यायशीलता और उदारता की प्रशंसा करने लगे। उसी समय कोतवाल ने उठकर स्वरूपश्री और बन्धुदत्त को गिरफ्तार कर लिया और दोनो का मुँह काला करके देश से

निकाल दिया। धनसार सेठ ने कमलश्री से क्षमा माँगी। उत्तर मे कमलश्री ने कहा—पतिदेव ! आप मेरे सौभाग्य है, मेरे सिर के ताज हैं। वास्तव मे आपका कोई अपराध नही है। मुझे पिछले दिनों जो कष्ट भोगना पडा उसका मूल कारण तो मेरे कर्म ही हैं। अतएव आप चित्त मे किसी प्रकार की ग्लानि न लाएँ। मैं तो सदैव आपकी आज्ञाकारिणी रही हूँ और आगे भी रहूँगी। मेरे मन मे तनिक भी मलीनता नही है।

इतनी कार्रवाई के पश्चात् दरबार बर्खास्त हो गया। दूसरे दिन राजा ने सेठ को बुलवा कर और यथोचित सत्कार करके कहा—सेठ साहब ! आपके पुत्र के साथ मेरी पुत्री का विवाह हो जाना चाहिए। सेठ धनसार ने यह सम्बन्ध सहर्ष स्वीकार किया। उसी समय राज ज्योतिषी बुलवाया गया और उसने विवाह का शुभ मुहूर्त्त निकाल दिया। तिथि निश्चित हो गई। दोनो ओर धूम धाम के साथ तैयारियाँ होने लगी। सर्वत्र उल्लासमय वायु-मण्डल हो गया।

उधर स्वरूपश्री और बन्धुदत्त दोनो भविष्यदत्त के घोर शत्रु बन गये। यद्यपि तटस्थभाव से विचार किया जाय तो प्रतीत होगा कि इन माँ-बेटे को जो अपमान और कष्ट भुगतना पडा है, उसके लिए वह स्वय ही उत्तरदायी है, भविष्यदत्ता का उसमे कोई हाथ नही है, लेकिन द्वेषी जीव ऐसा विचार नही करते जिसके अन्तःकरण मे कषाय की अग्नि प्रज्वलित होती है, उसका विवेक दग्ध हो जाता है। वह यथार्थ वस्तुस्थिति का विचार नही कर सकता। वह अपने दोषो को न देख कर दूसरे के ही दोषो का विचार करता है। भविष्यदत्त ने केवल अपनी पत्नी को ही प्राप्त

करने का प्रयत्न किया। वह उसका कोई अपराध नहीं था। मगर वन्धुदत्त अपने सब कष्टो का कारण भविष्यदत्त को ही समझने लगा। उसने भविष्यदत्त से पूरा बदला लेने का विचार किया।

वन्धुदत्त अपनी माता के साथ घूमता-घूमता पोतनपुर पहुँचा। वहा का राजा उस समय हस्तिनापुर के राजा से भी अधिक शक्तिशाली था। भविष्यदत्त का अनिष्ट करने के लिए वन्धुदत्त पोतनपुर-नरेश के दरबार मे पहुचा। उसने राजा को कुछ भेट देकर निवेदन किया कि मैं आप से कुछ आवश्यक बात निवेदन करना चाहता हू।

राजा ने पहले वन्धुदत्त का परिचय पूछा। उसके पश्चात् अपनी बात कहने की आज्ञा दी। तव वन्धुदत्त कहने लगा-पृथ्वीनाथ! इस आर्यावर्त्त मे घोर कलिकाल आगया जान पड़ता है। क्षत्रियवश मे आप सरीखे महान् प्रतापी, शक्तिशाली, नीति-निपुण और शूरवीर पुरुष मौजूद हैं, फिर भी आज क्षत्रियवश का घोर अपमान हो रहा है। यह जानकर मुझे अतीव ग्लानि हो रही है। गौरवशाली जाति के अपमान को दूर करने के लिए ही मैं प्रार्थना करना चाहता हूँ

राजा ने पूछा-स्पष्ट बतलाओ कि कहाँ और किस प्रकार क्षत्रियवश का अपमान हो रहा है? मैं स्वय क्षत्रिय हू और क्षत्रियवश के अपमान को किसी भी अवस्था मे सहन नही करूँगा। हमारे पूर्वजो ने अपनी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए समय-समय पर अनेक महान् उत्सर्ग किये हैं, अपने प्राणो को भी तुच्छ समझा है तो क्या मै क्षत्रियवश के अपमान को चुपचाप ही सहन कर लूगा?

बन्धुदत्त बोला—धन्य धन्य महाराज की ओजस्विता ! आप वीर पुरुष है, क्षत्रिय जाति के अलंकार हैं। इसी कारण तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। आप अवश्य इस महान् जाति की प्रतिष्ठा बचाएँगे।

इस प्रकार भूमिका बांध कर बन्धुदत्त ने अपना अभिप्राय प्रकट करना शुरु किया। वह क्या कहता है, यह आगे बतलाया जायगा।

४-११-४८ }

इन्द्रियनिग्रह

स्तुतिः—

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभिः—
नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,
किं मन्दराद्रि शिखरं चलितं कदाचित् ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

भगवन् ! संसार मे दो अक्षरों का एक नाम है—काम । मगर उसने संसार के समस्त प्राणियो को अपने अधिकार में कर

रक्खा है। बडे-बड़े शूरवीर और प्रतापी पुरुष भी उसके प्रभाव से अछूते नही रहे हैं। उसके तेज के आगे सब नतमस्तक हो जाते है। वह मनुष्य को दीन और गुलाम बनाता है। मनुष्य की सहज विवेक शक्ति का विनाश कर डालता है। काम के वशीभूत हुआ मनुष्य उचित-अनुचित का भेद भूल जाता है, कर्त्तव्य की उपेक्षा करने वाला है, निर्लज्जता को धारण करता है और सभी प्रकार से गिर जाता है। इस काम ने अवतारो मे गिने जाने वाले पुरुषो को भी नही छोड़ा है। उन्हे भी उपहास का पात्र बनाया है। ऐसे सबल और शक्तिमान् कामदेव को भी, हे प्रभो! आपने पराजित किया है। आप कामदेव पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर चुके है, अतः स्वर्गलोक से आकर इन्द्राणी, अप्सरा या कोई भी देवागना आपके चित्त को विकार की ओर प्रेरित नही कर सकती, तो और नारियो की तो गिनती ही क्या है ?

प्रभो! प्रलयकाल की हवा अत्यन्त तीव्र और सवल होती है। वह भले ही दूसरे पर्वतो को चलायमान कर दे परन्तु सुमेरु पर्वत को चलायमान नही कर सकती। सुमेरु पर्वत के सामने उसका तीव्रतम वेग भी असमर्थ हो जाता है। इसी प्रकार कामदेव अन्यान्य पुरुषो को भले विचलित करता है, मगर आपके ऊपर उसका जादू नही चल सकता। क्योंकि कामदेव के जनक मोह को आपने पूरी तरह से नष्ट कर दिया है। जहा मोह नही है, वहाँ कामदेव के लिए भी कोई अवकाश नही है।

ऐसे कामविजेता भगवान् ऋषभदेवजी हैं। उन्ही को हमारा बार-वार नमस्कार हो!

भाइयो ! यो तो जितने भी विकार है, सभी आत्मा को पतित करने वाले है और सभी के प्रभाव से जीवन विकृत और हीन बन जाता है, परन्तु काम विकार सभी विकारो मे प्रवल है । उसको जीतना एक महान् विजय है । जो इस विजय को प्राप्त कर लेता है, वही पूर्ण ब्रह्मचारी कहलाता है । काम विकार पर विजय प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक है । ब्रह्मचर्य का अर्थ क्या है ? ब्रह्म का अर्थ 'आत्मा' है । आत्मा मे चर्या करना अर्थात् रमण करना ब्रह्मचर्य कहलाता है । मतलव यह हुआ कि आत्मा को आत्मिक गुणो मे ही रमण कराना, आत्मा के अतिरिक्त जितने भी परपदार्थ हैं उनमे रमण न करने देना-उनकी ओर न जाने देना ब्रह्मचर्य कहलाता है । क्योकि घर से बाहर जाने पर ठगे जाने का भय रहता है और घर मे रहने पर ठगाने का भय नही रहता । इसी प्रकार आत्मा जब तक अपने ही गुणो मे लीन रहता है तब तक वह ठगा नही जा सकता । इसके विपरीत ज्यो ही वाहर गया कि लूटने वाले मिल जाते है । अतएव जो अपने आपको ठगाई से वचाना चाहता है, उसे चाहिए कि वह आत्मा मे ही रमण करे ।

भगवान् ने ज्ञातासूत्र मे कछुवा और शृगाल का जिक्र किया है । जगल मे एक जलाशय है । उसमे कई प्रकार के जल-चर जीव हैं और उनमे एक कछुवा भी है । जगल मे भी कई प्रकार के जीव हैं और शृगाल भी उनमे से एक है । शृगाल जलाशय के आस पास घूमते रहते हैं और कछुवा जब वाहर किसी जीव-जन्तु को नही देखते तो वाहर निकलते हैं ।

एक वार जलाशय में से दो कछुवे बाहर निकले । उसी

समय दो शृगाल वहाँ आ पहुँचे। कछुवो को देख कर वे उन पर झपटे, उन्हे पजे मारे। दोनों एक-एक कछुवे पर टूट पड़े। मगर दोनो कछुवो ने अपने हाथ, पैर और गर्दन को ढाल में संकोच लिया। अब शृगाल कितने ही पंजे मारे, उनका जोर नही चल सकता, क्योकि कछुवों की डाल बहुत मजबूत होती है। बन्दूक की गोली का भी उस पर असर नही होगा। शृगाल पंजे मारते-मारते परेशान हो गये, मगर उनका वश नही चला। हार मान कर वे दूर जाकर एक झाडी मे छिप गये।

थोड़ी देर बाद कछुवों मे से एक ने गर्दन बाहर निकाली और शृगालो को देख कर फिर भीतर कर ली। शृगाल दौड कर आये, परन्तु फिर भी उस पर उनका वश नही चला। मगर दूसरे कछुवे ने अपना एक पैर बाहर निकाला और शृगाल ने वह पैर पकड़ लिया। वह मारा गया।

इस प्रकार जो कछुवा अपने आपमे स्थिर रहा, जिसने अपने अगोपागो को अपने ही भीतर सकोच करके रक्खा, वह बचा रहा और जिसने अपना पैर बाहर निकाला, जो अपने आपमे स्थिर न रह सका, उसे अपने प्राण गंवाने पड़े। यह उदाहरण आपको शिक्षा देने के लिए है।

हे भव्य जीवो ! ज्ञानी पुरुषो ने बतलाया है कि जैसे कछुवे के चार पैर और एक गर्दन होती है, इसी प्रकार मनुष्य की पाच इन्द्रिया हैं—स्पर्शन, रसना घ्राण चक्षु और श्रोत्र (कान)। जो मनुष्य इन पाच इन्द्रियो में से किसी भी एक इन्द्रिय को बाहर निकालता है, अर्थात् स्वच्छंद हो जाने देता है, उसकी दशा उसी

कछुवे के समान होता है, जो अपना एक टाग निकालने के कारण मारा गया। देखो, कान के वश मे होकर हिरन और सर्प मारे जाते हैं। चक्षु इन्द्रिय के अधीन होकर पतग दीपक मे पड कर अपने प्राणो को होम देता है। नाम के वशीभूत होकर भ्रमर अपनी जान खो बैठता है। जीभ के वश मे होकर मच्छी मारी जाती है और स्पर्शन-इन्द्रिय की लोलुपता के कारण हाथी जैसा बलवान् और विशालकाय प्राणी अपने जीवन की बलि दे बैठता है! यो सामने जाकर जगली हाथी को पकडने की हिम्मत किसे हो सकती है? हाथी एक मिनिट मे ही मनुष्य को सूंड से पकड़ कर, पैर तले कुचल कर कचूमर निकाल सकता है। मगर हाथियो को पकडने वाले जगल मे, हाथी की अपेक्षा भी गहरा गडहा खोदते है। उस गडहे को बास की पतली छिपटियो से ढँक देते हैं और ऊपर से मिट्टी डाल देते है। उस गडहे को ऊपर से समतल कर देते हैं। पता नहा चलता कि इसके नीचे क्या है। ऊपर से पानी छिडकने से हरियाली हो जाती है। गडहे के बीचोबीच कागज आदि की हूबहू हथनि बना देते है। घूमता-फिरता हाथी वहा आता है। हथिनी को देख कर और उसे असली हथिनी समझ कर वह कामान्ध हो जाता है। हथिनी की ओर दौडकर जाता है। उसके शरीर के बोझ से बास की खपच्चिया चर्रमर्र हो जाती है। और हाथी उस गडहे मे गिर जाता है। गिरने के बाद हाथी व्याकुल हो जाता है। दो-चार दिन तक उसे भुखा रहने दिया जाता है। जब भूख-प्यास का मारा वह कमजोर हो जाता है तो पकडने वाले उसे थोड़ा-थोडा खाना देते हैं और फिर पाल लेते है और उसके बाद उसे गड़हे से वाहर निकालते है।

भाइयो! जरा विचार करो कि एक ओर तो लोग हड्डी

को अपवित्र मानते हैं, हड्डी चौके में नही ले जा सकते यहां तक कि हड्डी पास मे पड़ी हो तो भोजन को भी अपवित्र समझते है, दूसरी ओर हाथी दांत से कोई परहेज नही किया जाता ! अनेक स्त्रियां हाथी दांत के चूड़े पहन कर रसोई बनाती हैं और खाती-खिलाती है ! यह कितनी विवेकहीनता है ? हाथी का दांत क्या हड्डी नही है ? फिर उसे भी और हड्डियो की तरह अपवित्र क्यो नही समझा जाता? एक बार सुना था कि हाथी दांत के लिए सत्तर हजार हाथी मारे गये थे । श्रीमदाचारांगसूत्र में बतलाया गया है कि विभिन्न अवयवों के वास्ते विभिन्न प्रकार के प्राणियो का वध किया जाता है । नौपत तासो के लिए पाडे मारे जाते हैं । जब नौपत मँढनी होती है तो जिन्दा पाडा खरीदा जाता है । उसे बांध कर धूप में पटक देते है । उसका पेट फूल जाता है और आखिर जब वह मरता है तो उसी समय उसका चमडा उधेड कर नगाड़े मढ़े जाते हैं । अगर प्राकृतिक मौत से मरे हुए पाडे के चमडे से नगाडा मढा जाता है तो उसकी ध्वनि जैसी चाहिए वैसी नही होती । चँवर बनाने के लिए चंवरी गायें मारी जाती है । जिस जगल मे यह गाये होती है, मारने वाले वहा जा पहुँचते है । लम्बे-लम्बे बांसो मे तीखा शस्त्र बाधते हैं और पेडो पर बैठ जाते है । जब वह गायें पेडो के नीचे विश्राम करने को आती है या नीचे से निकलती है तो उस शस्त्र से वे लोग गायो की पूछ काट लेते है । बेशुमार खून बहने लगता है और वे त्रस्त होकर भागती हैं । उन बेचारियो की फिर क्या दशा होती है, कौन जाने ? पिंजारे की रुई पीजने की तात बकरे को मार कर बनाई जाती है । इसी कारण उसमे से खास तरह की आवाज होती है । ढालों के लिए कछुवे मारे जाते हैं । इसी प्रकार मुलायम-मुलायम जूते, बैग,

मनी बैग आदि भी जानवरो को मार कर उनके चमडे से बनाये जाते है । अपनी मौत में मरे जानवर का चमड़ा इतना मुलायम नही होता है ।

भाइयो ! यह देख कर खेद होता है कि आज कल इस प्रकार के चमडे की बनी वस्तुओं का प्रचार बढता चला जा रहा है । पहले कुलीनजन चमडे का स्पर्श होने पर अपवित्रता समझते थे, मगर आज कल वह मर्यादा भी लुप्त होती जा रही है । अरे, कई लोग तो कलाई पर चमडे का घडी का पट्टा लगाये हुए भोजन करते हैं, सामायिक करते हैं, मन्दिरों मे जाते है ! मगर इस प्रकार की परम्परा चल पडने के कारण हिंसा को कितना प्रोत्साहन मिल रहा है, इस बात को कौन सोचता है ? आज कल लाखो-करोडो जानवर चमडे के लिए ही मारे जा रहे हैं ! सच्चा दयाधर्मी ऐसा कोई काम नही कर सकता, जिससे हिंसा को उत्तोजना मिलती हो । अतएव भाइयो, अधिक कुछ न कर सको तो कम से कम इस निष्प्रयोजन हिंसा से तो बचो ! इसके बिना तुम्हारा कौन-सा काम अटकता है ? चमडे का बैग न रक्खोगे तो क्या तुम्हारा काम नही चलेगा ? घडी का पट्टा किसी धातु का लगा लोगे तो क्या तुम्हारी शान किरकिरी हो जायगी ? अत्यन्त मुलायम जूता न पहनोगे तो क्या बिगड जायगा ? लाखो आदमी इन वस्तुओ का उपयोग नही करते तो क्या उनका कोई काम अटक जाता है ? फिर तुम क्यो इस घोर हिंसा के हिस्सेदार बनते हो ? याद रक्खो, इसका बदला चुकाना पडेगा । इसीलिए ज्ञानीजनो ने चेतावनी देते ए कहहुा है कि:—

मत लूटो तुम प्राणियों के प्राण ।

जल में जीव असंख्य बताये, शासनपति वर्धमान (१)

भाइयो ! जिस वस्तु का उपयोग करने मे हिंसा हो, उसका अवश्य त्याग कर दो। नरम चमड़े की वस्तुएँ, नरम-नरम बालो वाली टोपियां आदि घोर हिंसा से उत्पन्न होती हैं। आप सीधे दुकान से खरीद लाते हैं, प्रत्यक्ष मे आपको वह भयानक हिंसा दिखाई नही देती, मगर परोक्ष हिंसा का भी विचार करो। वह हिंसा खरीददारो के लिए ही होती है। वही उस हिंसा को उत्तेजना देने वाले हैं। अतएव विवेक से काम लो।

हा, यह प्रासगिक चर्चा हुई। मूल बात यह है कि हाथी स्पर्शनेन्द्रिय के वश मे होकर मारा जाता है। इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय के वशीभूत होने वाले प्राणियो को भी जब प्राण गँवाने पड़ते है तो पाचो इन्द्रियो के अधीन होने वालो की क्या दुर्दशा न होगी ? कहा है

मारग में लूटे पांच जनी मारग में।

इस जीव को पांच स्त्रियां (इन्द्रियां) लूट रहीं हैं, क्योंकि शरीर पर कब्जा नही किया है और ज्ञानी गुरु की बाते नही धारण की है। आप व्याख्यान सुन रहे हैं और सड़क पर से कोई बाजा निकले तो अधिकांश का मुँह उसी ओर को हो जाय ! इत्र की खुशबू आ जाय तो देखने लगोगे कि किधर से आ रही है ? कही हलुवा बन रहा हो और उसकी गध आपको आ जाय तो आप प्रेम से सूँघने लगेंगे ! मतलब यह है कि पाचों इन्द्रियाँ जीव को आवागमन के चक्कर मे डालने वाली हैं। इस कारण ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि तुम अपनी आत्मा को वश मे करो।

मन पाँचो इन्द्रियो का जमादार है। वह स्वय बहुत चपल है और इन्द्रियो मे भी चपलता उत्पन्न करता है। वही इन्द्रियो को उनके विषय की ओर खीच कर ले जाता है। अतएव मन को वशीभूत करना आवश्यक है मन को वश मे कर लेने पर इन्द्रियाँ आप ही आप वशीभूत हो जाती है। शास्त्र मे भी कहा है—

एगे जिए जिया पंच पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्व सत्तू जिणामहं॥

मन को जीत लेने पर पाचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त हो जाती है।

भगवान् केशी और गौतमस्वामी का जो सवाद हुआ था और जिसका विवरण हमे आज भी उत्तराध्ययनसूत्र के तेईसवें अध्ययन मे मिलता है, उस सवाद मे केशीस्वामी ने गौतमस्वामी से प्रश्न किया.—

मणो साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम ! आरूढो,कहं तेण न हीरसि॥

अर्थात्—हे गौतम ! मन रूपी घोड़ा बड़ा ही साहसी और भयानक है। तुम इस पर आरूढ हो। फिर यह तुम्हे उडा क्यो नही ले जाता ? इच्छानुसार क्यो नही घसीट ले जाता है ?

इस प्रश्न के उत्तर मे गौतमस्वामी कहते है—

पधावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जइ॥

अर्थात्—यह मन रूपी घोडा इधर-उधर दौड़ने को होता है उछलकूद मचाने को तैयार होता है तो मै श्रुत रूपी लगाम खींच कर उसे रोक लेता हू। श्रुत की लगाम खींच लेने पर मेरा मन गलत राह पर नही जाता है, वरन् समीचीन पथ पर ही चलता है।

इस कथन मे साधना का अनुभूत उपाय बतलाया गया है। महापुरुष किस प्रकार मन की साधना करके उस पर अंकुश रखते हैं, यह जानने के लिए यह कथन बहुत उपयोगी है। मगर यह बात जान कर आपको भी प्रयोग मे लाना चाहिए। किसी वैद्य की अनुभूत औषध को जानकर भी आप लाभ तभी उठा सकते हैं जब उसका सेवन करे। जानने मात्र से कोई लाभ नही हो सकता। अतएव मन को अगर वश मे करना चाहते हैं तो श्रुत का आश्रय लो। फिर इन्द्रियाँ भी वशीभूत हो जाएँगी। जब इन्द्रियो पर और मन पर काबू प्राप्त हो जायगा तो तुम सही बात विचारने लगोगे। मिथ्या और भ्रमपूर्ण विचारो का अन्त हो जायगा। अभी तुम सोचते हो कि अमुक-अमुक मेरा शत्रु है, फिर सोचने लगोगे—

तू ही तेरा शत्रु है, और मित्र भी तेरा तू ही है।
सुखदाता तेरा तू ही है, दुखदाता तेरा तू ही है॥

हे आत्मन्! तेरा शत्रु और कोई नही, स्वय तू ही है, और मित्र भी तू स्वय ही है। तू स्वय अपने आपको सुखी और दुखी बनाता है।

रसना इन्द्रिय के वश मे होकर जब रसीला भोजन ज्यादा खा जाते हो, तब अजीर्ण हो जाता है, पेट मे दर्द होता है या वमन करते फिरते हो ! यह दु.ख तुम्हे कौन देता है ? उस समय मनका निग्रह करते और जीभ पर लगाम लगा लेते तो काहे को कष्ट उठाना पड़ता ? जरा थोडा खाते ! माल पराया भले ही हो, पेट तो पराया नही है !

एक जगह मथुरा के चौबेजी जीमने बैठे तो इतने लड्डू खा गये कि जब जाने लगे तो जूते पहनने को उनसे झुका ही नही गया ! किसी ने उनसे पूछा क्या जूते नजर नहीं आते ? तब चौबेजी बोले-साले जूते क्या तू भी नजर नही आ रहा है। जब चौबेजी से कहा गया कि थोडा कम खाते तो वे कहने लगे-मुझे तो पछतावा है कि कुछ ज्यादा भूख न लगी, वर्ना दस-पाच लड्डू और खा लेता !

तो भाई, जितनी भी बीमारियाँ है, उन्हे बुलाने वाला स्वय मनुष्य ही है। मनुष्य सयम का परित्याग करके असयम का सेवन करता है और उसी के फलस्वरूप बीमारी आ जाती है। इसी कारण महात्मा लोग सयममय जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता पर बल देते है। सयम का सीधा सादा अर्थ अपनी इन्द्रियो को वश मे रखना ही है। जैसे जीभ को वश मे रखना आवश्यक है, उसी प्रकार आँखो को भी वश मे रखना आवश्यक है। आँखे अनमोल वस्तु है। आखो के अभाव मे सारा ससार शून्य है। वह अनुपम रत्न है। ससार की किसी भी सम्पत्ति के साथ उनकी तुलना नही हो सकती। अतएव भाइयो ! इस लोक और परलोक के हित के लिए इन्द्रियो को अपने नियंत्रण मे रक्खो,

मन को वशीभूत करो, जीवन को सयममय बनाओ। इन्द्रियों को वश मे न करोगे तो तुम्हारा धर्म ही जोखिम में नही पड़ जायगा, बल्कि जीवन भी जोखिम मे पड़ जायगा। अतएव तुम अपने मित्र बनो, शत्रु मत बनो।

पाप दृष्टि सर्वत्र सदा ही, विकृत मार्ग अपनाता है।
ओ मूर्ख! मौत सिर पर है खडी क्यों घोर नरक मे जाता है ॥

भाइयो! इन आखो को अगर पापमय व्यापार मे लगाओगे, विषय-विकार की ओर इन्हे ले जाओगे तो अपना भारी अकल्याण करोगे।

कवि सूरदासजी पहले देखते थे। वे महात्मा बन गये थे और भगवान् का भजन करते थे। उनके पास एक नवयुवती लडकी आई। उसे देखकर उनका चित्त बिगड गया। लड़की जब चली गई तो उनका चित्त ठिकाने आया। तब सूरदासजी सोचने लगे-ओह! इन आखो के द्वारा मेरा धर्म बिगड़ा है। यह नेत्र मुझे अध'पतन की ओर ले जाते है तो मुझे इनकी आवश्यकता ही नही है। इस प्रकार सोच कर उन्होने लोहे की दो सलाइया गर्म करके आखो मे डाल ली और फिर भगवान् का भजन करने लगे।

मैं आप को यह सलाह नहीं देता कि आप भी सूरदास की तरह अपनी आखे फोड ले या कानो मे शीशा भरवा ले! इन्द्रिया अपना-अपना काम छोड दे, यह भी सभव नही है। आखें है तो वह देखने का काम करेगी, आस पास मे कोई शब्द होगा तो कानो मे पड़े बिना नही रहेगा। यही बात अन्य इन्द्रियों

के सम्बन्ध मे भी है। मगर प्रथम तो आपको ऐसे विषयो से बचना चाहिए, जिससे चित्त में विकार उत्पन्न होता हो, साथ ही अपने मन को ऐसा मजबूत बनाना चाहिए कि किसी भी वस्तु को देख कर राग द्वेष उत्पन्न न हो। किसी भी सुन्दर वस्तु को देख कर भी अगर आपके चित्त मे अनुराग का भाव उद्‌भूत नही होता तो उस वस्तु पर दृष्टि पड जाने पर भी कोई हानि नही होगी। मगर मन की यह समता प्राप्त होना कुछ कठिन है। जब तक यह समता आपको प्राप्त नही हो जाती तब तक ऐसी वस्तुओ के अवलोकन से बचते रहना ही योग है। भगवान् ने बतलाया है कि साधु को स्त्रियो की ओर निगाह नही करनी चाहिए। कदाचित् अचानक निगाह पड जाय तो उसी समय हटा लेनी चाहिए।

भक्खरं पिव दट्ठूणं दिट्ठिं पडिसमाहरे।

सूर्य की ओर दृष्टि चली जाती है तो मनुष्य टकटकी लगा कर उसे नही देखता रहता, बल्कि देखते ही दृष्टि हटा लेता है। इसी प्रकार नारी शरीर की ओर दृष्टि चली जाय तो फौरन हटा लेना चाहिए और पवित्र विचारो को अपनाना चाहिए। ऐसा करते-करते एक समय ऐसा आ जायगा कि आप अपनी इन्द्रियो पर पूरी तरह काबू पा सकेंगे।

देखो, जिस कछुवे ने अपनी इन्द्रियो को गुप्ति मे रक्खा, वह सकुशल रहा, जीवित बच गया और पानी मे चला गया, और जिसने अपनी इन्द्रियो को खुला कर दिया वह मारा गया। इसी प्रकार आप अपनी इन्द्रियो को वश मे कर लेंगे तो सुख के भागी होंगे, आपको तृप्ति शान्ति और निराकुलता प्राप्त होगी,

इसके विपरीत अगर इन्द्रियों को वश मे न करके आप स्वय इन्द्रियो के वश मे हो जाएंगे, तो आपका जीवन आपके लिए अभिशापमय वन जायगा ।

आप कहते हैं कि हमे मोक्ष का मार्ग दिखलाइए. मगर मैं कहता हूँ कि इन्द्रियों को और मन को पूरी तरह अपने अधीन कर लेना ही मोक्ष का मार्ग है । जो इन्द्रिय विजेता वन जायगा, मनोजयी हो जायगा, वह आत्मा के स्वरूप मे रमण करेगा और वही पूर्ण ब्रह्मचारी कहलाएगा ।

यह पूर्ण ब्रह्मचर्य की स्थिति प्राप्त करने के लिए वीर्य की रक्षा करना भी परमावश्यक है । वीर्य इस शरीर का राजा कहलाता है । वीर्य की कमी हो जाने पर मनुष्य की जिंदगी भार-भूत हो जाती है । मनुष्य नाना प्रकार की व्याधियो से घिर जाता है और बड़ी ही वेदना के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है । अतएव वीर्य की रक्षा करना प्राणो की रक्षा करना है । भाइयो ! तुम उन परम वीतराग जिनेन्द्र भगवान् के उपासक हो, जिनके चित्त को देवागनाएं भी विचलित नही कर सकती थी ! तुम्हे प्रभु की इस दृढता से कुछ तो सीखना चाहिए ! पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर सको तो अच्छी वात है, इतना न कर सको तो कम से कम देश ब्रह्मचर्य का पालन तो अवश्य ही करो । इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा ।

भविष्यदत्त–चरितः—

वन्धुदत्त ने पोतनपुर-नरेश के दरबार मे जाकर उसकी जातीयता की भावना को भड़काया । उसने राजा को बतलाया

कि क्षत्रिय जाति आज कलंकित हो रही है। राजा ने उससे विगतवार बात पूछी तो उसने बतलाया-महाराज ! हस्तिनापुर नगर मे धनसार नामक वणिक् है। उसके लडके का नाम भविष्यदत्त है। वह तिलकपुरपट्टन से एक सुन्दरी स्त्री लाया है और हस्तिनापुर नरेश की बुद्धि भी ऐसी बिगडी है कि वह भी अपनी कन्या का उसके साथ विवाह करना चाहते है। क्षत्रियो मे भी राजा होते हुए एक वणिक्पुत्र को अपनी कन्या विवाहना क्या आपकी सम्मति मे उचित है ? महान् क्षत्रिय जाति के लिए यह एक बडी लाछना नही है ? क्या ऐसा करने से क्षत्रियो के रक्त की पवित्रता कायम रह सकेगी ? हस्तिनापुर नरेश के विचार मे मानो कोई क्षत्रिय राजकुमार उस लडकी के योग्य ही नही है।

बन्धुदत्त आगे कहने लगा-करुणानिधान ! मैंने तो क्षत्रियवंश के गौरव की रक्षा करने के वास्ते ही आपसे निवेदन किया है। आपको अपना गौरव प्रिय हो तो आप उसकी रक्षा करने के लिए सब प्रकार से समर्थ हैं। कुछ न करना चाहे तो भी आपकी इच्छा ! मेरा कर्त्तव्य तो पूर्ण हो चुका।

पीतनपुर नरेश को पिछले वृत्तान्त का पता नही था। उसमे पर्याप्त दूरदर्शिता का अभाव भी था। अतएव बन्धुदत्त की बाते सुनकर वह बहक गया। उसने कहा-तुम ठीक कहते हो। यह विवाह-सम्बन्ध हम क्षत्रियों की शान मे बट्टा लगाने वाला है। मैं इस विषय मे उचित कार्रवाई करूँगा।

इसके बाद पीतनपुर-नरेश ने चित्रांगदनामक एक क्षत्रिय को राजदूत बना कर हस्तिनापुर भेजा। चित्रांगद दो-चार आदमियो

को साथ लेकर हस्तिनापुर पहुँचा । राजा को सूचना दी गई कि पोतनपुर-नरेश का दूत आपसे मिलने आया है । राजा ने आदर के साथ उसे अपनी राजसभा मे बुलवाया । चित्रागद सभा में पहुँचा । यथोचित शिष्टाचार की बातें हुई । दोनो ने दोनों ओर के कुशल-समाचार पूछे । तदनन्तर हस्तिनापुर नरेश ने चित्रांगद के आने का प्रयोजन पूछा । इसके उत्तर में चित्रांगद ने कहा-महाराज ! पोतनपुराधीश ने क्षत्रियवंश की उज्ज्वलता और महत्ता की रक्षा करने के उद्देश्य से मुझे यहां भेजा है। आप स्वयं क्षत्रिय है । क्षत्रियवश की प्रतिष्ठा आपको भी उतनी ही प्रिय होनी चाहिए, जितनी हमारे महाराज को प्रिय है ।

नरेश—ठीक है, इस विषय मे मेरी पूर्ण सहमति है । परन्तु क्या मेरी ओर से कोई ऐसी बात हुई है कि जिससे क्षत्रियवंश की प्रतिष्ठा भग हो ?

दूत – अगर हुई नही तो होने वाली है ।

नरेश – वह क्या है ? स्पष्ट कह कर समझाओ ।

दूत—आप अपनी राजकुमारी का विवाह एक वणिक्पुत्र के साथ करना चाहते है । यह बात हमारे महाराजा को पसंद नही है । अतएव उन्होंने मेरे द्वारा आपको यह सन्देश भेजा है कि आप अपने हित का विचार करके इस विचार को स्थगित कर दे और राजकुमारी को पोतनपुर भेज दें ।

नरेश—दूत, तुम्हे सोच-समझ कर बात कहनी चाहिए । मैं अपनी कन्या का विवाह करने मे पूर्ण स्वतन्त्र हूँ । तुम्हारे महाराजा की पसन्दगी या नापसन्दगी का प्रश्न ही नही उठता । उन्हें

इस विषय मे हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है। रही अपने हित का विचार करने की बात, सो मैं अपने हित-अहित को भलीभाँति समझता हूँ। मुझे तुम्हारे महाराजा से शिक्षा लेने की आवश्यकता नही है। मैं अपनी कन्या का वाग्दान कर चुका हूँ। क्या तुम्हारे महाराज यह चाहते हैं कि मैं वाग्दान करके मुकर जाऊँ ? क्या यह बात क्षत्रिय को शोभा देती है ? क्षत्रिय जाति की प्रतिष्ठा को स्थिर रखने का यह उचित मार्ग है ? यह तो प्रतिष्ठा को कलकित करने का तरीका है ! मैं ऐसा जघन्य कृत्य नही कर सकता । राजकुमारी को पोतनपुर भेज देने की बात कहना तो अत्यन्त ही अनुचित है ! इस प्रकार का सन्देश भेज कर तुम्हारे महाराजा ने स्वयं ही क्षत्रिय जाति की मर्यादा भग की है।

इतना कह कर हस्तिनापुर नरेश ने फिर कहा—अच्छा, अभी तुम आये हो। विश्राम करो। कल अन्तिम रूप से उत्तर दिया जायगा। राजा ने अपने मन्त्री की ओर देखकर राजदूत की यथायोग्य व्यवस्था कर देने का आदेश दिया। दरबार समाप्त हो गया। चित्रांगद अपने डेरे मे चला गया।

हस्तिनापुर-नरेश ने दूसरे दिन अपने कुटुम्बीजनो से, सरदारो से और सेनाध्यक्षो से परामर्श किया। स्थिति के सभी पहलुओ पर भलीभाँति विचार किया। अन्त में यही निश्चय किया गया कि जो वचन दिया जा चुका है, उसे किसी भी परिस्थिति मे पलटा नही जा सकता।

यथासमय दरबार लगा। राजदूत को भी बुलाया गया। नरेश ने उससे कहा-तुम अपने महाराजा को कह देना कि जैसे

आपके कर्मो मे मैं हस्तक्षेप नही करता, उसी प्रकार मेरे कर्मों मे वे भी हस्तक्षेप न करें। मैं अपनी प्रतिष्ठा को समझता हू और उसकी रक्षा करने की चिन्ता भी मुझे है। राजकुमारी का वाग्दान हो चुका है और अब उसमे कुछ भी फ़ेरफार होने की गु जाइश नही है।

दूत--महाराज ! एक बार फिर सोच लीजिए। पोतनपुर नरेश के आदेश की उपेक्षा करना उचित नही है। अभी मित्र भाव से भेजे हुए उनके आदेश को आप अस्वीकार कर देंगे तो आपको वडी कठिनाई में पडना होगा। पोतनपुर नरेश की तलवार बहुत तीखी है। उनकी सैनिक शक्ति अजेय है। यदि उनकी सेना ने हस्तिनापुर पर हमला कर दिया तो आपका राज्य तहसनहस हो जायगा। आपको जरा सी बात के लिए राज्य से हाथ धोना पडेगा।

चित्रांगद की धमकी सुन कर हस्तिनापुर नरेश की त्यौरियाँ चढ गई। सभासद भी क्रुद्ध हो उठे। धनसार सेठ बोले—महाराज, आप जरा भी चिन्ता न कीजिए। अगर पोतनपुर नरेश की सेना यहां आएगी तो उसे ऐसा सबक सिखलाया जायगा कि बहुत दिनो तक याद रहेगा !

चित्रांगद ने कहा—इस सेठ ने महाराज के कान मे ऐसा मन्त्र फू क दिया है कि सिवाय लडाई-झगड़े के और कुछ नही होना है ! इन्ही की बदौलत नर सहार का अंकुर उगेगा। महाराज ! आप इनकी बातो मे न आइए। राज्य जाएगा तो आपका जाएगा। इनका क्या विगड़ना है ? निष्कारण झगड़ा मोल लेना राजनीति से विरुद्ध है।

राजा ने कहा—दूत, अपने राजा से कह देना कि व्यर्थ नरहत्या के भागी न बनो। अगर उन्हे अपनी सैनिक शक्ति का मद चढा है तो उसकी दवा हस्तिनापुर मे हो जायगी।

दूत—वचन निकालना सरल है महाराज, मगर उनको पूरा करने मे बड़ी कठिनाई होती है। क्या आप पोतनपुर नरेश की शक्ति से परिचित नही हैं ? उनके सामने आपकी शक्ति नगण्य है। आप अच्छी तरह सोच ले। अभी तीर आपके हाथ मे है। छूटा और छूटा। फिर आपके वश की बात नही रहेगी।

यह सुनकर भविष्यदत्त ने कडक कर कहा—राजदूत, राजकुमारी मेरी माँग है और एक क्या सौ पोतनपुर नरेश भी उसे नही पा सकते। वणिकों मे कितनी वीरता होती है, समय आने पर मैं दिखला दूंगा। पोतनपुर नरेश को अपनी जान बचाने के लाले पड जाएँगे। फिर हमारे साथ न्याय-नीति की प्रचण्ड शक्ति भी है। अगर पोतनपुर नरेश परस्त्री पर नजर डालता है तो वह पामर है। उसे यही करारा बदला भोगना पड़ेगा और आगे भी। रावण की शक्ति क्या कम थी ? मगर रावण को प्राण क्यो गँवाने पड़े ? उसके कुटुम्ब का सहार क्यो हुआ ? उसकी अजेय समझी जाने वाली सेना को क्यो हथियार डालने पडे ? इसी कारण कि वह अनीति पर तुला हुआ था। उसके विरोधी रामचन्द्रजी नीति पर डटे थे। इसलिए मैं चेतावनी देना चाहता हूँ कि तुम नीति पर कायम रहो, अन्यथा वही दशा होगी जो रावण की हुई थी।

हस्तिनापुर नरेश, भविष्यदत्त का कथन सुनकर प्रसन्न हुआ। इससे अन्त मे दूत से कहा—अधिक वार्त्तालाप की आव-

श्यकता नही है। पोतनपुर नरेश से कह देना कि आपने अनीति करने का विचार किया है। यही अनीति आपके लिए हानिकारक होगी। मैंने जो निर्णय किया है, वह बदल नही सकता।

दूत—महाराज, आप जो उत्तर देगे, वह मैं अपने महाराजा को पहुँचा दूंगा, परन्तु उत्तर देने से पहले आप भलीभाँति सोच ले। अच्छा तो यही है कि आप सुमतिकुमारी को पोतनपुर नरेश को सौंप दे और निष्कंटक राज्य करें। रास्ते चलते लड़ाई मोल क्यों लेते हैं ?

अब की बार राजा को तीव्र क्रोध आया। उसने अपने अंगरक्षकों की ओर देखकर कहा—हटा दो इसे मेरे सामने से ! अब जबान खोले तो इसकी जीभ काट लेना। जानता नही, क्षत्रियों के वचन का मूल्य क्या है ? जब कन्या एक को दी जा चुकी है तो फिर दूसरे को कैसे दी जा सकती है ? इस दूत का काला मुँह करके, गधे पर चढ़ा कर नगर से बाहर निकाल दो। बड़बड़ाने का मजा चखा दो !

तब मन्त्री ने कहा-राजन् ! आपका कोप उचित है, परन्तु दूत के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नही है। कुछ भी हो, परन्तु दूत को दण्ड देना उचित नहीं है। दूत की फजीहत करने से राजनीतिक शिष्टाचार का भंग होता है।

आखिर अपने उद्देश्य में विफल होकर चित्रांगद पोतनपुर लौट गया। वहाँ जाकर उसने नमक-मिर्च लगा कर हस्तिनापुर का हाल सुनाया। उसने कहा—हस्तिनापुर का राजा बड़ा

घमण्डी है और तरह-तरह से समझाने पर भी उसने एक नहीं मानी। वह अपने हठ पर डटा हुआ है।

चित्रागद के रवाना होने पर हस्तिनापुर मे युद्ध की जोरदार तैयारिया शुरु हो गईं। भविष्यदत्त ने युद्ध का बीड़ा उठाया। उसने सेनापति का पद ग्रहण किया। सर्वत्र जय जयकार की ध्वनि हुई।

राजा ने कहा—भविष्य! सोच समझ कर उत्तरदायित्व लेना। पोतनपुर नरेश बड़ा जबर्दस्त है। उसके सामने पीठ दिखाकर लौटोगे तो लाज कैसे रहेगी? अपने हृदय मे अच्छी तरह तोल लो।

भविष्य—आप निश्चिन्त रहिए नरनाथ! शत्रु कितना ही उद्दण्ड क्यों न हो, मैं पीठ नही दिखलाऊँगा और विजय प्राप्त करके ही आपको मुँह दिखलाऊँगा। पोतनपुर नरेश को आपके चरणों में नतमस्तक करूँगा, यह मेरी भीष्म प्रतिज्ञा है।

५-११-४८ }

ज्ञानी बनाम अज्ञानी

स्तुति :

निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहाँ तक गुण गाये जाएँ ?

भगवन् ! आप समस्त विश्व को पूर्ण रूप से आलोकित करने वाले अलबेले दीपक हैं । आपकी समानता करने वाला

और कोई दीपक नही है। दूसरे दीपको मे से धुआ निकलता है, उनके लिए तेल और वत्ती की भी आवश्यकता होती है, मगर आपके यहां तेल, वत्ती आदि किसी भी वस्तु की जरूरत नही है। दूसरे दीपक थोड़ी-थोडी दूर तक ही प्रकाश फैलाते है किन्तु आप सकल लोक और अलोक को आलोकित करने वाले है। दूसरे दीपक हवा का हल्का-सा झोका लगते ही बुझ जाते है, परन्तु आपके ऊपर पर्वतो को भी प्रकम्पित कर देने वाली तीव्र से तीव्र आधी का भी असर नही होता है। जिन भगवान् का ऐसा अलौकिक प्रभाव है, उन्ही भगवान् ऋषभदेव को हमारा वार-वार नमस्कार हो।

भाइयों! यहां भगवान् ऋषभदेवजी की दीपक के रूप में जो कल्पना की गई है सो ज्ञान की अपेक्षा से ही समझना चाहिए। ज्ञान यो तो आत्मा का एक गुण है और वह प्रत्येक आत्मा मे निरन्तर विद्यमान रहता है, मगर कर्म के निमित्त को लेकर उसमे तरतमता होती है। मुख्य रूप से ज्ञान के दो विभाग किये जा सकते हैं—अपूर्ण ज्ञान और पूर्णज्ञान। अपूर्ण ज्ञान क्षयोपशम के अनुसार थोडे पदार्थो को जानता है और पूर्ण ज्ञान समस्त पदार्थों को पूरी तरह जानता है।

भगवान् ऋषभदेव और अन्य समस्त तीर्थकर सर्वज्ञानी या पूर्णज्ञानी हुए हैं। जैसे हवा लगने से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार अपूर्ण ज्ञानी का ज्ञान भी कुसगति आदि कारणो से बुझ जाता है अर्थात् मिथ्यात्व उत्पन्न हो जाने पर ज्ञान मिथ्या रूप में परिणत हो जाता है। परन्तु पूर्णज्ञान कभी अज्ञान-मिथ्याज्ञान नही बनता, क्योकि वह समस्त आत्मिक विकारो

के दूर होने पर प्रकट होता है । अतएव उसे मिथ्या रूप मे परिणत करने का कोई कारण नही है । पूर्णज्ञान सर्वथा विशुद्ध, शाश्वत और निरावरण होता है ।

भाइयो ! आज ज्ञानपचमी है । ज्ञानपचमी वीरसंवत् के आरम्भ से पाचवे दिन आती है । ज्ञान भी पांच प्रकार का है:—(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन:पर्यायज्ञान और (५) केवलज्ञान । इनमे से प्रारम्भ के चार ज्ञान अपूर्णज्ञान है और केवलज्ञान पूर्णज्ञान है । निमित्त मिल जाने पर अपूर्णज्ञान, अज्ञान बन जाता है, परन्तु पूर्णज्ञान कदापि अज्ञान नही बन सकता । हा अपूर्ण ज्ञानो मे भी मन.पर्याय ही एक ऐसा ज्ञान है जो मिथ्याज्ञान नही होता शेष तीनो ज्ञान अज्ञान रूप में भी परिणत हो जाते हे ।

जैसे चावल के ऊपर का छिलका उतार देने पर हजार प्रयत्न किये जाएँ तो भी वह उग नही सकता;इसी प्रकार एक बार समूल नष्ट हुआ ज्ञानावरण का पर्दा फिर कभी आड़ा नही आ सकता ।

जिन्होने केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त कर लिया है, वे पूर्णज्ञानी हैं । तीनो कालो और तीनों लोकों की बात को जानते है । जिन वस्तुओ को वे जानते हैं वे दो प्रकार की होती है—अनादि और सादि । केवलज्ञानी अनादि वस्तुओं को अनादि के रूप मे जानते हैं और सादि वस्तुओं के सादि के रूप मे जानते है । जिस वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा ही केवली के ज्ञान में झलकता है । कोई कहे कि भगवान् जीव की उत्पत्ति का समय

भी जानते हैं क्या ? तो इसका उत्तर यह है कि केवलज्ञानी जो कुछ है उसे अस्ति रूप में जानते है, मगर जो है ही नही उसे कैसे जानेगे ? जो नही है उसे 'नही है' रूप में जानते हैं। यही तो उनके ज्ञान की यथार्थता है। अभाव को सद्भाव के रूप मे जानने लगें तो फिर ज्ञान यथार्थ नही रहेगा। जीव अनादि है, उसकी आदि नही है, वह कभी उत्पन्न नही हुआ है अतएव उसकी उत्पत्ति का कोई समय नहीं है। इस प्रकार जीव की उत्पत्ति का समय न होने के कारण केवलज्ञानी उसे नही जानते हैं, हां, यह अवश्य जानते हैं कि उत्पत्ति का कोई समय नही है। साराश यह है कि केवली भगवान् सत् को सत् रूप मे, असत् को असत् रूप मे, आदि को आदि के रूप मे जानते हैं।

जगत् मे छह द्रव्य है—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। यह सब द्रव्य रूप से नित्य हैं। यह बात मैं बतला चुका हूँ। इस प्रकार जीव नित्य है तो उसे नित्य ही जानते है। गीता मे भी जीव की नित्यता, पुरातनता और सनातनता स्वीकार की गई है। मतलब यह है कि इस विराट विश्व मे एक भी अणु ऐसा नही है जिसे केवलज्ञानी न जानते हो।

ज्ञानी और अज्ञानी मे बड़ा अन्तर होता है। दोनो की समझ न्यारी-न्यारी होती है. दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न होते हैं। सुषुप्ति अवस्था और जागृति अवस्था से आप परिचित हैं। जागते हुए को सारी रचना आखो से दिखाई देती है और सोते हुए को स्वप्न आ रहा है। स्वप्न मे वह देखता है कि साठ वर्ष की

उम्र मे उसकी सगाई और शादी हो रही है। वह वीद (दूल्हा) वन कर जा रहा है। कोई उसे विवाह के उपलक्ष्य मे वधाई दे रहा है और कोई वुढापे मे शादी करने के लिए उपालम्भ दे रहा है। इस कारण बूढा किसी पर प्रसन्न हो रहा है और किसी पर नाराज हो रहा है। वह बरात लेकर आगे जाता है और उसका मौड़ गिर पड़ता है वस, इसी समय वह जाग जाता है और सोचता है कि वह सब चीजे कहाँ चली गई ? वह चिन्ता करता है, शोक करता है और दुःख अनुभव करता है मानो उसका वना वनाया काम विगड गया हो ! अज्ञानी की दशा भी ऐसी ही होती है। मगर ज्ञानी जनो की स्थिति भिन्न प्रकार की होती है। आचाराग सूत्र मे कहा है—

सुत्ता अमुणी,
मुणिणो सया जागरंति ॥

जो सोये हुए है, जो भ्रम मे पड़े हुए हैं, वे मुनि नही—ज्ञानी नही है। मुनि वह हैं जो सदैव जागृत रहते है।

ज्ञानीजन ससार के पदार्थो को और संयोगो की वास्तविक हालत को समझते है। यहा कोई किसी का नही है, पदार्थ अपनी पर्यायें पलटते रहते हैं। इसमे हर्ष और विषाद का कोई कारण नही है। ज्ञाता का काम सिर्फ जान लेना है। जान कर किसी पर हर्ष और किसी पर विषाद करना उचित नही है। इस तथ्य को ज्ञानीजन सम्यक् प्रकार से समझते है। मगर अज्ञानी जन कर्मोदय से प्राप्त हुए पदार्थों को और कुटुम्बी जनो को अपना मानता है। जव अपनेपन का भाव उनमें स्थापित कर लेता है तो

तो उनके सयोग मे हर्ष मानता है और वियोग मे विषाद का अनुभव करता है। इस प्रकार राग-द्वेप रूप परिणति उत्पन्न होती है। कर्म का बन्ध होता है। व्याकुलता होती है। वह स्वप्न के ससार को जागृत अवस्था का पसार समझ कर दुखी होता है। ज्ञानी और अज्ञानी में यह बहुत बडा अन्तर है। अपनी निर्मोह भावना के कारण ज्ञानी इसी जीवन मे समता के अपूर्व रस का आस्वादन करता है, जब कि अज्ञानी विषम भावना के कारण शोकसन्तप्त और व्याकुल बन कर अशान्ति का पात्र बनता है। ज्ञानी परलोक मे भी सुखी होते हैं और इस लोक मे भी सुखी रहते हैं। परन्तु बेचारे अज्ञानी को कही भी सुख नसीब नही होता। उसका अज्ञान सदैव उसे सताप दिया करता है।

जो बात कल्पना की है, उसे सत्य मानना अज्ञान है और जो ऐसा मानता है, वह अज्ञानी है। एक आदमी काच मे अपना मुंह देखता है और चेहरे पर आई हुई सफेदी को देख कर चिन्तित होता है। कहता है-हाय, मेरा बुढापा आ गया! कुछ तो उम्र पक जाने से शरीर मे शिथिलता आई और फिर बुढापे की चिन्ता ने ऊपर से हमला कर दिया! यह अज्ञान दशा है। जिसने आत्मा की अजरता-अमरता को भली भाति समझ लिया है जो शरीर से आत्मा को भिन्न मानता है, उसे बुढापे की चिन्ता क्यो होगी? वह हाय हाय क्यो करेगा? वह तो यही सोचेगा कि शरीर भिन्न है और मैं भिन्न हूँ। शरीर चाहे शिथिल हो जाय चाहे छूट जाय, इसमे मेरी क्या हानि है? इस शरीर को त्याग कर दूसरा शरीर न धारण करना पडे तो सर्वोत्तम है। कदाचित् नया शरीर धारण करना पडा तो भी मेरा क्या बिगडता है? पुराने के बदले मुझे नया मिलेगा!

किसी कुटुम्बी का वियोग होने पर अज्ञानी रोता है, चिल्लाता है, सिर और छाती पीटता है, मगर ज्ञानी समझता है कि वियोग होना तो अवश्यभावी था। सयोग का एक मात्र फल वियोग होना ही है। इस प्रकार सोच कर ज्ञानी मध्यस्थभाव का सेवन करते है। वह दु:ख से अनायास ही बच जाता है।

एक राजा का लडका शिकार खेलने गया। दैवी माया ने उसे अदृश्य कर दिया। फिर वह देव एक योगी बना। दैवमाया से उसने एक कुटिया बना ली और कुटिया के पीछे एक लाश भी पटक ली। लाश का रंग ढंग ऐसा बनाया मानो शेर ने उसे मारा हो। इसके बाद उधर से जो भी राहगीर निकलता उसी को वह कहता कि राजा के लड़के को शेर खा गया है। हर एक को ऐसा कह-कर उसने गाव मे हल्ला मचा दिया। इसके बाद वह योगी लाठी लेकर गाव की ओर चला। रास्ते में उसे राजा की दासिया मिली। उसने दासियो से कहा—तुम्हे मालूम नही है कि राज-कुमार को शेर खा गया! दासियो ने कहा—जो जनमा है सो मरेगा। इसमे अचरज की बात ही क्या है? हम किस किस का शोक करे! बाबा बोला—ठीक है, तुम्हे क्या गर्ज है? आखिर तो दासी ठहरी, अपने पैसे से मतलब है तुम्हे!

इसके बाद बाबा सीधा राजा के पास पहुँचा। राजा आपने कामदारों और मुसद्दियो के साथ बैठा था। बाबा ने जाकर राजा से कहा—राजन्! राजकुमार को शेर ने मार डाला है! राजा ने उत्तर दिया—अरे जोगी! तू क्यो भटकता फिरता है? दुनियाँ तो यो ही चला करती है। योगी ने आश्चर्य के साथ कहा—अरे राजन्! तुम्हारा तो वह लड़का था न? राजा ने

रुखाई से उत्तर दिया---जाओ, अपना काम करो। किसी ने ठीक ही कहा है---

जोगी बिया पण ज्ञान नही आया।

....

राजा बोला---बाबाजी, जोगी तो बन गये मगर जोग अभी तक नही सीखा! अब तक आपको ज्ञान प्राप्त नही हुआ। यह दुनिया तो अठवाडिये का मेला है। इधर उधर से लोग आते हैं और बिखर जाते हैं!

बाबा बोला---राजन्! तुम्हे क्यो चिन्ता होने लगी? तुम्हारे बहुत-से बेटे है। दु.ख तो माता को होता है!

इतना कह कर जोगी रनवास में पहुँचा। रानी के सामने जाकर वह रोने लगा। बोला-महारानी, सैर करने के लिए गया हुआ तुम्हारा इकलौता बेटा मर गया है। शेर ने उसे मार डाला और मेरी कुटिया के पास उसकी लाश पडी है! इस करुण दृश्य को देख कर मुझे रोना आता है।

बाबा की तरफ देखकर रानी बोली-बाबाजी! आपने ससार त्याग कर भी कुछ नही पाया! ज्ञान तो आपको हुआ ही नही है! इस ससार मे कौन किसका बेटा और कौन किसकी माता है! दुनिया तो सपने की माया है। इस माया मे विवेकवान् व्यक्ति नही फँसते।

रानी का यह उत्तर सुन कर योगी का वेष धारण करने

वाले उस देव ने विचार किया-राजा का सारा परिवार यहां तक कि इसकी दासियां भी सम्यग्ज्ञान से विभूषित हैं। शक्रेन्द्र महाराज ने जब इनकी प्रशंसा की तो मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैं परीक्षा करने के लिए यहां आया। परीक्षा करके देखा तो सचमुच शक्रेन्द्र का कथन सही था।

उसी समय राजकुमार भी सैर करके आ गया। जोगी ने असली देवरूप प्रकट करके राजा को सर्व वृत्तान्त सुनाया।

भाइयो ! ज्ञानी और अज्ञानी की विचारधारा में कितना अंतर होता है, यह बात इस उदाहरण से समझ में आ सकती है।

इसी सम्बन्ध में एक प्रत्यक्ष उदाहरण और लीजिए। दिल्ली में एक भाई का बीस वर्ष का एकलौता लड़का मर गया। उसका दाहसंस्कार करके वह भाई मांगलिक सुनने आये तो पूछा गया-आज देर से क्यों श्रावकजी ?

आह, उस धीर वीर श्रावक ने गम्भीर भाव से जो उत्तर दिया, वह बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी चकित कर देने वाला है। उसने कहा-महाराज ! एक पाहुना आया था, उसे पहुँचाने गया था !

उनके साथ आये हुए एक भाई ने स्पष्टीकरण किया-गुरुदेव, इनके एकलौते लड़के का देहान्त हो गया है। उसका दाहसंस्कार करके आये हैं।

मुनिराज ने कहा—अरे क्या हो गया था ?

श्रावक वोले—महाराज संसार में यो ही चलता है । किसी पाहुने के सामने मैं जाता हूँ तो कोई मेरे सामने भी जाएगा।

भाइयों! ज्ञानी जीव दुनिया के सयोगो को विनाशशील और मिथ्या समझता है। ऐसा ज्ञान जिसे हो गया हो वही सच्चा ब्रह्मवेत्ता है, समझना चाहिए कि उसी के अन्तःकरण मे सच्ची आत्मनिष्ठा जागृत हुई है।

सूर्य का प्रकाश होने पर जो चीज जहा है, वही प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती है। जैसे यह मकान है, यह वृक्ष है आदि-आदि। दीपक से भी उसकी मर्यादा के अनुसार सब वस्तुएँ दिखलाई देती है और इसी प्रकार आखो से भी। उसी प्रकार ज्ञान से सर्वज्ञानी को निखिल जगत् दिखलाई देता है। ज्ञान चराचर वस्तुओ को प्रकाशित करने वाला है। ज्ञान से ही सब वस्तुएँ जानी जाती है। ज्ञान की मौजूदगी मे ही सूर्य, दीपक और वाह्य नेत्र काम देते हैं। ज्ञान के अभाव मे यह प्रकाशक नही हो सकते। इस प्रकार मूल मे ज्ञान ही प्रकाशक होता है। किन्तु जब मोह के कारण दृष्टि विकृत हो जाती है तो पदार्थो का स्वरूप कुछ और ही प्रकार का नजर आने लगता है। आँखो पर जिस रग का चश्मा चढा लिया जाय वैसे ही रग की सब वस्तुएँ दिख पडने लगती है। इसी प्रकार मोह के निमित्त से जैसी आन्तरिक दृष्टि बन जाती है, वैसा ही पदार्थो का स्वरूप प्रतिभासित होने लगता है

यह दृष्टिभेद ही मतभेद का मूल है। मतभेद होने पर एक कहता है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है तो दूसरा कहता है—नही,

ऐसा नही, वैसा है। अतः ससार के जितने भी मतभेद हैं, उन सब का मुख्य कारण अज्ञान है। जिनका अज्ञान पूरी तरह नष्ट हो चुका है, जिन्हे पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो गई है, उनमे आपस मे कोई मतभेद नही होता। यही कारण है कि आदि तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेवजी से लगा कर अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर तक चौवीसो तीर्थङ्करो का उपदेश एक समान रहा है। उनके सिद्धान्तो मे कोई अन्तर नही है। अन्तर तो तब पडता जब किसी से भूल होती। भूल होना अज्ञान है और यह अज्ञान, पूर्णज्ञानी मे सम्भव नही है। मतभेद होना अज्ञान के अस्तित्व का प्रमाण है। जव ज्ञान घट जाता है तो मतभेद बढ़ जाता है। और जहाँ सम्प (ऐका) होता है वहाँ सम्पत्ति बढ जाती है और जहाँ सम्प नही रहता, वहा सम्पत्ति भी नही रहती।

जहा सुमति तहँ सम्पति नाना,
जहा फूट तहा विपत निदाना ॥

भाइयो ! जहा सम्प है, सुमति है, वहां सम्पत्ति का वास होना है और इसके विपरीत जहा फूट होती है, अनबन होती है, वहा विपत्तिया आकर डेरा डाल देती हैं।

एक साहूकार के घर मे चार लडके थे और चारो की चार वहुएँ थी। सारा परिवार सानन्द रहता था। छोटे लडके की वहू घर का सारा काम-काज करती थी, परन्तु उसके मन में किसी प्रकार का असन्तोष नही था। वह प्रसन्न थी और दूसरे भी प्रसन्न थे।

एक दिन फूट देवी का आगमन हुआ। उसने कहा--देखो छोटी वहू, तुम्हारी जेठानियां बैठी रहती हैं और तुम्हे दासी की तरह घर का सारा काम-काज करना पड़ता है। छोटी हो तो क्या हुआ ? क्या इस तरह जुतने को हो ?

छोटी वहू के दिल में वात समा गई। वह काम करने से कतराने लगी। सासू कोई काम वतलाती तो भी टालमटूल कर जाती। एक दिन सासू ने उससे पूछा तो उसने तमक कर कह दिया—मुझे ही मुझे सव काम करने को कहती हो। क्या अकेली मैं ही हूँ इस घर मे ? तीन-तीन जेठानिया डाकिने भी तो है, उनसे काम क्यो नही करा लेती ? यह बात जेठानियो को मालूम हुई। जेठानियो को डाकिन कहने से उन्हे वहुत वुरा लगा और गुस्सा भी आया। बाते चीते हुईं, लड़ाई हुई। किसी ने कटोरी फक कर मारी तो किसी ने मूसल से काम लिया। लडाई-झगड़े का सिलसिला कायम हो गया। आये दिन कलह होने लगा। सब के मन विगड़ गये।

इस प्रकार लडते-झगडते ज्यो-त्यो छह महीने पूरे हो गए। अपने घर की फूट देख कर सेठ को बहुत दु ख हुआ। एक दिन भोजन करते–करते सेठ को रुलाई आ गई। सेठानी ने पूछा-क्यो, क्या हुआ ? आपको क्या दु.ख है ? सेठ ने कहा– छह महीने हो गये। इस घर मे कलह ने बुरी तरह अड्डा जमा लिया है और फिर भी पूछती हो कि क्या दु.ख है ! यही हाल रहा तो याद रखना, मुझे हाथो से पानी भरना पडेगा। जिस घर मे निरन्तर कलह रहता है, उसमे लक्ष्मी नही रह सकती।

सेठानी - मगर यो घवराने और रोने से भी न कलह मिटेगा और न सम्पत्ति ही ठहरी रहेगी । शान्ति से भोजन कर लो, फिर सोचना ।

सेठ--न जाने क्या होनहार है ! मेरा चित्त ठिकाने नही है

रात्रि मे सेठजी को स्वप्न आया । स्वप्न मे उन्होने देखा-एक स्त्री रमझम-रमझम करती आई। सेठ एकदम उठकर बैठ गया । उसे देखकर वोला-पधारो ।

रमणी लक्ष्मी थी । उसने कहा अब इस घर में मेरा रहना नही होगा । जहा कलह होता है वहाँ मेरा निवास नही होता । अतएव मैं तुम्हारा घर छोड कर जाना चाहती हूँ । मगर मुझे तुम पर दया आती है । अतएव जो मागना हो सो माग लो । मै जाऊँगी ।

सेठ को अत्यन्त दुःख हुआ । उसने कहा--देवी, इस समय मेरा दिमाग ठिकाने नही है । कल कुटुम्बियो से पूछ कर माग लूँगा ।

इसके बाद लक्ष्मी अन्तर्धान हो गई, परन्तु सेठ को नीद नही आई । सेठानी जब उठी तो सेठ को जागा देखकर वोली — क्या कारण है कि आज आपको नीद नही आई है ?

सेठ—सव चौपट होने वाला है ! घर तीन तेरह होने को है !

सेठानी—जरा साफ-साफ बतलाइए। वात क्या है ?

सेठ ने रात्रि मे लक्ष्मी के आने का वृत्तान्त कह सुनाया

और यह भी बतला दिया कि वह कह गई है कि जो चाहिए सो माग लो, पर मुझे मत मांगना । अब रात पूरी हो गई । दूसरा दिन हो गया । घर के सब लोग सोचने लगे कि क्या मागना चाहिए ? सोच-विचार मे ही वह दिन भी पूरा हो गया और फिर रात हो गई । लक्ष्मी फिर आई । आते ही लक्ष्मी ने सेट से पूछा-सोते हो कि जागते हो ?

सेठ--देवी, मुझे अब नीद कहाँ ? मैं जाग रहा हूँ ।

लक्ष्मी--अच्छा, बोलो, क्या मागना चाहते हो ?

सेठ--पहले यह तो बतलाओ कि आपकी नाराजी का कारण क्या है ?

लक्ष्मी--मैं वही पर रहती हूँ जहा विद्वानो का आदर होता है, जहाँ प्रत्येक चीज का सचय होता है, गायो की रक्षा होती है और जहा लडाई-झगडा नही होता । तुम खुद जानते हो कि तुम्हारे घर लड़ाई-तकरार होती रहती है, अतएव मेरा रहना सम्भव नही है ।

सेठ--ठीक है । एक दिन की मोहलत और दीजिए । मै कल मांग लूँगा ।

लक्ष्मी--अच्छा, कल सही । मगर मैं अब ज्यादा नही टिकूँगी ।

प्रातःकाल होते ही सेठ ने सब कुटुम्बियो को बुलाया । सब से कहा-बोलो, क्या मागना चाहते हो ? तब किसी ने मोटर,

किसी ने साइकिल, किसी ने घडी, किसी ने बाग-बगीचा तो किसी ने जेवर आदि मागा। मगर छोटी बहू चुपचाप बैठी रही। जब उसने कुछ भी नही मागा, तो सेठ ने उससे पूछा—तुम क्या मागती हो ?

छोटी बहू ने कहा—घर मे क्लेश होने के कारण ही यह स्थिति हुई है। अतएव मुझे तो यही मागना है कि घर में क्लेश नही होना चाहिए। इसके सिवाय मुझे न किसी गहने की आवश्यकता है, न कपडे की और न विलास की न किसी सामग्री की। अगर आपस मे क्लेश होता रहा तो कोई भी वस्तु सुख-सन्तोष नही दे सकेगी।

छोटी बहू की माग सुनकर सबको बहुत प्रसन्नता हुई। सेठ ने कहा—उम्र मे तो छोटी है किन्तु अक्ल मे बडी है। कैसा अनमोल वचन बोला है कि घर मे सम्प रहना चाहिए। छोटी बहू की बात सब को पसन्द आ गई। निश्चित हुआ कि बस, यही माँग लेना उचित है।

रात्रि मे फिर लक्ष्मी का आगमन हुआ और उसने अपना वही प्रश्न फिर दोहराया कि बोलो, क्या मागते हो ?

सेठजी ने उत्तर दिया-मुझे और कुछ नही मागना है। मेरे घर मे दस आदमी हैं। मैं यही चाहता हूँ कि उन सब मे सम्प बना रहे।

सेठ की माँग सुनकर लक्ष्मी चकित रह गई। मानो, उसके हाथ-पैर किसी ने बाध दिये हो, यो स्तब्ध हो रही। फिर उसने सेठ से पूछा-यह बुद्धि तुम्हे किसने दी है ?

सेठ—छोटी बहू ने ।

लक्ष्मी—उसी ने तो कलह का सूत्रपात किया था !

सेठ—और उसी ने उसे समेट भी लिया है।

लक्ष्मी—अब मेरा जाना ही कठिन हो गया। जहां सम्प होगा, वहां मुझे भी रहना पडेगा ।

भाइयो ! सम्पत्ति चाहते हो तो कुटुम्बीजनो से हिलमिल कर रहो । कहा है—

जिसके घर मे एका है गुलजार वही घर देखा है।
और रमा रमण भी वही करे, यह आखो देखा लेखा है ॥

जिसके घर मे एकता होती है, पारस्परिक प्रीति होती है, जिस घर का प्रत्येक मनुष्य दूसरे को चाहता और प्यार करता है, उस घर मे आनन्द ही आनन्द होता है। इसके विपरीत जहा क्लेश है, द्वेष है, ईर्षा है, लडाई-झगडा है, वहा लक्ष्मी का वास नही होता ।

आखिर विवश होकर सम्पत्ति को उस घर मे रहना पडा ।

कहने का आशय यह है कि जहा ज्ञान होता है वहा सम्प रहता है और जहा सम्प रहता है, वहा सम्पत्ति रहती है। आप सम्पत्ति को चाहते हैं तो ज्ञान प्राप्त कीजिए । ज्ञान परमकल्याणकारी गुण है। ज्ञान को प्राप्त करने के लिए ज्ञानियो का, विद्वानो का, आदर-सत्कार करो, उनके प्रति विनय का प्रयोग करो, ज्ञान-दान दो, विद्यार्थियो की सहायता करो, ज्ञान के उपकरणो की

प्रभावना करो और ज्ञानाभ्यास मे कुछ समय लगाओ। इतना करने पर तुम्हारा जीवन दिव्य जीवन बन जायगा, जीवन चमक उठेगा।

भविष्यदत्त-चरित—

पोतनपुर नरेश के दूत चित्रांगद ने पहुँच कर हस्तिनापुर के सब समाचार सुनाये। कहा—हस्तिनापुर का राजा बड़ा घमण्डी है और आपको कुछ भी नही समझता। पहले से हस्तक्षेप न किया होता तब तो कोई बात नही थी, मगर अब तो पोतनपुर की शान का प्रश्न सामने है। अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने का अब यही एक मात्र मार्ग शेष है कि जल्दी से जल्दी हस्तिनापुर पर आक्रमण कर दिया जाय, जिससे शत्रु को तैयारी का अधिक समय न मिल सके।

चित्रागद की बाते सुन कर राजा को जोश चढ आया। उसने कहा—हस्तिनापुर के राजा को परास्त कर देना चुटकियो का खेल है। उसके लिए अधिक सोच-विचार की आवश्यकता नही है। इसके बाद पोतनपुर नरेश ने फौज को तैयार करने की आज्ञा दे दी। यह सुन राजकुमार अनन्त ने कहा—पिताजी, हस्तिनापुर के राजा और भविष्यकुमार के लिए तो मैं अकेला ही पर्याप्त हूँ। आप विश्राम कीजिए। मैं फौज के साथ जाता हूँ और उन्हे यही बाध कर ले आऊँगा।

पोतनपुर नरेश अपने पुत्र की वीरतापूर्ण वाणी सुन कर प्रसन्न हुआ। सेना तैयार हुई। कुमार ने तिलक लगवाया और

सेना के साथ कूच कर दिया। रवाना होते ही उसे फूटा हुआ घड़ा दिखलाई दिया, अग्नि से निकलता हुआ धुआं दिखलाई दिया और विखरे बालो वाली विधवा दिखलाई दी। कुछ और आगे चलने पर सामने से नकटा आता दिखाई दिया।

यह सब अपशकुन थे। शिशुपाल जब बींद बन कर जा रहा था तो उसे भी यह अपशकुन हुए थे।

राजकुमार ने इन अपशकुनों की परवाह नहीं की। वह आगे बढ़ता ही गया। कुछ और चला तो घास-फूस की गाड़ी और कपास तथा लकडी की गाड़ी मिली। बिना तिलक का ब्राह्मण भी दिखाई दिया। इसी प्रकार नापित, विधवा स्त्री और सर्प के दर्शन हुए। इन सब के बाद रेंकता हुआ गधा दाहिनी ओर मिला। आटे की टोकरी और घी के घड़े के भी दर्शन हुए। यह सारे के सारे अपशकुन एक साथ हुए, पर पोतनपुर की सेना आगे बढती ही चली गई। अपनी शक्ति के मद मे चूर हुआ मनुष्य विवेकहीन हो जाता है। सेना चलती २ नदी के किनारे आ पहुंची। तब हस्तिनापुर-नरेश को समाचार दिया गया। समाचार सुनते ही राजा ने रणभेरी बजवा दी। सेना तैयार हुई। भविष्यदत्त के सिर पर सेनापति का सेहरा बांधा गया। भविष्यदत्त के रवाना होने का समय आया तब वह अपनी माता के पास गया। चरणो मे शीश नमा कर कह—माताजी! मैं तेरा बेटा रण मे जाता हूँ। आशीर्वाद दीजिए।

माता—बेटा, जुग-जुग जीओ और यशस्वी बनो। माता का आशीर्वाद है, तू विजयी होकर लौटेगा। वत्स! मुनिराज ने

भविष्यवाणी की थी कि तेरा वेटा राजा वनेगा, सो मुनि के वचन मिथ्या नही हो सकते ।

जो भाखे बालक छता, जो भाखे मुनिराय ।
जो भाखे वर कामिनी, सो निष्फल ना जाय ॥

कहते है, वालक के मुँह से निकली हुई वात, पतिव्रता स्त्री के मुख से निकली हुई बात और मुनिराज के मुखारविन्द से निकली हुई बात निष्फल नही होती ।

भविष्यदत्त अपनी माता का आशीर्वाद लेकर फिर तिलकसुन्दरी से मिलने गया । उसने कहा—मैं विजय प्राप्त करने जाता हूँ और तुम अपने धर्म का पालन करना । तब तिलकसुन्दरी ने नागमुद्रिका निकाल कर अपने पति की अंगुलि मे पहना दी और कुंकुम का तिलक निकाला । फूलो की माला गले मे पहनाई । फिर कहा-विजय प्राप्त करके शीघ्र दर्शन देना ।

इस पर भविष्यदत्त ने हँस कर कहा—हां, जल्दी ही आऊँगा, तुम्हे रानी जो वनाना है । इस प्रकार तिलकसुन्दरी से विदा लेकर वह अपने पिता और राजा के पास भी गया । उनका यथोचित विनय करके और आशीर्वाद लेकर भविष्यदत्त हाथी पर सवार हो गया । समस्त सेना सुसज्जित होकर उत्साह और उमग के साथ शत्रु को पराजित करने के लिए चल पड़ी । रणभेरी वजने लगी और वीरो की तलवारें बिजली के समान चमकने लगी । जव सेना ने प्रस्थान किया तो सामने वीणा, मृदंग वजने लगे, मगलगीत होने लगे, और तरह-तरह के शुभ शकुन होने

लगे। सामने जल से परिपूर्ण कलश, कुँवारी कन्या, फूलों का हार आदि दिखलाई दिये।

भाइयो ! जिसका अच्छा होने वाला होता है, उसे अच्छे ही शकुन होते हैं। शुभ शकुन शुभ भवितव्य की और अशुभ शकुन अशुभ भवितव्य की सूचना देते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य शकुन देख कर सावधान हो जाते हैं।

हस्तिनापुर की सेना, पोतनपुर की सेना के सामने जा डटी। दोनों ओर के गजराजो की चिंघाड, घोडो की हिनहिनाहट रथो की झनझनाहट और पदाति सैनिको की सनसनाहट से आकाश-मण्डल गूँज उठा। तुमुलध्वनि सर्वत्र व्याप्त हो गई। सेना के चलने से धूल उडी और आकाश मे छा गई उससे सूरज का तेज भी छिप गया।

भाइयो ! पहले राजा लोग नीति के अनुसार युद्ध किया करते थे। युद्ध मे अनैतिकता अर्थात् युद्ध के लिए सर्वसंमत नियमो का उल्लघन करने से युद्ध अधर्म कहलाता था और ऐसा करने वाला निन्दा का पात्र होता था। आजकल की भाति अनैतिकता उस समय नही वरती जाती थी। आज एक देश की दूसरे देश के साथ लड़ाई होती है तो लडाई से कुछ भी सरोकार न रखने वाली सामान्य जनता पर भी वमो की वर्षा की जाती है। उस वम-वर्षा से वेचारी स्त्रिया भी मरती है, अवोध वच्चे भी मारे जाते हैं और लूले-लँगड़े आदि आदमी भी मारे जाते हैं।

पहले सेनापति स्वय सेना के साथ, बल्कि सब के आगे रहता था और युद्ध करता था, आज सेनापति अपने केम्प में

बैठा-बैठा सैनिको को लडाता है। यह सब देख कर सहसा लगता है कि पहले वीरता का युद्ध होता था और आज कायरता का युद्ध होता है।

प्राचीन काल मे युद्ध का एक नियम ऐसा था कि हाथी वाला हाथी वाले से, घुडसवार घुडसवार से, रथी रथी से और पैदल पैदल से मुकाबिला करते थे। इसी नियम के अनुसार दोनो ओर की सेनाएँ आपस मे भिड़ गईं। जोरों से युद्ध होने लगा।

राजकुमार अनन्त भविष्यदत्त के सामने अपना हाथी बढ़ा कर आ पहुँचा। उसने भविष्यदत्त को ललकार कर कहा--अरे वणिक्! क्यो वृथा प्राण गँवाने आया है? जानता नही यह बाजार नही है—व्यापार की भूमि नही है, यह तो रणस्थली है! प्राण प्यारे हो तो भाग जा सामने से!

भविष्यदत्त ने कडक कर कहा—वणिक् की भुजाओ की शक्ति देखनी हो तो सामने आ जाओ। यही वणिक् तुम्हें बन्दी बनाएगा और अपने श्वसुर के चरणों पर नाक रगडने के लिए विवश करेगा। इसके बाद राजकुमार अनन्त जब निकट आया तो उसी समय भविष्यदत्त ने दानासुर का स्मरण किया। दानासुर अदृश्य रूप मे उपस्थित हो गया। भविष्यदत्त अपने हाथी पर से उछल कर अनन्तकुमार के हाथी पर जा पहुँचा। राजकुमार हक्का-बक्का रह गया। भविष्यदत्त ने उसी का साफा उतार कर उसकी मुश्कें बाँध दीं।

राजकुमार की यह दुर्दशा देखकर पोतनपुर—नरेश स्वयं दौड़ा आया। उसने राजकुमार का बचाव करना चाहा, मगर उसकी भी वही दशा हुई जो अनन्त की हुई थी। वह भी बन्धन-बद्ध हो गया। राजकुमार और राजा का कोई भी अस्त्र-शस्त्र कामयाब न हो सका।

भविष्यदत्त चाहता तो उस समय राजकुमार और राजा का सिर उतार सकता था, मगर वह विवेकवान् था। उसने निरर्थक हिंसा करना उचित नही समझा। अतएव दोनो को बाँध लिया।

राजा और राजकुमार जब बन्दी बन गये तो उनकी सेना मे खलबली मच गई। सैनिक युद्ध का मैदान छोड कर भागने लगे। जो मौजूद रहे, उन्होने हथियार डाल दिये। युद्ध बन्द हो गया। हस्तिनापुर की सेना मे हर्ष ध्वनि गूज उठी। जय-जयकार के शब्दो से दिगदिगन्त व्याप्त हो गया। चारो ओर आनन्द ही आनन्द फैल गया।

भविष्यदत्त ने राजा और राजकुमार को कैद करते ही और उनकी सेना के शस्त्र डालते ही लडाई बन्द करने का आदेश दे दिया, जिससे क एक भी मनुष्य का निरर्थक वध न होने पावें।

भाइयो ! आप में से अधिकांश वणिक् हैं और भविष्यदत्त भी वणिक् ही था। पहले बतलाया जा चुका है कि वह धर्म तत्त्व का भी जानकार था। फिर वह युद्ध मे क्यो सम्मि-

लित हुआ ? यह प्रश्न आपके मन मे उठ रहा होगा । परन्तु सारी वस्तु स्थिति पर आप विचार करेगे तो आपको मालूम हो जायगा कि उसने जो कुछ भी किया, वह श्रावकधर्म की मर्यादा के बाहर नही था । भविष्यदत्त ने किसी की औरत या किसी का राज्य छीनने के लिए युद्ध नही किया था । पोतनपुर-नरेश उसकी स्त्री को छीनना चाहता था और वही सेना लेकर लड़ने आया था । इस अनीति का प्रतिकार करने के लिए ही भविष्य को लडना पडा । अगर अनीति के सामने वह नतमस्तक हो जाता और तिलका एव सुमति को उसके हवाले कर देता तो घोर अधर्म होता । इस कायरतापूर्ण कृत्य की ऐसी बुरी छाप दुनिया पर पडती कि धर्म खतरे मे पड़ जाता । स्वच्छन्दता का दौर शुरु हो जाता । पतिव्रत धर्म का कोई मूल्य न रहता । अतएव भविष्यदत्त ने सापराध की विरोधी हिसा का मार्ग ग्रहण किया । उस हिंसा को अहिसा नही कहा जा सकता, तथापि उसे श्रावकधर्म को नष्ट करने वली हिंसा भी नही कहा जा सकता ।

सच्चा अहिसक वीरता दिखलाने के अवसर पर कायरता का आश्रय नही लेता । कायर मे अहिसा की सच्ची भावना होती ही नही है । वह तो अपनी कायरता को अहिसा के पर्दे में छिपाने का प्रयास करता है । भविष्यदत्त वीर अहिसक और धर्मनिष्ठ श्रावक था । वह अपने धर्म की मर्यादा को भलीभाति जानता था । इसी कारण उसने निरर्थक रक्त की एक भी बूद नही वहाई । शत्रु के शस्त्र डालते ही फौरन उसने युद्ध बन्द कर देने का आदेश दे दिया । इसे कहते हैं विवेक ।

दूसरी बात यह भी ध्यान मे रखनी चाहिए कि वीरता का सम्बन्ध जाति से नही है । कोई वणिक् भी वीर हो सकता है और कोई क्षत्रिय भी कायर हो सकते है । इतिहास इसकी साक्षी है । अतएव अपने को वणिक् समझ कर उत्साहहीन होना योग्य नही है ।

६-११-४८ }

राष्ट्र-धर्म

स्तुतिः—

मास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्धमहाप्रभावः,
सूर्यातिशायिमहिमाऽसि मुनीन्द्र ! लोके ॥

भगवान् ऋषभदेवजी की स्तुति करते हुए आचार्य महाराज फर्माते हैं—हे सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान, पुरुषोत्तम, ऋषभदेव भगवन् ! आपकी कहाँ तक स्तुति की जाय ? हे प्रभो ! आपके कहां तक गुण गाये जाएं ?

प्रभो ! आपको उपमा द्वारा समझना अथवा समझाना चाहे तो किसकी उपमा दे ? ससार मे सब से अधिक प्रतापशाली

और तेजस्वी पदार्थ सूर्य है। उससे आपकी उपमा देना चाहते है तो विचार करने पर प्रतीत होता है कि सूर्य मे और आप मे तो अत्यन्त अन्तर है। सूर्य नियत समय के पश्चात् अस्त हो जाता है किन्तु आपका ज्ञान निरन्तर प्रकाशमान रहता है। वह तीन काल मे कभी, एक क्षण के लिए भी अस्त नही होता।

दूसरे, सूर्य समस्त विश्व को प्रकाशित नही करता। वह पृथ्वी के कुछ भाग को ही प्रकाशित कर पाता है। मगर आप एक साथ तीनो लोको को प्रकाशित करने वाले है। ऊर्ध्वलोक, मध्य-लोक, और साथ ही अधोलोक-सब हथेली पर रक्खे आँवले के समान, आपके ज्ञान मे प्रतिबिंवित होते हैं।

तीसरे, आकाश मे जब बादल आ जाते हैं तो सूर्य का प्रकाश रुक जाता है। परन्तु ससार का कोई भी पदार्थ आपके ज्ञान के आलोक को अवरुद्ध करने मे समर्थ नही है। क्या बादल और क्या राहु-केतु, किसी के भी द्वारा आपका ज्ञान प्रतिहत नही होता।

इस प्रकार विचार करने पर प्रतीत होता है कि हे मुनियो के नाथ! आप सूर्य से भी बढकर हैं। ऐसे जिनेन्द्रदेव भगवान् ऋषभदेव है। उन्ही को बार-बार हमारा नमस्कार हो।

भाइयो! राष्ट्र धर्म, राजनीति, समाज व्यवस्था आदि का सिलसिला भगवान् ऋषभदेवजी के जमाने से ही चल रहा है। भगवान् ऋषभदेव ही उस समय सब नियमो के निर्माता थे। वे जब गृहस्थावस्था मे थे तब भी तत्कालीन मनुष्यो मे सर्वश्रेष्ठ

ज्ञानी थे। क्योंकि दुनियाँ मे देखा जाता है कि सब की बुद्धि समान नही होती है। सामान्य और विशेष का अन्तर होता ही है। यो तो प्रत्येक मनुष्य ही नही, बल्कि कटी-पतंग और यहां तक कि निगोद के जीव का शुद्ध स्वरूप भी समान ही है, परन्तु कर्म रूप उपाधि के कारण प्रत्येक जीव को बुद्धि मे अन्तर होता ही है। जिस जीव के ज्ञानावरण कर्म का जितना क्षयोपशम होता है, उतना ज्ञान उसकी आत्मा में प्रकट होता है। किसी में क्षयोपशम कम और किसी मे ज्यादा होता है।

आजकल की दुनिया मे बहुत-से लोग साम्यवाद पर बहुत जोर देते हैं। उनके खयाल से सब मनुष्य समान होने चाहिए। परन्तु कदाचित् आप धन की दृष्टि से और मकान आदि की दृष्टि से समानता ला दे, किन्तु बुद्धि मे तो समानता नही ला सकते। बहुत करोगे तो खाने-पीने और कपड़े मे समानता ले आओगे पर बुद्धि मे तो समानता नही ला सकते। आज मनुष्य मनुष्य मे जितना बौद्धिक अन्तर देखा जाता है, उसे पूरी तरह मिटा सकना सभव नही है। अनिवार्य शिक्षा की योजना लागू हो सकती है और हो सकता है कि कोई मनुष्य अक्षर ज्ञानहीन न रहे परन्तु प्रत्येक मनुष्य उपाधिधारी बन जाय, एक ही विषय में वह उपाधि प्राप्त करे और बाद मे सब की बुद्धि समान ही हो, यह असम्भव है। प्रथम तो संसार मे पाया जाने वाला रुचिभेद मिटाया ही नही जा सकता। कोई विज्ञानशास्त्र मे रुचि रखता है तो कोई साहित्य मे इन की शाखाएँ भी अलग-अलग हैं और विभिन्न लोगों की रुचि विभिन्न शाखाओं की तरफ दौड़ती है और जिसकी रुचि जिस विषय में दौड़ती है, वह उसी विषय मे निष्णात बनता है। इस

अन्तर को कौन मिटा सकता है ? फिर एक ही उपाधि के धारक अनेक लोगो के ज्ञान मे भी बहुत अन्तर देखा जाता है। इस अन्तर को इन्द्र भी नही मिटा सकता।

भाइयो ! दो भाई सगे क्यों न हो परन्तु पाप, पुण्य और बुद्धि को इधर उधर नही ले सकते। आप कहते हैं कि हम साम्यवादी हैं मगर एक को बुखार चढ़ेगा और दूसरे को नही चढेगा तो आप क्या दोनों को समान बनाने की चेष्टा करेंगे ? दूसरे को भी बुखार चढाएँगे या एक का बुखार आधा-आधा करके दोनो को बाट देगे ? एक को टी.बी. (राजयक्ष्मा) की बीमारी हो गई और दूसरे को नही हुई तो आप क्या करेंगे ? भाई, यह बीमारी पाप का फल है। इस फल को इधर से उधर नही किया जा सकता। इसी प्रकार पुण्य के फल को नही बांटा जा सकता। पुण्य के फलस्वरूप आपको सुन्दर शरीर मिला हो, उत्तम स्वर मिला हो तो आप अपने पडोसी या भाई को वह सुन्दरता या सुस्वरता किस प्रकार बाट देगे ? इस तरह पुण्य के फल को आप तो क्या, अवतार समझे जाने वाले पुरुष भी इधर से उधर नही सरका सकते। उसमे न्यूनाधिकता करने की शक्ति किसी मे नही है। पत्नी की आखे दुखती हो तो पति कितनी ही सहानुभूति और समवेदना प्रकट क्यो न करे मगर उसकी वेदना का कुछ भाग ले नही सकता।

कई लोग यह भी कहते हैं कि पाप पुण्य की बाते ढकोसला हैं। वास्तव मे न पुण्य है, न पाप है। मगर पाप न होता तो रामचन्द्रजी जैसे उत्तम पुरुष को वनवास क्यो भोगना पडता ? कृष्ण को जन्म लेते ही चुपके से गोकुल मे क्यो जाना पड़ा ? पुण्य

न हो तो कोई स्वस्थ, बुद्धिमान्, प्रतापी और प्रभावशाली क्यो होता है ? आज जवाहरलाल नेहरू जिधर जाते हैं उधर ही उन्हे अनुपम सम्मान मिलता है । क्या किसी भी दूसरे हिन्दुस्तानी को इतना सम्मान मिलता है ? गाधीजी के निधन पर सब ने निशान झुकाए । दूसरे लोग भी प्रतिदिन हजारो की सख्या मे मरते हैं । उनके मुहल्ले वाले भी उनके लिए शोक नही मनाते । मगर गाधीजी की मृत्यु पर समस्त विश्व मे शोक मनाया गया ! कहो, किस प्रकार मनुष्य-मनुष्य मे बराबरी हो सकती है ?

जो देश साम्यवादी होने का दावा करते है, उनके यहाँ क्या यह भिन्नता नही है ? रूस के तानाशाह स्टालिन और एक साधारण मजदूर मे क्या समानता है ? एक आदमी के इशारे पर लाखो-करोडो आदमियो का बलिदान हो जाता है । क्या यही साम्यवाद है ? तात्पर्य यह है कि पुण्य और पाप के फल में किसी भी प्रकार उलटफेर नही हो सकता । अतएव सुख-दु.ख भी सबके न्यारे न्यारे ही होते है । बुद्धि भी सब की अलग-अलग प्रकार की होती है । उसमे समानता लाई नही जा सकती ।

आप यहां से जाकर घर पर भोजन करेगे । किन्तु गेहूँ पहले के लाये हुए हैं, उन्ही से आपके लिए रोटी बनी है । कपड़े पहनोगे तो पहले सिले हुए ही पहनोगे । अभी-अभी बनवाकर और सिलवाकर तो नही पहनोगे ! मकान भी पहले बनवा रक्खा है और उसी मे रहते हो । तुरत-फुरत में कोई मकान नही बनता और न ऐसे ही मकान में रहने का कोई आग्रह करता है । इसी प्रकार पहले जन्म मे जिसने जैसा पाप या पुण्य उपार्जन किया

है, वही इस जन्म मे उसके आगे आ रहा है। उसी का फल भोगने के लिए प्रत्येक जीवधारी विवश है।

पुण्य-पुण्य मे भी तरतमता होती है। राम का जो पुण्य था, था दशरथ का नही था। आज राम के नाम पर लाखो मन्दिर वने हुए हैं किन्तु दशरथ के नाम का एक मन्दिर नही है। जो चारो धाम की तीर्थयात्रा करके आया हो, उससे पूछोगे तो वह यही कहेगा कि दशरथ के नाम का तो एक भी मन्दिर कही देखने में नही आया। भगवान् ऋषभदेव का आज जो नाम है और उनका नाम जिह्वा पर आते ही जितनी भक्ति और श्रद्धा हृदय मे उत्पन्न होती है, उतनी क्या उनके पिता के प्रति होती है? श्रीकृष्णजी का जितना पुण्य था उतना क्या उनके पिता वसुदेवजी का भी था?

एक गाँव मे किसी पटेल का पाडा मर गया तो गाव के लोग आए और कहने लगे गजब हो गया कि आपका पाडा मर गया! किन्तु जब पटेल मरा तो कोई कहने को नही आया। वास्तव मे लोग पहले पाडे का शोक मनाने नही गये थे, किन्तु पटेल जिंदा था और उसके पुण्य का उदय था तो वे आये थे। जब स्वय पटेल ही चल बसा, दीपक ही गुल हो गया तो फिर क्या हो सकता है?

भाइयो! ससार के प्रत्येक प्राणी के साथ पुण्य-पाप लगा हुआ है। उस पुण्य और पाप मे विविधता है, भिन्नता है और तरतमता है। इसी कारण उनके फल मे भी यह सब बाते पाई जाती है। इन्हे मिटाने की शक्ति किसी मे नही है। यही बात

बुद्धि के विषय मे है । अपनी-अपनी समझ न्यारी-न्यारी होती है। एक आदमी राजा हरिश्चन्द्र की कथा पढ़-सुन कर कहता है—धन्य हैं राजा हरिश्चन्द्र, जिन्होने सत्य की रक्षा के लिए घोर से घोर कष्ट सहन किये। नाजुक से नाजुक प्रसग पर भी वे अपने धर्म से च्युत न हुए। और यही कथा सुनकर दूसरा कहता है—हरिश्चन्द्र मे समझ नही थी। स्वप्न की वात को सत्य की तरह समझ कर अपनी पत्नी और पुत्र को वेच देना और अपने आपको चाण्डाल का दास वना लेना कोई बुद्धिमत्ता की वात नही थी। हरिश्चन्द्र सनकी थे और सनक में आकर ही उन्होने अपनी पत्नी और पुत्र को घोर मुसीवत मे डाल दिया। यह सव समझ का ही फेर है। सबकी समझ एक सी नही होती।

एक आदमी की वुद्धि ऐसी तीक्ष्ण होती है कि वह प्रश्न करते ही फौरन समुचित उत्तर दे देता है और दूसरे की बुद्धि मोटी होती है। उसे उत्तर नही सूझता। किसी ने प्रश्न किया—क्यो साहब, तेल सफेद है, बत्ती भी सफेद है और आग लाल है। फिर दीपक से काला-काला काजल क्यो निकलता है?- दूसरे ने उसी समय उत्तर दिया—यह मामूली वात भी आपकी समझ मे नही आती? दीपक काले अधकार को भक्षण करता है। इसी कारण काला काजल निकलता है। जो जैसा खाएगा वैसा ही निकालेगा।

किसी ने किसी से पूछा—दुनिया का मध्य भाग कहा है? उसने उसी समय उत्तर दिया—यहा खूटा गाड़ो और उसमे एक रस्सा बाधो। रस्से को पकड़ कर चारो ओर घूमो तो तुम यही के यही आजाओ। अतएव यही दुनिया का मध्य भाग है।

एक आदमी ने दूसरे से पूछा--भाई, आपको नीद क्यो नही आती ? तब उसने उत्तर दिया—मैं इसी सोच-विचार मे पड़ा रहता हूँ कि ऊँट के पेट मे यह गोल-गोल कौन बनाता है।

मतलब यह है कि मनुष्य-मनुष्य की बुद्धि न्यारी-न्यारी है। इस अन्तर को कौन मिटा सकता है ? साम्यवादी रूस मे जाकर देखोगे तो वहा भी आपको ऐसा ही बौद्धिक अन्तर दृष्टिगोचर होगा, जैसा कि इस देश मे है और दूसरे सब देशो मे पाया जाता है।

एक सेठ गद्दी पर तकिये का सहारा लिये बैठा है, परन्तु उसके पेट मे दर्द हो रहा है। क्या उसका धन उसके दर्द को दूर कर सकता है ? अगर ऐसा होता तो धनवान् इस पृथ्वी पर अजर-अमर हो जाते। पैसे से पाप बदल कर पुण्य नही बनाया जा सकता। वह तो अपने स्वरूप मे ही अपना फल देता है और देता रहेगा।

भगवान् ऋषभदेव से पहले 'मनु' हो चुके है। मेरा मतलब उन मनु से नही जिनकी बनाई हुए मनुस्मृति आज मिलती है। बल्कि उन कुलकरो से है जो भगवान् ऋषभदेव से पहले हो चुके थे और जो तत्कालीन समाज के व्यवस्थापक या नेता थे। ऐसे कुलकर पन्द्रह हुए है। प्रारभिक कुलकरो के समय मे 'हा' का दण्ड था। अगर कोई कुछ अपराध कर बैठता तो उसके सामने 'हा' कह दिया जाता था। अर्थात् उसके कृत्य पर अफ़सोस जाहिर किया जाता था। इतने से ही वह लज्जित होकर सुधर जाता था। बीच के कुलकरो के काल मे 'मा' का दण्ड आरम्भ

हुआ। जब 'हा' कहने का असर चला गया तो दण्ड व्यवस्था कुछ कठोर की गई। 'मा' अर्थात् ऐसा कृत्य मत करना, इस प्रकार कहने से लोग सुधर जाते थे। जब कुछ ढिठाई बढ़ी और 'मा' से काम न चला तो 'धिक्' दण्ड की व्यवस्था की गई। दुष्कृत्य करने वाले को धिक्कार दिया जाने लगा। फिर तो धीरे-धीरे दण्ड की कठोरता बढ़ती ही चली गई, यहां तक कि शूली और फांसी के दण्ड का भी आविष्कार हुआ। इस दण्ड व्यवस्था के इतिहास से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि सब कालों में, सब लोगों की बुद्धि और समझ एक सी नही होती। अगर सभी सद्बुद्धि सम्पन्न हो जाएँ तो किसी को भय दिखलाने की आवश्यकता ही न रहे। सभी लोग एक सी समझ के होकर मर्यादा मे चले तो जेलखाने की, न्यायाधीशों की, पुलिस और सेना की एवं वकीलों की आवश्यकता ही क्या रहे? मगर ऐसा साम्यवाद इस दुनियां मे आने वाला नहीं है।

साम्यवादी लोग धर्म का विरोध करते है। उनका खयाल है कि धर्म, पुण्य और पाप का वर्णन करके समाज में विषमता को कायम रखने मे सहायक होता है। मगर जैसा कि मैं अभी बतला चुका हूँ, अगर पुण्य-पाप की सत्ता स्वीकार न की जाय तो मनुष्य-मनुष्य मे नाना प्रकार की जो विभिन्नताएँ पाई जाती है, उनका आधार क्या होगा? अतएव साम्यवाद का प्रसार करने के लिए धर्म का विरोध करना बुद्धिमत्ता नही है। राष्ट्र का टिकाव धर्म पर ही हो सकता है। धर्म को भले ही कोई नीति का नाम दे या और कोई नाम दे दे, मगर वही एक चीज है जो दुनिया मे अमन-चैन कायम रख सकती है। जिस देश मे धर्म का पालन

नही किया जाय, उस देश की स्थिति बिगड जाती है और उसका टिकाव होना कठिन हो जाता है। धर्म कहता है:—

थोड़े जीने के लिए दीन-जनता के अधिकार कुचलते हो।
ईश्वर से विमुख हो देशद्रोही,क्यों परमारथ से टलते हो॥

भाइयो ! दुनिया मे कितना जीना है ? कौन जीने का पट्टा लिखवा कर लाया है ? तुम्हारे कर्मो ने कुछ पलटा खाया है और तुम ऊँचे दर्जे पर आ पहुँचे हो, या तुम्हे कुछ अधिकार प्राप्त हुआ है तो ऐसे ही काम करो कि तुम्हारी उन्नता बढ़ती जाय। नीचे गिरने के काम मत करो। उदाहरणार्थ-कोई आदमी किसी प्रांत का गवर्नर (राज्यपाल) बन गया है तो उसे सत्ता के मद मे उन्मत्त नही हो जाना चाहिए। उसे अपने पद का अभिमान नही करना चाहिए। बल्कि उस समग्र प्रान्त के निवासियो के प्रति उसे उत्तरदायी बनना चाहिए और समझना चाहिए कि मुझे प्रात की सेवा करने का सौभाग्य मिला है। उस प्रान्त में अगर एक भी मनुष्य दु खी होता है, बेकार या बेरोजगार होता है, भूखा रहता है या दूसरे के द्वारा सताया जाता है, तो उस प्रान्त के शासक की नीद हराम हो जानी चाहिए। इस प्रकार की सच्ची सेवा-भावना आने पर ही देश का कल्याण हो सकता है। अगर बडे हुए हो तो छोटो को सुख-सुविधा पहुँचाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। ऐसा किये बिना तुम्हारा बडप्पन व्यर्थ है। छोटो के अधिकारो को कुचलने के लिए तुम बडे नही बनाये गये हो, बल्कि छोटो की सेवा करने के लिए ही तुम्हे बडा पद दिया गया है। जो कोई दूसरे के अधिकार को कुचलते हैं वह देशद्रोही हैं और

धर्म विरोधी हैं। वह जनता के अविश्वास का पात्र बनता है और ईश्वर से विमुख होता है।

सदा न्याय की बात कहो, चाहे जग रूठे रूठन दो।
शुभ ध्येय पै अपने डटे रहो, पर सत्य कभी ना छूटन दो॥

भाई! तुम सदैव न्याय की बात कहो। न्याय की बात कहने से अगर सारा संसार एक बार तुम्हारा विरोधी हो जाय तो हो जाने दो। समझ लो कि अभी लोग तुम्हारी बात को समझ नहीं पाये हैं। जब समझ जाएंगे तो आप ही कबूल कर लेंगे। संसार में समय-समय पर जो सुधारक होते हैं, उनकी बातों को जनता सहसा स्वीकार नहीं कर लेती। मगर वे अपनी बात पर डटे रहते हैं और जनता के विरोध की परवाह नहीं करते तो अन्त में उनकी बात सुनी जाती है, समझी जाती है और मानी भी जाती है। मगर ऐसा करने के लिए साहस और धैर्य की आवश्यकता होती है। जिनमें साहस नहीं है, धैर्य भी नहीं है, वे अपनी बात पर स्थिर नहीं रह पाते। परिणाम यह होता है कि वे अपने ध्येय से गिर जाते हैं और न्याय से च्युत हो जाते हैं। इसीलिए यहां कहा गया है कि जगत् रूठ जाय तो रूठ जाने दो, परन्तु सत्य को मत छोड़ो। सत्य कहो या धर्म कहो उसका पालन प्रत्येक स्थिति में करना चाहिए। वह धर्म क्या है? हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, परस्त्री की ओर दूषित दृष्टि न डालना, झूठी गवाही न देना आदि। यह सब धर्म है और यदि इनके विरुद्ध व्यवहार किया गया तो दुनिया योग्य नहीं समझेगी। हम स्वयं तकलीफ सहन कर लें, मगर दूसरे को तकलीफ न दें, ऐसा वर्ताव करना ही सच्चा राष्ट्र-धर्म है।

जो स्वयं आपदा सह करके, औरों की विपद मिटाता है।
वह अपना हित करता है जग मे अनुपम सुयश कमाता है ॥

भाइयों ! जो लोग रात-दिन अपने सुख के लिए प्रयत्न-शील रहते हैं, जो अपने सुख के सामने दूसरे के सुख की कुछ भी परवाह नही करते, यहां तक कि अपनी सुख-सुविधा के लिए दूसरो को दु.ख देने में भी संकोच नही करते, वे क्षुद्रहृदय मनुष्य है। उनकी बुद्धि सकीर्ण है। वे अपने लिए ही दु.ख के बीज बोते हैं। इसके विपरीत जो उदार आशय वाले उत्तम पुरुष होते हैं वे स्वयं विपत्तिया सहन कर लेते हैं, किन्तु दूसरो की विपत्ति दूर करने के लिए उद्यत रहते हैं। ससार मे जितने भी महान् पुरुष हुए हैं, इसी नीति पर चले हैं। बल्कि यो कहना चाहिए कि इसी नीति पर चल कर उन्होने महत्ता प्राप्त की है। जो पर दु.ख को आत्मीय दुःख मान कर उसे दूर करने मे लग जाते हैं, वे घाटे मे रहते हो सो बात नही है। प्रथम तो उन्हे आत्म-सन्तोष का अनुभवगम्य आनन्द प्राप्त होता है। फिर उनकी आत्मा का परम कल्याण होता है। वे चाहे यश की कामना न करें, सिर्फ कर्त्तव्य की आन्तरिक प्रेरणा से ही अपने कर्त्तव्य का पालन करें, परन्तु उन्हे यश अवश्य मिलता है। ससार एक स्वर से उनकी प्रशसा के गीत गाता है, उनके प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त करता है, उनके चरण चूमता है।

महाराज विक्रमादित्य के विषय मे प्रसिद्ध है कि वे दिन भर राज्य के कार्यों की देखरेख करते थे और रात्रि में वेष बदल कर नगर मे चक्कर लगाते थे। वे प्रजा की तकलीफो को जान-

कारी करने के लिए इतना कष्ट सहन करते थे । सदैव उन्हे इस बात का ध्यान रहता था कि मेरे शासन मे कोई भी प्रजाजन दुखी न होने पाये अगर प्रजा को कष्ट हुआ तो मेरा शासन किस काम का है ? इस प्रकार की विचारधारा से प्रेरित होकर उन्होंने प्रजा के हित के लिए वडी-वड़ी तकलीफे बर्दाश्त की । इस सम्बन्ध मे कई उदाहरण सुने जाते है ।

एक बार राजा ने घोषणा की कि मेरे नगर मे कोई व्यापारी माल लेकर आवे और यदि वह माल न विके या विकते-विकते वच जाय तो उस माल को सरकार खरीद लेगी । राजा दिन के तीसरे पहर स्वय घोड़े पर सवार होकर निकलते और जिसका माल विकने से वच जाता, राज्य के कोठार मे भिजवा देते और उसका यथोचित मूल्य व्यापारी को चुका दिया जाता था । राजा सोचता था कि राज्यभण्डार में जो धन है, वह सब प्रजा का है और प्रजा के काम मे ही आना चाहिए । अगर वह प्रजा के काम न आया तो उसका होना और न होना समान है ।

महाराज विक्रमादित्य के प्रजाहितकारी ऐसे कर्मों की बदौलत ही आज तक उनका यश फैला हुआ है । भारत का वच्चा-वच्चा उनके नाम से परिचित है और उनकी यादगार मे आज तक विक्रम सम्वत् चल रहा है ।

यहाँ (जोधपुर) के स्वर्गीय राजा उम्मेदसिहजी ने सम्वत् १९९६ के वर्ष मे, जव कि दुष्काल पडा, जनता के हित मे बहुत अच्छा काम किया था । उसका स्मरण करके आज भी मारवाड़ की जनता उनके गुण गा रही है ।

बहुत-से लोग ऐसे हैं जिनके पास धन की कमी नही है, मगर वे उसका उचित उपयोग नही करते। वे सांप की तरह उस धन के मालिक बने बैठे रहते है और सन्तोष मान लेते हैं। अन्त मे यो ही चल बसते हैं। वह धन उनके किसी काम नही आता। वास्तव मे जिस धन से देश जाति, समाज और धर्म का भला न हुआ, वह धन वृथा है। ऐसे धनवान् का जीवन भी वृथा है। वह उस धन का मालिक नही, गुलाम है। उसकी जिन्दगी किसी के काम नही आई और उसका धन भी किसी के काम नही आया। तब वह किस मतलब का है? अरे, जीवन और धन तो तभी सार्थक होता है-जब कि उसे परहित मे लगाया जाय। परहित करने वाला, परहित के द्वारा स्वहित भी कर लेता है। और स्वहित मे ही तल्लीन रहने वाला न परहित कर पाता और न स्वहित ही कर पाता है। उसका धन और जीवन अकारथ जाता है।

कल्पना करो ताड़ का एक खूब ऊँचा पेड खडा है। उसकी जरासी छाया है और वह छाया भी काटो की वाड मे पड रही है। वह किसी भी पथिक के काम नही आती। किसी थके-मादे का किंचित् भी उपकार नही करती। फिर वह किस मतलब की है? इसी प्रकार जिसका जीवन और जिसका धन दीन-दुखियो का दु.ख दूर करने मे व्यय नही होता, वह भी व्यर्थ है। कहा है.-

> श्वान-पुच्छ धन सूम का कौन काज पृथ्वीराज।
> तन ढंके न मच्छर उड़े, रखे न कुल की लाज॥

श्वान की पूछ और सूम का धन किस काम का? सूम

अर्थात् कृपण आदमी अपने धन को जमीन में गाड़ देता है और उसकी रखवाली किया करता है। बस इतना ही आनन्द उसे मिलता है। परन्तु भाइयों ! धन की सार्थकता क्या यही है कि उसकी रखवाली करते-करते मनुष्य मर जाय ? देखो भामाशाह जैसे धनवान् ने अपने धन का क्या उपयोग किया था ? अपनी प्यारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए उसने करोड़ों की सम्पत्ति महाराणा प्रताप के चरणों मे बिना मागे ही समर्पित कर दी थी। कब हुए महाराणा प्रताप और भामाशाह, परन्तु आज भी उनका यश ससार गाता है और युग-युग तक गाता रहेगा ! इनको कहते हैं धनवान् ! भामाशाह सच्चे अर्थ मे श्रीमान् थे। इस पृथ्वी पर न कोई मनुष्य सदा रहता है, न धन किसी के पास सदैव बना रहता है किन्तु मर्द जो काम अपने देश और धर्म के लिए कर जाते है, वही रह जाता है !

भाइयो ! आज यह भारतवर्ष तुम्हारी मातृभूमि-सकट मे है। अगरेज लोग करीब दो सौ वर्षों तक इसे चूसते रहे हैं। उन्होंने इसे गरीब और निर्बल बना दिया है। लम्बे संघर्ष के बाद अब यह देश स्वाधीन हुआ है। इसका नूतन निर्माण हो रहा है। याद रखना चाहिए कि किसी भी देश के निर्माण के लिए प्रत्येक देश निवासी जन को सहयोग देने की आवश्यकता होती है। थोड़े से लोग, चाहे वे कितने ही ईमानदार और परिश्रमी क्यो न हों, विशाल देश का निर्माण नही कर सकते। थोड़ा-थोड़ा सहयोग सभी को देना होगा। आपके पास अगर धन है तो आप धन के द्वारा देश-निर्माण मे भाग ले सकते हैं और यही आपका कर्त्तव्य है। प्रत्येक व्यापारी को कम से कम इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि वह देशहित के विरुद्ध कोई काम न करे। ऐसा प्रयत्न

मत करो कि जिससे देश के हित मे वाधा पहुँचती हो या देश की कठिनाइया बढती हो । बल्कि कठिनाइया दूर करने मे योग दो ।

यह जानकर खेद होता है कि देश की इस नाजुक परिस्थिति मे कई व्यापारी भाई योग नही दे रहे है । वे इस परिस्थिति से व्यक्तिगत लाभ उठाने की ही चेष्टा करते हैं । विशेषतया अन्न के व्यापारी और वस्त्र के व्यापारी चाहे तो देश की बडी सेवा कर सकते हैं । यह दोनो वस्तुएँ जनता की दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ हैं । इनकी कमी हो जाती है या कीमत बहुत बढ जाती है तो चारो ओर कोलाहल मच जाता है, गरीबों पर भारी मुसीबत आ पडती है । आज सरकार को अन्न की व्यवस्था करने के लिए अरबो रुपया खर्च करना पड रहा है । फिर भी जैसी चाहिए वैसी व्यवस्था नही हो पा रही है । अगर व्यापारी उदार दृष्टिकोण को अपना लें और अनुचित नफा कमाने की मनोवृत्ति का परित्याग कर दे तो समस्या बहुत अशो में सुलझ जाय । जिस वस्तु की कमी होती दिखती है, उसे अपने भँडार मे जमा कर लेने से और फिर अधिक कमी हो जाने पर मनमाने भाव पर बेचने से अव्यवस्था बढ गई है । इसी कारण सरकार को बाधित होकर राशन-प्रणाली और कण्ट्रोलप्रणाली अपनानी पड़ी है इससे सभी का कष्ट बढ गया है । इससे छुटकारा पाने का सब से उत्तम उपाय यही है कि व्यापारी भाई ईमानदारी के साथ काम करे । देशहित के खातिर अपने स्वार्थ को गौण कर दे और देश के हित मे ही अपना हित समझे । ऐसा करने से देश की आर्थिक स्थिति दृढ होगी और अन्त मे व्यापारियो को भी लाभ ही होगा । यदि इन बातो का ध्यान न दिया गया तो देश की नवीन प्राप्त स्वाधीनता

आनन्ददायिनी नही बन सकेगी । यही नही, व्यापारियो को भी महान् क्षति पहुँचेगी । व्यापार उनके हाथ से छिन जायगा ।

भाइयो ! जरा गम्भीर विचार करो । अपने कर्त्तव्य को सोचो । अमर होकर नही आए हो । फिर क्यों अनीति और अधर्म करके अपना और पराया अहित करते हो ? जब यहां का गढ बनने लगा, तब मानसिहजी ने कहा था:—

गढ रहे न गढ़पति रहे, रहे न सकल जहान ।
नृप मान कहे जग दो रहे, नेको बदी निदान ॥

न गढ रहे है, न गढपति रहे या रहने वाले हैं । दुनिया में दो बातें रह जाएँगी-एक तो नेकी और दूसरी बदी ।

देखो, राजा विक्रमादित्य ने बचे हुए माल को खरीदने का प्रण किया तो एक देव राजा की परीक्षा करने के लिए आया । उसने देवी माया से व्यापारी का रूप बनाया और वह फटे-टूटे कपड़ों का एक पुतला बना कर बाजार मे बैठ गया । उसे देखकर लोग पूछते—आप कौन हैं ?

वह बोला—व्यापारी हूँ ।
लोग—आप क्या माल लाये है ?
व्यापारी—देखिए न, मेरे पास यह चीज है ।
लोग—मगर भाई, इसका नाम क्या है ?
व्यापारी—इसे दरिद्रता का पुतला कहते हैं ।
लोग—इसमे क्या गुण है ?

व्यापारी--इसका सबसे बडा गुण तो यही है कि जिसके घर मे जाय, उसकी लक्ष्मी भाग जाय ।

लोग–अच्छा, इसकी कीमत क्या है ?

व्यापारी–सवा लाख रुपया ।

जिसने इस अनोखे व्यापारी की बात सुनी वही हँसने लगा । कोई मजाक करने लगा, कोई तालिया पीटने लगा और एक दूसरे से कहने लगा–ले लो, ऐसा माल फिर कभी हाथ आने वाला नही है !

तीसरा पहर हो गया । राजा अपने घोडे पर सवार होकर बाजार मे आया । पूछा गया—किसी का माल बिकने से बचा है ? वही व्यापारी राजा के पास पहुँचा । उसने कहा–अन्नदाता ! मेरा माल नही बिका है । उसने अपना पुतला राजा को दिखलाया और उसके गुणो का वर्णन भी सुनाया । व्यापारी का कथन सुन कर राजा सोच-विचार मे पड गया । उसने सोचा–अगर मैं अपना प्रण रखता हूं तो लक्ष्मी भाग जाती है और लक्ष्मी रखता हूँ तो प्रण चला जाता है । ऐसी स्थिति मे क्या करना योग्य है ? किन्तु—

सत मत छोडो हो नरा, सत छोड़े पत जाय ।
सत की बांधी लक्ष्मी, फेर मिलेगी आय ॥

आखिर राजा ने सत्य की ही रक्षा करने का विचार किया । व्यापारी को सवा लाख रुपये दिलवा दिये और उस पुतले को लक्ष्मी के भडार मे ही रखवा दिया । रात्रि हुई । राजा बिछौने

पर लेटा। उसी समय लक्ष्मीजी ने वहां आकर पूछा—राजन् ! सोते हो या जागते हो ?

राजा--जागता हूँ। कहिए, कैसे पदार्पण हुआ ?

लक्ष्मी—अब मै तुम्हे त्याग कर जाती हूँ, क्योकि तुमने मेरे दुश्मन को रख लिया है। जहां दरिद्रता हो वहा मैं नही रहती।

इतना कह कर लक्ष्मी चली गई। वह इधर-उधर घूम-फिर कर पिछली रात्रि मे फिर राजा के पास आई और कहने लगी- राजन् मैं तो तुम्हारे यही रहूँगी। एक कौने मे मैं भी पडी रहूँगी मैं इधर-उधर गई और देखा कि लोग सत्यहीन, धर्महीन और नीतिहीन हो रहे है। तू नीतिमान्, धर्मवान् और प्रणपालक है। इसलिए दरिद्रता रहेगी तो भले ही रहे। मैं भी एक कौने मे पडी रहूगी।

भाइयों ! इसीलिए मैं कहता हूँ कि सत्य बडी चीज है धर्म बडी चीज है और धन इनके आगे तुच्छ है। जहाँ सत्य और धर्म का वास होता है, लक्ष्मी खिची चली आती है।

आज भारतवासी शिवाजी को याद करते है। महाराणा प्रताप को याद करते है। क्या कारण है ? विचार करो कि उनकी नीति कैसी थी ? बात यही है कि जो महानुभाव स्वय कष्ट उठाकर देश की भलाई करते है, वे देशपूजित बन जाते हैं। ऐसे देशभक्तों की धर्ममय भावना पर ही राष्ट्र का अभ्युत्थान निर्भर करता है। धर्म बड़ी चीज है। धर्म से इसी जीवन में भी सुख-शान्ति प्राप्त होती है और यह शरीर छूट जाने पर भी सुख प्राप्त होता है। कहा है-

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥

भाइयो धर्म के विषय मे धर्माचार्यों ने फरमाया है कि धर्म ही सब मगलो मे उत्कृष्ट मंगल है। ससार मे अनेक मगल माने जाते है। कोई दही खाने मे मगल मानते हैं, कोई गुड खाने में। कोई अक्षत, हल्दी, पान आदि को मांगलिक समझते हैं। यह सब वस्तुएं एकान्त मगलमय नही हैं। कभी २ यह अमंगल रूप भी हो जाती हैं। परन्तु धर्म कभी अमगल नही होता। मगलमय धर्म सर्वोपरि है।

कोई-कोई लोग कहते हैं-धर्म की आवश्यकता नही है, किन्तु जिस दिन धर्म इस भूतल से उठ जायगा, माता और पत्नी मे भी अन्तर नही रह जायगा। धर्म के अभाव मे मनुष्य कुत्ते के समान बन जायगा !

एक बडे आदमी ने मुझसे पूछा—धर्म क्या चीज है ? मैं ने उससे कहा--धर्म को समझना चाहते हो तो पहले धर्म के विरोधी पाप को समझो। पाप को समझ लेने से धर्म जल्दी समझ मे आ जायगा। देखो, किसी प्राणी को सताना पाप है, झूठ बोलना पाप है, चोरी करना पाप है, परस्त्री को ताकना पाप है, धन का अमर्याद संग्रह करना पाप है, ममत्व रखना पाप है, क्रोध करना, घमण्ड करना, कपट करना और लोभ-लालच करना पाप है। राग-द्वेष करना भी पाप है। यह सुन कर उसने कहा—ठीक है। यह सब बात मेरी समझ मे आ गई।

मैंने कहा - अगर पाप को आपने समझ लिया तो धर्म भी आपकी समझ मे आ जाना चाहिए। इन पापो का आचरण न करना और अच्छे-अच्छे काम करना ही धर्म है। वेदव्यासजी कहते है.

अष्टादशपुराणेषु, व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय, पापाय परपीडनम् ॥

वेदव्यासजी ने लम्बे-चौडे अठारह पुराण बनाये। मगर उन सब का सार यह बतलाया कि परोपकार करना पुण्य है और पर जीव को पीडा पहुचाना पाप है। बस, यही धर्म है। जैनशास्त्र भी यही कहते है कि अहिसा, सयम और तप धर्म है। जहा धर्म है वहा सुख है। जिसने अपने अन्त. करण मे धर्म को धारण कर लिया है, उसे मनुष्यो की तो बात ही क्या है; देवता भी नमस्कार करते है। धर्मात्मा के चरण चूम कर देवता भी अपना अहोभाग्य समझते हैं। अतएव धर्म की बडी महिमा है। यह अनमोल वस्तु है। कहा भी है.

ज्ञान दुर्लभ है दुनिया मे, धर्म सब से अमोलक है।
यही जिनराज ने भाषा, धर्म सब से अमोलक है ॥

भाइयो ! ज्ञान प्राप्त होना बहुत कठिन है। जिनके पुण्य का उदय है, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हो गया है, वही शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। मगर धर्म सब से अमोलक है। भगवान् ने फर्माया है कि धर्म के समान अनमोल वस्तु और कोई नही है। कहा है: —

धन दे तन को राखिए तन दे रखिए लाज ।
धन दे तन दे लाज दे, एक धर्म के काज ॥

बीमार हो जाते हो तो धन खर्च करके भी शरीर की रक्षा की जाती है। लोग समझते हैं कि नीरोग हो जाएँगे तो फिर धन कमा लेंगे। नीतिकार इससे आगे कहते हैं-अगर इज्जत का सवाल खडा हो जाय तो उसकी रक्षा करने के लिए धन भी खर्च कर देना चाहिए और शरीर का भी उत्सर्ग कर देना चाहिए, क्योंकि धन और तन की अपेक्षा भी इज्जत वडी चीज है। इसे इज्जत कहो, लाज कहो, प्रतिष्ठा कहो, शान कहो, या पानी कहो। इसकी वडी कीमत है। पानी का मोल बहुत बडा है। कहा है—

पानी बिना हीरे पन्ने पुखराज मणि,
पानी बिन मोती की कीमत हलकानी है।
पानी से राम रावण पै चढाई करी,
पानी पै रावण ने लंका वीत जाना है ॥
पानी बिन घोड़े को रातब खुराक नही,
पानी बिन मछली ने हारी जिन्दगानी है।
कहे कवि ज्ञानी भाई ! जिनका गया है पानी,
मरना कबूल जिन्दगानी धूल धानी है ॥

भाइयो ! बिना पानी के हीरा, पन्ना, माणिक और मोती बेकार हैं। पानी के बिना दुनिया की सारी वस्तुएँ व्यर्थ हो जाती

हैं। पानी को संस्कृत भाषा मे "जीवन" भी कहते हैं । वास्तव मे प्राणी का अस्तित्व पानी के अभाव मे रह नही सकता। पानी के विना राजा और प्रजा के चेहरे पर नूर नही झलकता। पानी के ऊपर ही मोर बोलते हैं। सैनिक भी पानी की वदौलत ही अपने प्राणो की परवाह न करके युद्ध मे कूदते है। पानी पर ही राम ने रावण पर चढाई की और पानी के लिए ही रावण ने लका को नष्ट होने दिया! इसीलिए कहा गया है कि इज्जत को कायम रखने के लिए तन और धन भी दे देना चाहिए! मगर जब धर्म की रक्षा का प्रश्न उपस्थित हो तो तीनो चीजो को त्याग देना चाहिए। महाराणा प्रतापसिंह ने अपने धर्म की रक्षा के लिए घास की रोटियां खाना स्वीकार किया था। कहा है—

अपने धरम के वास्ते राणा प्रतापसिंह
बनवा कर रोटी घास की खाते थे किसी दिन।

उन्होने धर्म के लिए ही तो घोर मुसीबतें सहन की थी। तभी तो आज वे 'हिन्दवाना सूरज' कहलाते हैं।

एक बार बड़े लाट साहब उदयपुर गये। उन्होने महाराणा फतहसिंहजी के समक्ष उन्हे 'सितारे हिन्द' की पदवी देने का प्रस्ताव किया। तव महाराणा सोचने लगे कि दुनिया तो हमे हिन्दवाना सूर्य कहती है और यह मुझे तारा बनाने आये हैं! कहो भाई, कितनी वडी भारी बात है? आखिर उन्होने वह पदवी लेना अस्वीकार कर दिया। मेवाड़ का आदर्श-वाक्य रहा है—

जो दृढ राखे धर्म को तेहि राखे करतार ।

अर्थात् जो धर्म की रक्षा करेगा उसकी ईश्वर रक्षा करेगा। मगर ससार मे लडाईखोर तो बहुत मिल जाते हैं किन्तु धर्म रखने वाले विरले ही होते है। सच्चा बहादुर वही है जो धर्म पर टिके, क्योंकि धर्म का दर्जा सबसे ऊँचा है । सभी चीजे धर्म से नीची हैं।

उठो ब्रादर कस कर कमर तुम धर्म की रक्षा करो ।
श्री वीर के तुम पुत्र होकर गोदड़ो से क्यों डरो ॥

भाइयो ! तुम महावीर की सन्तान हो। महावीर का चिह्न सिह का है। सिह पराक्रम का प्रतीक समझा जाता है । प्रथम तो भगवान् का नाम ही वीरता का सन्देश देने वाला है और फिर सिह का चिह्न भी वीरता और पराक्रम की प्रेरणा करता है। ऐसी स्थिति मे तुम क्या डरपोक बनोगे ? जो डरपोक है वह वीर की सन्तान कहलाने योग्य नही है। जब तुम्हारे हृदय मे सच्ची धर्मभावना जागृत होगी तो तुममे निर्भयता भी आ जायगी । धर्मनिष्ठ पुरुष मे कैसी निर्भयता होती है,इस सम्बन्ध मे एक ऐतिहासिक उदाहरण लीजिए—

वीरो की कथा ये सुनो सज्जन जन सारे,
नही तजा धर्म गोविन्द के राजदुलारे ॥

विक्रम सम्वत् सोलह सौ के लगभग सिखो के प्रसिद्ध धर्मगुरु गोविन्दसिहजी हो गये हैं। उस समय औरगजेब बादशाह था। उसी समय की यह कथा है।

दिल्ली में औरंगजेब राज्य करता था,
हिन्दुओ पर अत्याचार बहुत करता था ।
नहिं खौफ़ खुदा का दिल में वह धरता था,
जो करे सामना कत्ल उसे करता था ।।
संवत सौलह सौ के इतिहास पुकारे ॥१॥

औरंगजेब धर्मान्ध बादशाह था । वह चाहता था कि समग्र भारतीय जनता को मुस्लिम धर्म मे दीक्षित किया जाय : अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह बडे निर्दय कार्य करता था । जो उसकी इच्छा के सामने मस्तक न झुकावे उसका कत्ल कर देना उसके लिए कोई बड़ी बात नही थी । वास्वत मे वह बडा अत्याचारी था । उसे ईश्वर का भय नहीं था । भय होता तो बादशाह की हैसियत से वह हिन्दुओ और मुसलमानो को समान समझता पर वह ऐसा नही समझता था । वह हिन्दूजाति को मुसलमान बनाने की धुन मे था । परन्तु ऐसा होना कदापि सम्भव नही था । आज कोई हिन्दू अगर चाहता है कि एक भी मुसलमान न रहने पावे तो उससे पूछना चाहिए कि-भाई, तुम तो ईश्वर को परमपिता और सृष्टि का जनक मानते हो । अगर मुसलमान जगत् मे रहने योग्य नही है तो ईश्वर ने उन्हे क्यो बनाया ? इसी प्रकार जो मुसलमान हिन्दुओ के अस्तित्व को गवारा नही करते, उनसे भी यही प्रश्न किया जा सकता है । हिन्दुओं को मुसलमान बनाने वाला मुसल्मान क्या खुदा की गलती को साफ करना चाहता है ? या यह खुदा का भी खुदा बनना चाहता है ?

मुसलमानों ने खुदा को छोड़ा हिन्दू नाता राम से तोड़ा।
दोनों बने खून के प्यासे, न जाने क्या आई आसे ॥

भाइयो ! जरा विचार तो करो कि जो लोग एक दूसरे का बुरा चाहने वाले हैं, वे क्या अपने आपको खुदा से ज्यादा अकलमन्द नही समझते ? खुदा ने कुरान मे कहा है—'रबुल आलम।' अर्थात् सारी दुनिया रब की है। इसमे क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी आ गये। विचार करना चाहिए कि अगर खुदा मुसलमानों का ही होता तो 'रबुल मुसलमान' कहता। हिन्दुओ मे भी परमात्मा 'जगदीश्वर' कहलाता है। जगत् मे हिन्दू और मुसलमान सभी सम्मिलित है। अगर वह सिर्फ हिन्दुओ का होता और मुसलमानो का ईश्वर न होता तो जगदीश्वर क्यो कहलाता ? मगर इन सब बातों पर ध्यान किसका जाता है ? राजनीति के खिलाड़ी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए धर्म को आगे कर देते है और भोले लोग उनके दाव-पेचो को न समझ कर झांसे मे आ जाते है। वे धर्म के नाम पर एक दूसरे के प्राणो के ग्राहक बन जाते हैं। पिछले दिनो यही सब हुआ। लोग धर्मान्ध बन गये और देश के टुकडे हो गये और खूनखराबी हुई। औरगजेब भी ऐसा ही धर्मान्ध था।

जब गुरु गोविन्दसिहजी का शरीर छूट गया तो पीछे एक बुढिया और उनके दो बच्चे बचे। उनके नाम थे रत्नसिह और जोरावरसिह। उनके यहा एक रसोइया था। उसने एक दिन कहा—मैं आपको दूसरे गाव में ले चलता हूँ। वहा किसी प्रकार की तकलीफ नही होगी। यह सुन बुढिया ने एक पेटी में अपनी

सम्पत्ति भर ली और गुप्त रास्ते से उस गांव को सब चले । पेटी मे बन्द की हुई सम्पत्ति देख कर रसोइया की नीयत मे फर्क आ गया । उसने पेटी चुरा कर दूसरी जगह गाड दी और कह दिया कि चोर ले गये हैं !

बुढिया को अत्यन्त क्षोभ हुआ । उसने रसोइया से कहा-तूने ही नीयत बिगाडी है और चोरी हो जाने का बहाना कर रहा है । मै सब समझती हूँ ।

रसोइया सोचने लगा-जब तक यह जिन्दा रहेगे, यह बहुमूल्य सम्पत्ति मुझे हजम नही होगी । किसी प्रकार इनका काम तमाम हो जाना चाहिए । मनुष्य जब धर्म-विहीन हो जाता है तो उसकी बुद्धि भी भ्रष्ट हो जाती है । और बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर पतन की कोई सीमा नही रहती । आखिर उस रसोइया ने वहाँ के थाने मे खबर दे दी । थानेदार मुसलमान था वह बुढिया को और दोनो बच्चो को पकड कर ले गया और किले मे बंद कर दिया । मुसलमान गुरु गोविन्दसिंह के वंश को किसी प्रकार निमू ल करना चाहते थे । यह अच्छा अवसर हाथ आ गया ।

मुसलमान हाकिम ने उन्हे अपने सामने बुला कर कहा—देखो, मेरे हाथ मे तलवार है और तुम्हारी जिन्दगी और मौत इसी तलवार पर निर्भर करती है । अगर जिंदा रहना चाहो तो इस्लाम को कबूल कर लो । उस हालत मे हम तुम्हारी हिफाजत करेंगे । अगर इस्लाम कबूल न किया तो जान से हाथ धो बैठोगे । तुम्हे या तो कत्ल कर दिया जायगा या किले की दीवार मे चुनवा दिया जायगा ।

दोनो बच्चे छोटे थे। एक की उम्र ग्यारह वर्ष की और दूसरे की नौ वर्ष की थी। मगर उन्होने जो उत्तर दिया, वह कमाल का था। बच्चो ने कहा—हम खुशी के साथ मौत को मन्जूर करते हैं। हमारे बाप धर्म की खातिर मर गये और हम भी धर्म की रक्षा के लिए मरना कबूल करते हैं। कितनी ही तकलीफ क्यो न पडे, शेर घास नही खा सकता। हम भी अपना धर्म नही छोडेंगे। आप जो चाहे, करे। कत्ल कर दे या दीवार मे चुनवा दे। आप हमारी जान ले सकते है, धर्म नही ले सकते। हमे अपनी जान की अपेक्षा धर्म ज्यादा प्यारा है।

तब उस हाकिम ने कहा—नादान छोकरो ! कतर-कतर जबान चला रहे हो, क्या तुम्हे मालूम है कि यह नानी का घर नही है। जरा सोच-समझ कर बोलो और अच्छी तरह सोच लो।

भाइयों ! ऐसे अवसर पर बड़ो-बडों की घिग्घी बँध जाती है। सामने तलवार चमकती देख कर बहादुर समझे जाने वालो के भी दिल दहल जाते हैं। मगर इस छोटी उम्र के बालको को देखो किस निडर भाव से वे उत्तर देते है !

आखिर हाकिम ने जब देखा कि यह हठी बालक किसी भी प्रकार मानने को तैयार नहीं है तो उसने किले की दीवार का एक हिस्सा तुडवाया और उसमे चुनवाना शुरू किया। बच्चे गर्दन तक चुनवा दिये गये। तब हाकिम ने फिर कहा—छोकरो, अब भी इस्लाम को कबूल कर लो तो तुम्हारी जिन्दगी बच जायगी। बोलो क्या कहते हो ?

बच्चो ने उस स्थिति मे भी जो कुछ कहा, वह चिरकाल

तक स्मरणीय रहेगा। उन्होने उत्तर दिया - अजी, हम तो धर्म पर मर मिटने वाले है। हम आत्मा को अमर मानते है। वह लाख कोशिश करने पर भी मर नही सकती। रह गया शरीर तो इसका क्या मूल्य है? यह तो आज नही तो कल छूट ही जायगा। इसकी चिन्ता हमे नही। उसे हो सकती है जो शरीर को ही आत्मा मानता है। इसलिए तुम कुछ भी करो, हम धर्म नही छोड़ेंगे!

आखिर उस हाकिम ने पैशाचिक वृत्ति धारण करके दोनो धर्मवीर वालको को दीवार में चुनवा दिया। दोनो मर कर अमर हो गये। वुढिया को जब यह समाचार मालुम हुआ तो उसने भी अपने प्राण त्याग दिये।

भाईयो! भारतीय इतिहास की यह उज्जवल कहानी है। धर्म के लिए कितनी दृढता होनी चाहिए, धर्म के विषय में कितनी गहरी आस्था और निष्ठा होनी चाहिए यह वात इस कथा से सीखी जा सकती है।

याद रखना चाहिए कि जुल्म कभी फलता-फूलता नही है। देख लो, जुल्मी की औलाद भी मिट गई! मुगल वादशाहत का भी खात्मा हो गया। औरङ्गजेब की धर्मान्धता ने मुगल-शासन की नीव कमजोर कर दी थी तो आगे चल कर उसका खात्मा होकर ही रहा। कुरान मे ही कहा है कि जो गैरो पर जुल्म करता है वह अपने ही ऊपर जुल्म करता है और जो दूसरे के हक मे वुरा करता है वह अपने ही हक मे वुरा करता है।

भाइयो ! वीर की सन्तान गीदडो से नही डरती । वीर की सन्तान को भी वीर ही बनना चाहिए । जब तुम वीरता धारण करोगे, धर्म की रक्षा के लिए तन, मन, धन बलिदान करना सीख लोगे तो आर्यावर्त्त देश गुलजार हो जायगा जो लोग देश का हित चाहते है, अपने धर्म का यथावत् पालन करके उनके हाथो को मजबूत बनाओ । अगर देश की भलाई मे रोडे अटकाओगे तो अपनी ही भलाई से चूकोगे । साम्यवाद आ गया तो धर्म का पालन करना भी कठिन हो जायगा । इसलिए देशहित मे अपना हित समझकर अपने कर्त्तव्य का पालन करो । राष्ट्र के प्रति एक योग्य नागरिक के जो कर्त्तव्य है, उनका ध्यान करो और पालन करो । यही राष्ट्रधर्म है । राष्ट्रधर्म का भलीभाति पालन करने वाले आत्मधर्म के अधिकारी बनते हैं । जो व्यक्ति राष्ट्रधर्म से भी पतित होता है वह आत्मिक धर्म का आचरण नही कर सकता । अगर आप अपने धर्म का उचित रूप से पालन करेंगे तो आनन्द ही आनन्द होगा ।

७ ११-४८ }

नोट–समयाभाव के कारण आज 'भविष्यदत्त चरित' पर व्याख्यान नही हो सका । अगले व्याख्यानो मे आगे का चरित देखिए ।

सप्रेम भेंट-

नालेरा पब्लिक चेरीटेबल ट्रस्ट
महावीर बाजार, ब्यावर